रतलाम का प्रथम राज्य : उसकी स्थापना एवं अन्त

[ईसा की १७ वीं शताब्दी]

रतलाम का प्रथम राज्य:
उसकी स्थापना एवं अन्त

[ईसा की १७ वीं शताब्दी]

लेखक

रघुबीरसिंह, डी० लिट्०

राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

१९५०

प्रकाशक—
राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड
नई दिल्ली : बम्बई

मूल्य
चालीस दस रुपये

मुद्रक—
कृष्णप्रसाद दर
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

महेशदास

समर्पण

रतन कुल की प्रतिष्ठा
एवं गौरव के आदि संस्थापक
वीरवर
महेशदास
की
पवित्र स्मृति
को
सादर समर्पित

दो शब्द

अकबर के शासन-काल से ही जोधपुर के संस्थापक वीरवर जोधा के वशजों ने मालवा मे आकर बसना प्रारम्भ कर दिया था; मालवा और गुजरात की सीमा पर झाबुआ और अमझरा के दो छोटे-छोटे राज्यो की भी उन्होने स्थापना की थी। किन्तु शाहजहाँ के शासन-काल मे जब जोधपुर के सुविख्यात 'मोटा राजा' उदयसिह के प्रपौत्र रतनसिह ने मालवा मे आकर रतलाम को अपनी राजधानी बनाया, एवं रतलाम के प्रथम राज्य की स्थापना की तब उसके भाई-बेटे एव अन्य सगे-सम्बन्धी भी उसके साथ मालवा मे चले आए और यहाँ आकर बस गए। यहाँ अपना आधिपत्य स्थापित कर धीरे-धीरे वे तथा उनके वशज मालवा के प्राय. सारे पश्चिमी तथा मध्य भाग मे फैल गए।

यह एक दुर्भाग्य ही था कि रतनसिह द्वारा स्थापित रतलाम राज्य का उसकी मृत्यु के कोई ३६ वर्ष बाद ही अन्त हो गया। परन्तु इस राज्य का अन्त होने के सात-आठ वर्ष ही बाद रतलाम के पदच्युत शासक केशवदास और उसके काका छत्रसाल आदि को औरगजेब ने नई-नई जागीरे दी जिनसे वर्तमान नए-नए राठौड़ राज्यो की नीव पड़ी। इस प्रकार रतनसिह के वशजो और उनके साथ ही उन्ही के भाई-बेटो या सगे-सम्बन्धियो के मालवा-प्रान्त मे आ बसने का इस प्रान्त की राजनैतिक परिस्थिति और सामाजिक समस्याओं पर जो अमिट प्रभाव पडा वह आज भी स्पष्ट है। यही कारण है कि आज भी रतनसिंह के वशज ही नही मालवा प्रान्त के दूसरे राजपूत तथा अन्य मालवा निवासी भी रतनसिह को आदर की दृष्टि

से देखते है, और उसकी, उसके पूर्वज तथा वशजो की जीवनी के बारे मे वहुत-कुछ जानने को उत्सुक रहते है।

सन् १८९८ ई० मे सीतामऊ राज्य के तत्कालीन नाजिम-अदालत, प० नारायण गणेश शिरसालकर ने रतनसिह का एक विस्तृत एव यथाशक्य प्रामाणिक जीवन-चरित्र लिख कर प्रकाशित किया था। रतनसिह के साथ ही साथ उसके पिता महेशदास, और रतनसिह के पुत्र-पौत्रो एव उनके वशजो पर भी उस ग्रन्थ मे पर्याप्त प्रकाश डाला गया था। प्रकाशन के ८–१० वर्ष बाद ही वह पुस्तक अप्राप्य हो गई और आज तो इस पुस्तक की छपी हुई प्रतियाँ देखने को भी कही नही मिलती।

इन पिछले चालीस वर्षो मे भारतीय इतिहास की खोज का बहुत कार्य हुआ है। ऐसी बहुत सी नई ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हुई है, जिससे रतनसिह और उसके वशजो के इतिहास पर पूर्णतया नया प्रकाश पडता है। इतिहास-लेखन की शैली और आदर्श भी इधर बहुत बदल गए है। इस नवीन सामग्री का उपयोग कर आधुनिक आदर्शो के अनुसार इस घराने का एक प्रामाणिक इतिहास-ग्रन्थ लिखा जाना आवश्यक जान पडा, इस ग्रथ द्वारा उसी कमी को पूरा करने का प्रयत्न किया गया है।

इस ग्रन्थ को पूर्णतया प्रामाणिक बनाने और समस्त ऐतिहासिक आधारों से प्राप्य सामग्री का पूरा-पूरा प्रयोग करने का भरसक प्रयत्न किया गया है। व्यक्तिगत बातो तथा छोटी-छोटी ऐतिहासिक घटनाओं को एकत्रित करने के लिए अनेकानेक ग्रन्थो की जॉच-पड़ताल करनी पड़ी। मेरे गुरु सर यदुनाथ सरकार की पूर्ण सहायता एवं उनके प्रेमपूर्ण आशीर्वाद से ही यह कार्य सफलतापूर्वक सम्पूर्ण हो सका है। सरकार महोदय के निजी सग्रह मे अनेकानेक बहुमूल्य एव अप्राप्य

फारसी इतिहास-ग्रथ सग्रहीत है । यह सग्रह मेरे लिए पूर्णतया खुला रहा है और आवश्यकतानुसार वहाँ के ग्रथ मुझे प्राप्त हो सके है । फारसी भाषा के ज्ञाता, मेरे मुशी, काजी करामतुल्ला, मुशी फाजिल, ने सारे आवश्यक फारसी ग्रथो को पढ कर उनसे मेरे लिए बहुत सी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री एकत्रित की है; यो सामग्री-सग्रह मे उनका भी पूरा-पूरा हाथ रहा है ।

अपने पूर्वजों के प्रति आदर और श्रद्धा किसे नही होती, विशेषतया जब कि वे महेशदास, रतनसिह और केशवदास के समान धीर, वीर और साहसी हो । किन्तु इतिहासकार काव्य-रचना नही करता है, और न वह वीर-पूजक बन कर ही अपने चरित्र-नायको की प्रशसा के पुल बाँधने लगता है । इतिहास लिखते समय इतिहासकार के लिए अपने व्यक्तिगत नातो-रिश्तो से उत्पन्न होने वाली आदर-श्रद्धा को भी कुछ समय के लिए भूल जाना अत्यावश्यक हो जाता है । ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर प्रामाणिक इतिहास लिखना, निष्पक्ष दृष्टि से विभिन्न ऐतिहासिक व्यक्तियो के गुण-दोषो की विवेचना करना, तथा सयत भाषा मे उनका ठीक-ठीक महत्त्व आँकना ही इतिहासकार का कर्तव्य है । इस ग्रथ की रचना करते समय इन्ही आदर्शो का पालन करने का यथासम्भव प्रयत्न किया गया है ।

अनेकानेक वादविवादो या कई एक महत्त्वहीन छोटी-छोटी बातो को यदि छोड दिया जाता तो भी सम्भवत इस ग्रथ की ऐतिहासिक सम्पूर्णता में किसी प्रकार की कमी नही होती । इस ग्रथ का वह सक्षिप्त सुगठित स्वरूप साहित्यिक दृष्टि से अधिक सुघड सँवरा हुआ होता । किन्तु महेशदास, रतनसिह और उनके वशजो को लेकर मालवा मे इतनी अधिक भ्रान्तिपूर्ण भावनाएँ, अनहोनी कथाएँ

एवं अनैतिहासिक प्रवाद प्रचलित है कि उन्हे अविश्वसनीय असत्य प्रमाणित कर उनका निराकरण करना ऐतिहासिक सत्य की पुनर्स्था-पना के लिए अत्यावश्यक प्रतीत हुआ। मुगल साम्राज्य के सगठन, उसकी शासन-प्रणाली, तद् अन्तर्गत राजपूत शासको के अधिकारों तथा उनके सच्चे महत्त्व का पूरा-पूरा ज्ञान न होने के कारण भी कई एक भ्रमपूर्ण कथाओं पर प्राय विश्वास किया गया है। उन सबकी अनैतिहासिकता को पूरी तरह साबित करने के लिए ही इन बातो की भी आवश्यकतानुसार यथास्थान विशद विवेचना करनी पडी।

महेशदास और उसके वशजो के समकालीन पुराने चित्र सीतामऊ राजघराने के चित्र-सग्रह मे विद्यमान है, उन्ही के फोटो इस ग्रन्थ मे प्रकाशित किए जा रहे हैं। रतनसिह की छत्री का फोटो कोई नौ-दस वर्ष पहिले लिया गया था। जालोर के किले का चित्र जोधपुर राज्य के पुरातत्व विभाग से प्राप्त हुआ है, जिसके लिए महामहोपाध्याय प० विश्वेश्वरनाथ रेऊ का अनुगृहीत हूँ।

सारे प्रयत्न किए जाने पर भी यत्र-तत्र त्रुटियो का रह जाना स्वाभाविक ही है। आशा करता हूँ कि इतिहास के विद्वान ऐसी त्रुटियों की ओर मेरा ध्यान आकर्षित करने की कृपा करेंगे, जिससे कि अगले सस्करण मे यथोचित सुधार किए जा सके।

"रघुबीर निवास"
सीतामऊ (मालवा)
जुलाई ६, १९४७ ई०

रघुबीरसिंह

पुनश्च—

पूरी लिखी जाने के बाद भी कागज की कमी और धर्मान्धता के फलस्वरूप देश मे फैली हुई आन्तरिक अशान्ति तथा उससे उठने वाली अनेकानेक समस्याओ के कारण पूरे एक वर्ष तक इस पुस्तक को छपवाने का कोई भी प्रबन्ध नही हो सका। अन्त मे इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस ने उसे छाप देने का भार उठाया, जिसके लिए मै उक्त सुप्रसिद्ध प्रेस के अधिकारियो का बहुत ही कृतज्ञ हूँ।

और आज जब रतलाम के प्रथम राज्य का यह इतिहास प्रकाशित होने जा रहा है, तब तक भारत का सारा राजनैतिक नकशा ही एकबारगी बदल चुका है। इन पिछले ढाई वर्षो मे भारत मे अनेको रक्त-विहीन क्रान्तियाँ हो गई है। शताब्दियो की राजनैतिक दासता के कठोर सुदृढ बन्धनो को तोड कर आज भारत स्वाधीन हो गया है। और उस स्वाधीन स्वच्छन्द वातावरण मे अपनी राष्ट्रीय शक्ति का अनुभव कर भारत मे जनतन्त्रवाद की बाढ-सी आगई है, जिसके फलस्वरूप भारत मे हजारो वर्षो से प्रचलित राजाओ के एकसत्तात्मक शासन की प्रथा का पूर्णतया अन्त हो गया। जनतन्त्रवाद के साथ ही राजनैतिक एकीकरण तथा सास्कृतिक और हजारो वर्षों पुरानी ऐतिहासिक परम्पराओ के आधार पर बडी-बडी राजनैतिक इकाइयो के पुन सगठन का प्रश्न देश के सामने उठ खडा हुआ था, जिससे सैकडों वर्ष पुराने सारे छोटे-बड़े राज्यो के पृथक अस्तित्व का आगे भी बना रहना एक असम्भव बात हो गई।

यो शताब्दियो तक विभाजित तथा राजनैतिक दृष्टि से सर्वथा अस्तित्व-विहीन रह कर अब मालवा पुन एक सुसगठित एव शक्तिशाली राजनैतिक इकाई बनने लगा है। यह विधि की एक अनोखी

विडम्बना ही जान पडती है कि जब यह ग्रथ प्रकाशित होने वाला है, तब तक रतलाम के उस प्रथम राज्य के सस्थापक रतनसिह के वशजो द्वारा ईसा की १८वी शताब्दी के प्रारम्भ मे सस्थापित तीनो राज्यो के——सीतामऊ, रतलाम के वर्तमान द्वितीय राज्य एव सैलाना के——कोई दो सौ वर्षो से भी अधिक पुराने स्वतन्त्र अस्तित्व का पुन-र्सगठित मालवा मे सम्पूर्ण विलय भी एक भूतकालीन ऐतिहासिक घटना मात्र रह गया है ।

परन्तु जिन राजघरानों ने पिछली अनेको शताव्दियो मे अन-गिनित राजनैतिक उलट-फेर देखे, जिन्होने एक के वाद दूसरा यों कई एक राज्यों की स्थापना की तथा बाद मे उन्ही को मिटते भी देखा, उनके लिए यह नई राजनैतिक परिस्थिति कोई सर्वथा अनोखी बात नही है । अपने साथी-सैनिको तथा राज्य-निवासी रूपी जन-समाज का नेतृत्व करके ही ये राजघराने पहिले भी राजनैतिक क्षेत्र मे आगे बढे थे । देश तथा जनता की सेवा मे वे अनेको बार जान पर खेले और कभी-कभी अपने जीवन तक को उन्होने उनके हितार्थ बलिदान कर दिया । देश और राष्ट्र की सेवा के इन्ही आदर्शो पर चल कर उन्हे आगे भी बहुत-कुछ राजनैतिक महत्त्व तथा समाज मे अद्वितीय गौरव प्राप्त हो सकेगा ।

इतिहासकार के लिए तो ऐसे राज्यो का बनना-बिगडना तथा किन्ही राजघरानों का उत्थान-पतन प्रान्तीय इतिहास की साधारण घटनाएँ मात्र होती है । देश तथा प्रान्तो का इतिहास देखते हुए वह तो यही चाहता है कि हमारा प्यारा भारत स्वाधीन, उन्नत और शक्तिशाली हो और हमारा मालवा पुन पूर्णतया सुसगठित होकर उस महान राष्ट्र का एक सुसम्पन्न गौरवपूर्ण अग बने ।

"रघुबीर-निवास"
सीतामऊ (मालवा)
मकर-सक्राति, स० २००६ वि०

रघुबीरसिंह

विषय-सूची

चित्र-सूची

संकेत-परिचय

अकबर०—"अकबर नामा", बेवरिज कृत उसका अग्रेजी अनुवाद, खण्ड १-३, (बिब० इण्डिका)।

अख० औरं०—"अखबारात-इ-दरबार-इ-मुअल्ला" औरगजेब के शासन-काल के, लण्डन की रायल एशियाटिक सोसाइटी के सग्रह मे प्राप्य, सरकार सग्रह मे प्राप्य हस्तलिखित प्रतियो की नकले।

आईन०—"आईन-इ-अकबरी", ब्लाकमन और जेरेट कृत उसका अग्रेजी अनुवाद, खण्ड १, दूसरा सस्करण, खण्ड २-३, पहला सस्करण, (बिब० इण्डिका)।

आदाब०—"आदाब-इ-आलमगीरी" (हस्तलिखित), सरकार सग्रह की प्रति की नकल।

आ० ना०—"आलमगीर नामा" मुहम्मद काजिम कृत, (बिब० इण्डिका)।

इण्डिया०—"इण्डिया आफ औरगजेब" सर यदुनाथ सरकार कृत।

इर्विन०—"दी आर्मी आफ दी इण्डियन मोगल्ज" विलियम इर्विन कृत।

ईलियट०—"दी हिस्ट्री आफ इण्डिया" ईलियट और डासन द्वारा सम्पादित, जिल्दे १-८।

ईश्वर०—"फतूहात-इ-आलमगीरी" ईश्वरदास कृत (हस्तलिखित), सरकार सग्रह मे प्राप्य प्रति की नकल।

उदय०—"उदयपुर राज्य का इतिहास" डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा कृत, जिल्दे १-२।

औरंग०—"हिस्ट्री आफ औरगजेब" सर यदुनाथ सरकार कृत, जिल्दे १-५।

कम्बू०—"आमल-इ-सालेह" मुहम्मद सालेह कृत, जिल्दे १-३, (बिब० इण्डिका)।

खफी०—"मुन्तुखब-उल्-लुबाब" खफी खाँ कृत, जिल्द २, (बिब० इण्डिका)।

ख्यात०—"जोधपुर राज्य की ख्यात" (हस्तलिखित), ओझा सग्रह में प्राप्य प्रति की नकल, जिल्दे १-४।

गुरूजी०—मालवा के राठौडो के सीतामऊ-निवासी राजगुरु निर्भयसिह की हस्त-लिखित पोथियाँ ।

जय० अख०—"अखबारात-इ-दरबार-इ-मुअल्ला", जयपुर राज्य के मुहाफिज-खाने मे प्राप्य, श्री रघुबीर लायब्रेरी, सीतामऊ, के लिए की गई उनकी हस्तलिखित नकले ।

विभिन्न मुगल सम्राटो के समय के अखबारो का निर्देश यो किया गया है —

औरं० — औरगजेब,
आजम० — आजमशाह,
बहादुर० — बहादुरशाह,
फर्रुख० — फर्रुखसियर ।

जहाँगीर०—"हिस्ट्री आफ जहाँगीर" डा० बेणीप्रसाद कृत ।

जफर०—'जफरनामा-इ-आलमगीरी" आकिल खॉ रजी कृत, सरकार सग्रह मे प्राप्य हस्तलिखित प्रति की नकल ।

अलीगढ हिस्टारिकल इस्टीटयूट ने इसी ग्रथ का खान बहादुर मौलवी हाजी जफर हुसैन से सम्पादन करवा कर "वाकियात-इ-आलमगीरी" नाम से कुछ ही वर्ष पहिले उसे प्रकाशित किया है ।

जोधपुर०—"जोधपुर राज्य का इतिहास" डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा कृत, जिल्दे १-२ ।

टाड०—"एनल्ज एण्ड एण्टीक्विटीज़ आफ राजस्थान" कर्नल जेम्स टाड कृत, आक्सफर्ड सस्करण, जिल्दे १-३ ।

दारा०—"दारा शिकोह" डा० कालिकारजन कानूनगो कृत, जिल्दे १-२ ।

नैणसी०—"मुहतो नैणसी की ख्यात", काशी नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, खण्ड १-२ ।

ताप०—"प्रतापगढ राज्य का इतिहास" डा० गोरीशकर हीराचन्द ओझा कृत ।

पाद०—"पादशाह नामा" अब्दुल हमीद लाहोरी कृत, खण्ड १-२, (बिब० इण्डिका) ।

प्राचीन०—"प्राचीन राजवश" प० विश्वेश्वरनाथ रेऊ कृत, खण्ड १-३ ।

फेहरिस्त०—जालोर के गाँवो की सन् १६६२-१६६३ ई० मे तैयार की हुई हस्तलिखित फेहरिस्त ।

फैयाज०—"फैयाज-उल्-कवानीन", लखनऊ के नवाब अली हुसैन खाँ के सग्रह मे प्राप्य हस्तलिखित प्रति से श्री रघुबीर लायब्रेरी, सीतामऊ, के लिए की गई नकल ।

बनारसी०—"हिस्ट्री आफ शाहजहाँ" डा० बनारसी प्रसाद सक्सेना कृत ।

बरनियर०—"ट्रेवेल्ज इन दी मुगल एम्पायर" फ्रेन्सिज बरनियर कृत, अग्रेजी अनुवाद, आक्सफर्ड सस्करण ।

बसातीन०—"बसातीन-उस्-सलातीन" मुहम्मद इब्राहिम अल् जुबैरी कृत, हैदराबाद मे लिथो पर छपी हुई प्रति ।

बाँसवाड़ा०—"बाँसवाडा राज्य का इतिहास" डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा कृत ।

बीकानेर०—"बीकानेर राज्य का इतिहास" डा० गौरीशकर हीराचन्द ओझा कृत, खण्ड १-२ ।

भीम०—"तारीख-इ-दिलकशा" भीमसेन कृत, सरकार सग्रह मे प्राप्य हस्तलिखित प्रति की नकल, जिल्दे १-२ ।

मनुची०—"स्टोरिया डी मोगोर" मनुची कृत, इर्विन द्वारा अनुवादित एव सम्पादित, जिल्दे १-४ ।

मा० आ०—"मासिर-इ-आलमगीरी" मुहम्मद साकी मुस्तैद खाँ कृत, (बिब० इण्डिका) ।

मा० उ०—"मासिर-उल्-उमरा" समसामुद्दौला शाह नवाज खाँ कृत, जिल्दे १-३, (बिब० इण्डिका) ।

मारवाड़०—"मारवाड राज्य का इतिहास" प० विश्वेश्वरनाथ रेऊ कृत, खण्ड १-२ ।

मासूम०—"तारीख शाह शुजाई" मासूम कृत, सरकार सग्रह मे प्राप्य हस्तलिखित प्रति ।

मेहता०—सीतामऊ-निवासी मेहता नाथूलाल के घराने के प्राचीन कागजो का सग्रह ।

रतन०—"महाराजा श्री रत्नसिह जी का सक्षिप्त जीवन चरित्र" नारायण गणेश शिरसालकर कृत ।

रतलाम०—रतलाम राज्य का गेजेटियर, (अग्रेजी), सन् १६०८ ई० का सस्करण ।

राजव्यास०—सीतामऊ राजघराने के राजव्यास शिवनारायण के घराने के प्राचीन कागजो का सग्रह ।

राणी०—मालवा के राठौडो के सीतामऊ-निवासी राणीमगा जसराज की हस्त-लिखित पोथियाँ ।

राम०—"रामचरित्र" सुकवि रघुनाथ 'रसाल' कृत काव्य, भास्कर रामचन्द्र भालेराव सूबेदार के सग्रह मे प्राप्य हस्तलिखित प्रति से श्री रघुबीर लायब्रेरी, सीतामऊ, के लिए की गई नकल ।

रासो०—"रतन रासो" कवि कुम्भकर्ण कृत काव्य, श्री रघुबीर लायब्रेरी, सीता-मऊ, मे प्राप्य हस्तलिखित प्रति ।

लताइफ०—"लताइफ-उल्-अखबार" लेखक अज्ञात, सरकार सग्रह मे प्राप्य हस्तलिखित प्रति की नकल ।

वचनिका०—"वचनिका राठौड रतनसिघजी री महेसदासोत री" कवि खडिया जगा कृत, (बिब० इण्डिका) ।

वारिस०—"पादशाह नामा" मुहम्मद वारिस कृत, सरकार सग्रह मे प्राप्य हस्तलिखित प्रति की नकल, जिल्दे १-२ ।

वीर०—"वीरविनोद" कविराजा श्यामलदास कृत, जिल्दे १-२ ।

वंश०—"वश भास्कर" मिश्रण सूर्यमल कृत, जिल्दे ३-४ ।

शिवाजी०—"शिवाजी" सर यदुनाथ सरकार कृत, तीसरा सस्करण ।

सनदें०—"सीतामऊ राज्य मे प्राप्त सनदे, माफी-नामे, आदि"—सीतामऊ राज्य के लेण्ड रेकर्ड आफिस द्वारा एकत्रित हस्तलिखित नकलो के सग्रह की प्रति ।

सीतामऊ०—सीतामऊ राज्य का गेजेटियर, (अग्रेजी); सन् १६०८ ई० का सस्करण ।

हाउस०—"हाउस आफ शिवाजी" सर यदुनाथ सरकार कृत, प्रथम सस्करण ।

खण्ड—१

पूर्व-पुरुष

(१५६८—१६४७ ई०)

अध्याय १

मुगलों की राजपूत-नीति और उसका परिणाम

"अकबर के विचारपूर्ण मस्तिष्क पर प्रारभ से ही राजपूतो की वीरता, सच्चाई एव उनकी एकनिष्ठ स्वामिभक्ति का पूरा-पूरा सिक्का जम गया था। उसका यह दृढ विश्वास हो गया था कि राजपूतो को अपने सद्य स्थापित मुगल साम्राज्य का सशक्त आधार-स्तंभ बना कर ही वह पूरब के अर्ध अभिभूत जगली अफगानो के विरोध, अपने ही उजबक तथा अन्य मुसलमान सेनाधिकारियो के विश्वासघात, पश्चिमी प्रदेशो मे अपने ही भाइयो के लोभ तथा अपने ही समान तैमूर के अन्य वशज मिर्जाओ की कट्टर शत्रुता का सफलतापूर्वक सामना कर सकेगा। वह अच्छी तरह जानता था कि राजपूत जाति से ही उसे अपने अगरक्षक चुनने पडेगे और उन्ही मे से वह ऐसे उत्कट योद्धाओ के दल जुटा सकेगा जिनके साहस और स्वामिनिष्ठा को ससार का बडा से बडा प्रलोभन भी डिगा नही सकता था, और अपने अन्य मुसलमान साथियो या तैमूरी भाइयो के समान जो कभी भी उसके प्रतिद्वन्द्वी नही बन सकते थे। उसे विश्वास था कि यदि राजपूतो के हृदयों पर वह विजय पा सका तो ये ही राजपूत इस नवनिर्मित साम्राज्य के विरोधपूर्ण घनाच्छादित भाग्याकाश मे उस साम्राज्य की भावी आशाओ तथा उसकी स्थायी सत्ता के उद्गम का एक मात्र अटल सितारा बन कर चमकेगे।"[1]

---

[1] सर यदुनाथ सरकार कृत "हिस्ट्री आफ जयपुर" (अप्रकाशित)।

और इन राजपूतो के हृदय पर विजय पाने के लिए अकबर ने भरसक प्रयत्न ही नही किया परन्तु अपने इस उद्देश्य में उसे पूरी-पूरी सफलता भी मिली। राजपूतो के प्रति अकबर की इस नवीन नीति का परिणाम यह हुआ कि राजस्थान के प्राय सब शक्तिशाली राजपूत राजघराने मुगल साम्राज्य के पृष्ट-पोषक एव मुगल सम्राटो के विश्वासपात्र सेनानायक, विश्वस्त सलाहकार और कठिन समय मे काम आनेवाले, सम्राट् एव साम्राज्य के लिए मरमिटने वाले वीर साहसी सैनानी बन गए। प्रारभ मे अकबर का विरोध करने वाले राजपूत ही आगे चलकर मुगल साम्राज्य के स्थायी तथा सुदृढ आधार-स्तभ बने।

आम्बेर के कछवाह, बूँदी के हाडा और बीकानेर के राठौड राजाओ के समान जोधपुर के राठौड शासक भी आगे चलकर अकबर के विश्वस्त अधिकारी, और साम्राज्य के राजपूत राजाओ में प्रमुख गिने जाने लगे। अकबर ने इन सब शासको को शाही मनसब दिये, और उपयुक्त समझे जाने पर उन्हे साम्राज्य मे उच्च पदो पर भी नियुक्त किया। उन नरेशो के साथ ही साथ अकबर ने उनके विभिन्न पुत्रो, पौत्रो, भाई-भतीजो तथा अन्य निकट सम्बन्धियो को भी अपनाया। छोटा-बड़ा मनसब देकर उन्हें भी शाही सेना मे रख लिया, और ज्यो-ज्यों उनकी योग्यता, साहस तथा विश्वसनीयता का पता लगा त्यो-त्यों उनके मनसब मे वृद्धि की जाकर उन्हे उपयुक्त उच्च पदो पर नियुक्त किया गया। इस प्रकार जहाँ विभिन्न नरेशों के भाई-बेटो तथा सम्बन्धियो को अपना कर अकबर ने उन नरेशों के सम्भवनीय विरोध या विद्रोह का अन्त करने का प्रयत्न किया, वहाँ ही इन भाई-बेटो को अपनी योग्यता, साहस तथा वीरता के बल पर उन्नति कर आगे बढ़ने, मान और पद वृद्धि

तथा सेवाओ के उपयुक्त पुरस्कार पाने का अवसर भी मिला। अनेकानेक सुयोग्य व्यक्ति उच्च पदो पर जा पहुँचे तथा कई एक को जागीर एवं जमीन्दारियाँ मिली, जिनसे कई एक नवीन छोटे-मोटे राज्यो की नीव भी पडी।

अकबर की इस नीति को उसके पुत्र जहाँगीर ने अपनाया और शाहजहाँ ने भी उसको जारी रखा। अपने कट्टर धार्मिक विचारो के फलस्वरूप यद्यपि औरगजेब ने कई एक बातो मे राजपूतो के प्रति कडाई दिखाई थी, परन्तु उसने भी इस नीति के लाभो का अनुभव कर इसमें विशेष फेर-फार नही किया। इस नीति के फलस्वरूप जहाँगीर के शासनकाल मे किशनगढ राज्य की नीव पडी। शाहजहाँ ने कोटा राज्य की स्थापना की और शाहपुरा राज्य की नीव डाली। औरगजेब के समय मे भी बनेडा (मेवाड) के राजाधिराज के पूर्वजों को मालवा मे एक बडी जागीर मिली थी।

रतलाम के इस प्रथम राज्य की स्थापना भी मुगल सम्राटो की राजपूत शासकों के छोटे भाई-भतीजो को अपनाने की इस नीति का परिणाम था। शाहजहाँ की प्रसन्नता के फलस्वरूप ही इस राज्य की स्थापना हुई थी। एक बार इस घराने की विश्वसनीयता, साहस एव एकनिष्ठा का पूरा-पूरा पता लग जाने पर औरगजेब के समान कट्टर शासक ने भी अपना ही विरोध करने वाले रतनसिह के पुत्रो और वशजो को अपनाया और उन्हे महत्वपूर्ण पदो पर नियुक्त किया। इस राज्य के तीन शासको ने अपने राज्य से दूर देश-विदेश मे मुगल साम्राज्य की सेवा करते हुए ही अपने प्राण भी अर्पण कर दिए।

और जब कोई ३८ वर्ष के अस्तित्व के बाद औरगजेब की अप्रसन्नता ने इस राज्य का अन्त कर दिया तब वह पदच्युत शासक केशव-

दास अपना राज्य खोकर भी सुदूर दक्षिण मे उसी तत्परता के साथ शाही सेवा करता रहा। उसी रतनसिह के भाई-बेटो ने शाही सेवा मे कई एक सुदूर प्रान्तो की यात्रा की, कठिनाइयाँ उठाई, और उनकी अस्थियाँ कहाँ-कहाँ बिखरी इसका लेखा तक रखना कठिन हो गया। यही कारण था कि इस राज्य का अन्त करके भी औरगजेब ने उसके पद-च्युत शासक तथा उसके अन्य सम्बन्धियो को किसी न किसी रूप मे शाही सेवा मे बनाए रखा और ईसा की १८ वी शताब्दी के प्रारम्भ मे उनकी सेवाओ से प्रसन्न होकर उन्हे पुरस्कार-स्वरूप नई जागीरे दी, जिनसे वर्तमान सीतामऊ और रतलाम राज्यो की नीव पडी।

अध्याय २

दलपत[1]

१. दलपत के पूर्वज एवं उसका प्रारंभिक जीवन

जोधपुर के प्रतापी शासक वीरवर राव मालदेव की मृत्यु के बाद उसका छठा पुत्र राव चन्द्रसेन जोधपुर का शासक बनकर राज-गद्दी पर बैठा, और उसके बडे भाई उदयसिह को अपने पिता द्वारा दी गई फलौदी की जागीर लेकर ही सन्तोष कर लेना पडा। सन् १५७० ई० मे अकबर अजमेर होता हुआ, नवम्बर १५ को नागौर पहुँचा। जोधपुर का शासक राव चन्द्रसेन और बीकानेर का शासक राय कल्याणमल नागौर मे आकर अकबर से मिले।[2] उसी समय उदयसिह भी फलौदी से आकर अकबर के दरबार मे उपस्थित हुआ, और उसने अकबर की आधीनता स्वीकार की। अकबर ने अगस्त ५, १५७१ ई० से उदयसिह को मनसब भी दे दिया,[3] और तब से

---

[1] ख्यात० (पृ० ६८, १०२ और १०६), मारवाड० (१, पृ० १७८), तथा फारसी ग्रन्थो में इसका नाम केवल "दलपत" ही लिखा है। उसकी दी हुई सनदो में भी उसके नाम का यही स्वरूप लिखा जाता था, एव यही प्राचीन स्वरूप यहाँ रखा गया। रतन० (पृ० ३), तथा रतलाम और सीतामऊ के गेजेटियरो में इनका नाम 'दलपतसिह' लिखा है। ऐसा जान पड़ता है कि १६वी शताब्दी में ही इस नाम के अन्त में "सिंह" जोड़ा गया।

[2] अकबर०, २, पृ० ५१७-८।

[3] ख्यात०, १, पृ० ८८।

वह निरन्तर शाही सेवा मे लगा रहा। सन् १५८३ ई० मे अकबर ने उसे जोधपुर का राजा बनाया,[४] और कोई बारह वर्ष तक उसने जोधपुर पर राज्य किया। उदयसिह का शरीर स्थूल था एव वह "मोटा राजा" के नाम से प्रसिद्ध था, और फारसी इतिहास-ग्रन्थो मे भी उसका उल्लेख प्राय इसी नाम से किया गया है। उदयसिह की मृत्यु सन् १५९५ ई० मे लाहौर मे हुई थी। उसके बाद उसका छठा लडका सूरसिह जोधपुर की गद्दी पर बैठा।

इन्ही मोटे राजा के चौथे पुत्र दलपत[५] के वंशज ने रतलाम राज्य की स्थापना की। मोटे राजा की सातवी रानी अजायब दे ने दलपत को जन्म दिया था। यह रानी अजायब दे, साचोरा चौहान मेहकरण की पुत्री थी[६]। दलपत का जन्म रविवार, जुलाई १८,

---

[४] ख्यात, १, पृ० ९६-९७; मारवाड०, १, पृ० १७२।

[५] मारवाड़०, १, पृ० १७८-९। गुरुजी० मे भी दलपत को चौथा पुत्र ही लिखा है। ख्यात० (१, पृ० १०१-१०८) मे उदयसिह के पुत्रो के नाम किसी क्रम विशेष से नही लिखे हैं। कुछ पुत्रो की जन्मतिथियाँ वहाँ दी हैं, जिनको क्रमानुसार रखने से भी दलपत चौथा पुत्र होता है।

आईन०, १, पृ० ३८६ पर महेशदास के पिता दलपत को ब्लाकमन ने बीकानेर के राजा रायसिह का ज्येष्ठ पुत्र बताया है। नामो मे साम्य के कारण ही ब्लाकमन ने यह गलती की है।

[६] ख्यात०, १, पृ० १०२; नैणसी०, १, पृ० १७६। दलपत, महेशदास एवं रतनसिह का साचोरा चौहानो के इस घराने के साथ यही एकमात्र सम्बन्ध था। इसके बाद उनका कोई भी अन्य वैवाहिक सम्बन्ध नहीं हुआ।

गुलाबशकर कल्याणजी वोराकृत "पचेड़ ठिकाने के इतिहास" में साचोरा के प्राचीन इतिहास एवं राव शार्दूल के पूर्वजो की पीढ़ियो के नाम से जो विवरण तथा जो वंश-वृक्ष (पृ० १८-६४) दिया है, वह सारा विवरण और वंश-वृक्ष सोनगरा चौहानो का है, साचोरा चौहानो का नहीं। राव शार्दूल साचोरा का

सन् १५६८ ई० (श्रावण विदि ९, १६२५ वि०) को हुआ था[७]। दलपत को उसके निर्वाह के लिए जोधपुर राज्य के परगनो मे से बलाहेडा का कुछ हिस्सा जागीर में मिला[८]। किसी किसी जगह दलपत को खेरवा और पीसागन के प्रदेश के मिलने का उल्लेख भी मिलता है[९]। दलपत की सारी जागीर की आमदनी कोई सवा दो लाख दाम की थी[१०]।

पिता सावतसिह, मेहकरण सांचोरा का पुत्र था, भाण अखेराजोत के पुत्र नारायणदास सोनगरा का पुत्र न था। नामो के साम्य से ही वोरा ने ऐसी भयकर भूल की। वोरा का यह कथन भी कि लोला के साचोरा जाकर रहने से उसके वंशज साचोरा कहलाए सर्वथा भ्रमपूर्ण है। साचोरा चौहानो का आदि पुरुष विजयसिह था, लोला सोनागरा नहीं। विजयसिह को नैणसी ने राव आल्हण नाडूलवाले का पुत्र लिखा है; यह राव आल्हण कौन था इस विषय पर इतिहासकार निश्चित निर्णय नही दे सके है। साचोरा चौहानो का ठीक विवरण तथा पीढ़ियाँ नैणसी ने दी है (१, पृ० १७१-१८१); रासो० में सांचोरा चौहानो के विवरण से भी नैणसी द्वारा दी गई वशावली का ही समर्थन होता है (पृ० १४२-४)।

[७] ख्यात०, १, पृ० १०२, १०६; मारवाड़०, १, पृ० १७८।

[८] गुरूजी०। सम्भव है रायपुर-लूणी नदी पर स्थित बीलाड़ा कस्बे के नाम का ही यह बिगड़ा हुआ स्वरूप हो। राणी० में मलाहेड़ा नाम मिलता है।

गुरूजी० के अनुसार यह जागीर दलपत को सन् १५७८ ई० (सं० १६३५ वि०) में मिली थी; परन्तु यह सवत गलत जान पड़ता है। राणी० के अनुसार यह जागीर सन् १५९६ ई० (सं० १६५३ वि०) में मिली थी। संभव है उदयसिह की मृत्यु पर सूरसिह ने अपने बड़े भाई को यह जागीर देकर उसके निर्वाह का प्रबन्ध किया हो।

[९] राणी०। इस जागीर का भी सन् १५९६ ई० (सं० १६५३ वि०) में ही मिलने का उल्लेख है।

[१०] गुरूजी०। मारवाड़०, १, पृ० १७८ पर रेऊजी ने लिखा है कि "दल-

अपने पिता, उदयसिह के ही शासनकाल मे सन् १५८६ ई० (सं० १६४३ वि०) मे अपने अन्य तीन भाई भगवानदास, भोपत और जैतसिह के साथ दलपत भी सिधलो पर चढ कर गया था एव वहाँ पहुँचकर उनके गावो को लूटा था ।[11]

२. दलपत के अन्तिम वर्ष

दलपत के जीवन का विशेप विवरण नही मिलता है।[12] उसकी माता के सम्वन्ध से दलपत का मामा सावन्तसिह तथा उसके अन्य दूर के भाई-भतीजे भी दलपत की सेवा मे ही रहते थे । सावन्तसिह के भाई रायमल का पुत्र, भाण, सावन्तसिह के काका लूणा के पौत्र, सूजा, और सावन्तसिह के दूर के सम्वन्ध से काका के पुत्र, भोजराज का भी दलपत की सेवा मे काम आने का उल्लेख नैणसी की ख्यात

पत को उदयसिह ने जालोर का प्रान्त जागीर मे दे दिया।" राणी० में भी जालोर के दिये जाने का उल्लेख मिलता है, परन्तु यह कथन ठीक नही । उदयसिह के शासनकाल में जालोर का परगना कभी भी जोधपुर राज्य के अन्तर्गत नही रहा; सूरसिह को भी यह परगना सन् १६१६ ई० के बाद ही मिला था, एव इस परगने के दिये जाने का सवाल ही नहीं हो सकता था । ख्यात०, १, पृ० ६७, १०८, १४२; मारवाड़०, १, पृ० १६४-५ ।

[11] ख्यात०, १, पृ० ६८ ।

[12] अक्तूबर, १६०३ ई० में शाहज़ादे सलीम के साथ मेवाड पर चढ़ाई के लिये जाने के हेतु नियुक्त किये गये सेनानायको मे ओझा ने मोटा राजा उदयसिह के बेटे दलपत का भी उल्लेख किया है (उदय०, १, पृ० ४७८); परन्तु यह कथन ठीक नहीं । इस चढाई पर बीकानेर का कुँअर दलपत तथा मोटा राजा का पुत्र शक्तिसिह नियुक्त हुए थे। दलपत के मुगल मनसबदार बनने का कहीं भी उल्लेख नही मिलता है ।

मे मिलता है ।[१३] सावन्तसिंह के पुत्र तथा अन्य सम्बन्धी साचोरा चौहान आगे चल कर भी दलपत के पुत्रो की सेवा करते रहे ।

अपने पिता की मृत्यु के बाद दलपत ने अपना स्वतन्त्र प्रबन्ध करना प्रारम्भ कर दिया था । सोमवार, मई १५, १५९८ ई० को उसने व्यास हरि को अपने घराने का राजव्यास नियुक्त किया, और तत्सम्बन्धी सारे नेग दस्तूर निश्चित कर उनकी सनद व्यास हरि को देदी । बेरवाडा नामक स्थान पर यह सनद लिखी गई थी ।[१४]

अपने पिता की मृत्यु के अनन्तर दलपत बहुत साल तक नही जीता रहा । सन् १६०० ई० (सं० १६५६ वि०) मे जब उसकी मृत्यु हुई[१५] वह ३१ वर्ष का ही था । दलपत की माता को पुत्र-मृत्यु का दुख देखना पडा । दलपत की मृत्यु के कोई २६-२७ साल बाद ही उसका देहान्त हुआ ।[१६]

---

[१३] नैणसी०, १, पृ० १७६-१७७, १७९-१८० ।

[१४] राजव्यास० । व्यास हरी दायमा ब्राह्मण था । उसके वंशज आज भी सीतामऊ राजघराने के राजव्यास है; यह सनद आज भी उनके पास विद्यमान है ।

[१५] गुरूजी० । गुरूजी० मे दलपत के मृत्युस्थान का उल्लेख नही है । राणी० मे दलपत की मृत्यु मथुरा मे १६०९-१६१० ई० (स० १६६६ वि०) में होना लिखा है । राणी० में दिया हुआ यह सवत गलत जान पड़ता है । गुरूजी० में एक उल्लेख इस बात का भी है कि १६०४–१६०५ ई० (सं० १६६१ वि०) में महेशदास ने राजगुरू को अपने घराने का विवरण लिखवाया था, जिससे यह स्पष्ट है कि उस समय तक दलपत की मृत्यु हो चुकी थी और महेशदास इस घराने का प्रमुख व्यक्ति बन चुका था ।

[१६] गुरूजी० । उसकी मृत्यु आदि का विशेष विवरण आगे देखो ।

दलपत के अनेक रानियाँ थी,[१७] जिनमें से एक रानी रायकुँअर कछवाही थी। यह रानी आम्बेर के सुप्रसिद्ध राजा भगवानदास की पुत्री और राजा मानसिह की बहिन थी। राजा भगवानदास ने उसे दहेज में बहुत द्रव्य दिया था।[१८]

दलपत के पाँच पुत्र हुए। महेशदास रानी कुसुम कुँअर भटयाणी[१९] का पुत्र था। पीथापुर की बाघेली रानी ने जुझारसिह[२०]

---

[१७] गुरूजी० तथा कुछ ख्यातों मे केवल सात ही रानियो का उल्लेख मिलता है। राणी० में नौ रानियों के नाम दिये है। कई ख्यातो मे तो केवल पाँच ही रानियो के नाम मिलते है।

[१८] राणी०; रासो०, पृ० १५। ख्यातो मे इस रानी के दूसरे नाम छत्र-कुँवर और रतनकुँवर दिये है। गुरूजी० के अनुसार इस रानी का नाम हरकुँवर था और वह आम्बेर के भगवन्तदास भारमलोत के छोटे पुत्र अखेराज की पुत्री थी। अखेराज के लिए देखो—नैणसी०, २, पृ० १८।

[१९] ख्यातो में इस रानी के दूसरे नाम मानकुँवर और केसरकुँवर भी मिलते है।

यह भटयाणी रानी केलणोत भाटी पचायण के पुत्र गोयन्द अथवा गोविन्ददास की बेटी थी। इसी रानी की एक बहन दलपत के भाई, मारवाड़ के शासक महाराजा सूरसिह को ब्याही थी। गुरूजी०; राणी०; ख्यात०, १, पृ० १४६; नैणसी०, २, पृ० ३६६-३६७; मारवाड़०, १, पृ० १८१-१९३।

दलपत की इस भटयाणी रानी के जोगीदास नाम का एक ही भाई था। उसके पाँच पुत्रों में सबसे बड़े दो पुत्र, रघुनाथ, और जगन्नाथ, विशेष उल्लेखनीय थे। जोगीदास और उसके ये दोनों बड़े लडके भी महेशदास के समान महाबत खाँ की सेना में नौकर थे। जगन्नाथ का उल्लेख करते समय पाद० के लेखक ने उसे महेशदास का सम्बन्धी लिखा है। नैणसी०, २, पृ० ३६६-७; पाद०, १, पृ० ५०९; १ (खण्ड २), पृ० ३८।

[२०] अपने भाई महेशदास के समान, जुझारसिह भी महाबतखाँ की सेना में नौकर था। मंगलवार, अप्रेल ९, १६३३ ई० को दौलताबाद के किले पर

और राजसिह[२१] नामक दो पुत्रो को जन्म दिया था। कन्होराम और जसवन्तसिह[२२] लाखासर वाली रानी साहिबकुँअर

हमला करते समय वीरतापूर्वक लड़ता हुआ वह मारा गया। रासो०, पृ० १५, १७, २२, २६, ३२, ३८, ३९, ४२; पाद०, १, पृ० ५१३। जुझारसिह का पुत्र पृथ्वीराज महेशदास के पुत्र, रतनसिंह की सेवा में रहता था। रासो०, पृ० ७०। पृथ्वीराज के वशज दलपतोत पृथ्वीराजोत कहलाते है। पृथ्वीराजोत राठोडों के कई एक घराने आज भी मालवा में विद्यमान है। झाबुआ राज्य के अन्तर्गत जामली ठिकाने के ठाकुर भी पृथ्वीराजोत राठौड़ हैं।

दलपत के मामा सांचोरा चौहान सावन्तसिह के चौथे और पाँचवें पुत्र, भीम और कल्ला, जुझारसिंह के यहाँ नौकर थे एव उसी की सेवा में काम आए। नैणसी०, १, पृ० १७६-७।

[२१] राजसिह भी महाबलखाँ की सेना में नौकर था, और जुझारसिंह के साथ वह भी मगलवार, अप्रेल ९, १६३३ ई० को दौलताबाद के किले पर हमला करते समय लड़ता हुआ काम आया। रासो०, पृ० १५, १७, २२, २६, ३२, ३८, ३९, ४२; पाद०, १, पृ० ५१३। उसके पुत्र, भावसिंह, गोपीनाथ और विष्णुदास, महेशदास के पुत्र रतनसिंह की सेवा में थे। रासो०, पृ० ७०, १०३। राजसिह के वशज राजसिहोत राठौड कहलाते है, और उनके कई घराने आज भी मालवा में विद्यमान है। पाताखेड़ी (जावरा राज्य) और सीखेडी (रतलाम राज्य) के ठिकाने इन्ही राजसिहोतों के अधिकार मे है।

[२२] जसवन्तसिह भी महाबतखाँ की सेना मे नौकर था। दौलताबाद के किले पर हमले के समय यह भी सेना में साथ था। रासो०, पृ० १५, १७, २२, ३२, ३८, ३९। महेशदास के जीवन के अन्तिम वर्षों में जसवन्तसिह ने बादशाही मनसब स्वीकार कर लिया था। सन् १६४७ ई० में उसका मनसब ५ सदी जात —२५० सवार का था (पाद०, २, पृ० ७४८)। शाहजहाँ के अन्तिम वर्षों तक उसका यही मनसब बना रहा (वारिस०, २, पृ० २१७)। शुक्रवार, जून ४, १६४७ ई० को बादशाह ने उसे एक घोड़ा प्रदान कर आम्बेर वाले राजा जयसिह की सेना में उसे नियुक्त कर बल्ख की चढ़ाई पर उसे भेजा (पाद०, २, पृ० ६८४)।

तवर[२३] के पुत्र थे। कछवाही रानी रायकुँअर के कोई सन्तान न थी, वह कन्हीराम को बहुत चाहती थी और उसी कारण उसका भाई आम्बेर का राजा मानसिह भी कन्हीराम की पूरी-पूरी सहायता करता था।[२४]

दलपत के तीन-चार पुत्रियो का भी उल्लेख मिलता है। इनमे से एक का विवाह उदयपुर के महाराणा कर्णसिह के साथ हुआ था। दूसरी का विवाह जैसलमेर के रावल मालदेव के छोटे पुत्र खेतसी

मगलवार, जनवरी १६, १६४६ ई० को औरंगजेब कन्धार पर चढ़ाई करने के लिए पहली बार नियुक्त किया गया; इस चढाई पर जसवतसिह भी औरंगजेब की सेना के साथ गया था (वारिस०, १, पृ० ६६)। जसवन्तसिह की आगे की जीवनी एव उसकी मृत्यु का कोई भी हाल नही मिलता है।

उसके वंशज जसवन्तसिहोत कहलाते है। इस घराने के वशज आज भी सीतामऊ राज्य के अन्तर्गत लसूड़ी गाँव में रहते है।

[२३] ख्यातो में इसके दूसरे नाम रायकुंवर और हरकुँवर भी मिलते हैं। उसके पिता का नाम केसरीसिह था। एक ख्यात में इस रानी का नाम पदम कुँवर तथा उसे पाटण के राव चतुर्भज सकतसिहोत की पुत्री लिखा है। दूसरी में उसे लालसिह जी की पुत्री देवकुँवर बताया है।

कुछ ख्यातों के अनुसार जसवन्तसिह इस तवर रानी का पुत्र नही था; दलपत की दूसरी राजावत रानी ने ही उसे जन्म दिया था।

[२४] रासो०, पृ० १५। गुरूजी० में कन्हीराम का नाम और उसके निर्वंश होने का ही उल्लेख है। रासो० में उसका जो हाल मिलता है उससे ज्ञात होता है है कि दलपत का भी कन्हीराम के प्रति विशेष प्रेम था, और दलपति की सारी सम्पत्ति कन्हीराम को ही मिली। वयस्क होने पर राजा मानसिह की मदद से कन्हीराम ने शाही मनसब प्राप्त किया और तब वह बूदी के हाड़ा राव रतन सर-बुलंदराय की सेना में नियुक्त हुआ। सन् १६२५ ई० के प्रारम्भिक महीनो मे जब शाहजादा खुर्रम ने बुरहानपुर पर हमला किया तब कन्हीराम भी राव रतन

के साथ हुआ।[२५] तीसरी कन्या का विवाह बूँदी के राव रतन हाडा के तीसरे पुत्र हरीसिह के साथ हुआ।[२६]

फारसी ग्रथो मे दलपत के नाम के साथ किसी भी पदवी का प्रयोग नही किया गया है। परन्तु उसके समय की जो दो-एक सनदे मिलती है, उनमे तो दलपत ने स्वय को "राजा" लिखा है।[२७] दलपत के व्यक्तितत्व, उसके चरित्र, उसकी योग्यता, वीरता आदि का कोई भी विवरण नही मिलता है जिसके आधार पर तत्सम्बन्धी कोई विवेचना की जा सके।

के साथ बुरहानपुर में ही था। राव रतन ने खुर्रम का बड़ी वीरता के साथ सामना किया और सफलतापूर्वक बुरहानपुर की रक्षा की। इस युद्ध में राव रतन के कई राजपूत वीर काम गए; कन्हीराम भी इसी युद्ध में मारा गया। दलपत के मामा, सांचोरा चौहान सावतसिह का छठा पुत्र, अज्जा, कन्हीराम के पास नौकर था; वह भी इसी युद्ध में कन्हीराम के साथ काम आया।

रासो०, पृ० १५-१७, १४२-३; नैणसी०, १, पृ० १७६-७७; जहाँगीर०, पृ० ३८३-४; ईलियट०, ६, पृ० ३६५, ४१८; मा० उ०, २, पृ० २०९-२१०।

[२५] गुरूजी०; राणी०; बड़वो की ख्यातें। खेतसी के लिए देखो—नैणसी०, २, पृ० ३३५-६।

[२६] गुरूजी०, राणी० तथा बड़वो की ख्यातो में से किसी में भी इस विवाह का उल्लेख नही मिलता है। परन्तु वंशभास्कर में इस विवाह का विवरण दिया है। वश०, ३, पृ० २४५५-६।

[२७] राजव्यास०।

अध्याय ३

महेशदास

१. प्रारम्भिक जीवन

दलपत के पुत्र महेशदास का जन्म सोमवार, दिसम्बर २७, १५९६ ई० (माघ विदि ३, स० १६५३ वि०) को हुआ था।[1] सन् १६०० ई० (स० १६५६ वि०) के लगभग दलपत की मृत्यु होने के बाद कोई तीन वर्ष की आयु मे ही वह अपने पिता की जागीर का अधिकारी हुआ। इस समय महेशदास को पीसागन का प्रदेश जागीर मे मिला था।[2] महेशदास का बाल्यकाल एव यौवन के प्रारम्भिक दिन पीसागन मे ही बीते। महेशदास का प्रथम विवाह बाल्यावस्था मे ही झलाय के नवलसिह लूणकरण राजावत की पुत्री कुसुमकुँअरदे के साथ हो गया था। सन् १६०८ ई० (स० १६६५ वि०) मे महेशदास की इस रानी ने पीसागन मे गोवर्धननाथ का एक मन्दिर बनवाया था।[3]

---

[1] गुरूजी०।

[2] गुरूजी० मे लिखा है कि महेशदास को सं० १६५७ वि० (सन् १६०० ई०) मे पीसागना का परगना मिला। दलपत की मृत्यु के बाद उसकी जागीर का यह हिस्सा महेशदास को निर्वाह के लिए मिला होगा, यह अनुमान होता है। आगे भी कोई सन् १६३३ ई० के बाद तक महेशदास का परिवार पीसागन में ही रहा, और इसी स्थान से उसने कई एक सनदें दी थी (राजव्यास०)।

[3] गुरूजी०।

युवा होने पर महेशदास ने इस बात का अनुभव किया कि अपने पिता की तरह घर बैठ रहने से काम न चलेगा। आम्बेर के राजा मानसिह की मदद से उसके भाई कन्हीराम को शाही मनसब प्राप्त हो गया था।[४] पैतृक द्रव्य भी कन्हीराम के ही अधिकार मे था,[५] एव वह भी प्रारम्भ मे शाहजादा खुर्रम (जो बाद मे शाहजहाँ के नाम से गद्दी पर बैठा) की सेना मे नौकर हो गया।[६] कुछ समय बाद उसने यह नौकरी छोड कर मारवाड़ के शासक गजसिह की सेवा स्वीकार की। गजसिह ने इस सेवा के बदले मे महेशदास को कुडकी का पट्टा दिया।[७]

सन् १६२७-२८ ई० (स० १६८४ वि०) मे दलपत की माँ, रानी अजायब्रदे साचोरी नर्मदा किनारे स्थित ओंकारेश्वर महादेव के दर्शनार्थ तीर्थयात्रा पर निकली, महेशदास भी अपनी दादी के साथ था।[८] लौटते समय जब वे सीतामऊ के पास पहुँचे, वृद्धावस्था

---

[४] रासो०, पृ० १५। जुलाई ६, १६१४ ई० को राजा मानसिह की मृत्यु हुई, एव कन्हीराम को मनसब सन् १६१४ ई० से पहिले ही मिला होगा।

[५] रासो०, पृ० १६।

[६] गुरूजी०; राणी०; ख्यात०, १, पृ० १०६। किस वर्ष महेशदास खुर्रम की सेना में पहुँचा यह निश्चित रूपेण नहीं कहा जा सकता है। सन् १६१६ ई० में खुर्रम का महत्व बढ़ा; सन् १६१९ में जोधपुर के राजा सूरसिह की मृत्यु के बाद ही खुर्रम को मेड़ता का परगना मिला था, उसी समय महेशदास का खुर्रम के पास पहुँचना सम्भव ज्ञात होता है। ख्यात०, १, पृ० १५१।

[७] ख्यात०, १, पृ० १०६; राणी०। गजसिह को मेड़ता का परगना सन् १६२३-२४ ई० में मिला था (ख्यात०, १, पृ० १५१)।

कुड़की कस्बा अजमेर से कोई २५ मील पश्चिम में है।

[८] सीतामऊ०, पृ० २ पर सन् १६३४ ई० के बाद ही इस घटना के होने

मे इस लम्बी यात्रा की असुविधा और थकावट से बीमार होकर रानी अजायबदे कुँअर का सीतामऊ मे ही देहान्त हो गया। उस समय सीतामऊ पर गजमालोत राठौड़ भूमिया घराने का अधिकार था।[१] महेशदास ने अपनी दादी की दाहक्रिया के लिए कुछ जमीन चाही, परन्तु भूमिया ने अपने अधिकार की धरती पर दाहक्रिया

का उल्लेख है, परन्तु राणी० के अनुसार यह घटना सं० १६८४ वि० (सन् १६२७-२८ ई०) में ही घटी थी। राणी० में दिया हुआ साल अधिक ठीक जान पड़ता है।

सीतामऊ० के अनुसार महेशदास की माता इस तीर्थ यात्रा पर गई थी और सीतामऊ में उसकी मृत्यु हुई। परन्तु गुरूजी० में दलपत की माँ और महेशदास की दादी का ही सीतामऊ में यो देहान्त होने का लिखा है, जो अधिक विश्वसनीय है। राणी०तथा अन्य ख्यातो मे यो सीतामऊ में मृत्यु को प्राप्त होनेवाली रानी का नाम नहीं दिया है कि उससे इस प्रश्न पर कोई निश्चयात्मक प्रकाश पड सके।

[१] सीतामऊ० (पृ० ३)के अनुसार ये भूमिया रावत साँगावत राठौड़ो की ही एक शाखा के थे; ईडर राज्य के अन्तर्गत लौतरा गाँवके रहने वाले थे। जूझार-सिंह नामक व्यक्ति के नेतृत्व में अपना गाँव छोड़कर सन् १४५६ ई० के लगभग ये मालवा में चले आए और सीतामऊ कस्बे से एक मील उत्तर में खेडा नामक गाँव में बस गए। उस समय इस प्रदेश पर भीलो और मीणा लोगो का ही अधिकार था। इन भूमियाओंने धीरे-धीरे सारे प्रदेश से भीलो को निकाल भगाया और यहाँ अपना अधिकार स्थापित किया। सन् १५४६ ई० के लगभग जूझारसिंह के पौत्र, नागजी ने सीतामऊ कस्बा भीलों से छीन लिया और स्वयं एक स्वाधीन शासक बन बैठा।

सीतामऊ कस्बा तीतरोद परगना के अन्तर्गत था। आईन० (२, पृ० २०८) के अनुसार १६ वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में तीतरोद परगने पर डोड़िया राज-पूतो का अधिकार था। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ये भूमिया पूर्णतया स्वाधीन न थे, और इनका अधिकार सीतामऊ कसबे से बाहर बहुत अधिक न था।

करने की आज्ञा न दी। तब कसबे के काजी ने दाहक्रिया के लिए सीतामऊ के तालाब के किनारे अपने बाडे की जमीन मे से कुछ हिस्सा महेशदास को दिया। महेशदास ने दाहस्थान पर एक छत्री भी बनवा दी थी, जो आज भी सीतामऊ मे विद्यमान है।[10] कहा जाता है कि सीतामऊ से रवाना होते समय महेशदास ने भूमियाओ पर दगाबाजी से हमला किया और उन्हे क्षति पहुँचाकर उस विरोध का उनसे बदला लिया।[11]

अक्तूबर २८, १६२७ ई० को जहाँगीर की मृत्यु हो गई। उस समय शाहजादा शाहजहाँ दक्षिण मे था, अपने पिता की मृत्यु का हाल सुन कर वह आगरा के लिए रवाना हुआ। जनवरी १४, १६२८ ई० को वह अजमेर पहुँचा और वहाँ उसने अपने पुराने साथी, सुप्रसिद्ध मुगल सेनापति महाबतखाँ को अजमेर का सूबेदार नियुक्त किया। फरवरी ४, १६२८ ई० को शाहजहाँ आगरा मे तख्त पर बैठा, इसी अवसर पर उसने महाबतखाँ का मनसब बढ़ाया और उसे खानखाना की उपाधि भी दी। अजमेर की सूबेदारी पर महाबत खाँ की नियुक्ति होने के बाद जनवरी-फरवरी, १६२८ ई० (माघ स० १६८४ वि०) में महेशदास ने राजा सूरसिह की नौकरी छोड दी और वह जाकर महाबत खाँ खानखाना की सेना मे सम्मिलित हो गया[12] तथा महाबत खाँ की मृत्यु तक उसी की सेना मे वना

---

[10] इस काजी के वंशज आज भी सीतामऊ राज्य के काजी है, और वह बाड़ा अब भी उन्हीं के अधिकार में है।

सीतामऊ०, पृ० २ पर लिखा है कि उक्त जमीन महेशदास ने मोल ली थी।

[11] सीतामऊ०, पृ० ३।

[12] ख्यात०, १, पृ० १०६; गुरुजी०; राणी०।

रहा। महेशदास के भाई कन्हीराम की मृत्यु बुरहानपुर के युद्ध मे हो ही चुकी थी[13], एव अब महेशदास के बाकी रहे तीन भाई जसवतसिह, राजसिंह एव जुझारसिंह भी महेशदास के समान महाबत खॉ की सेना मे जा पहुँचे।[14]

महाबत खॉ की सेना मे महेशदास और उसके भाइयो की नियुक्ति होने के कुछ ही महीनों बाद महाबत खॉ की अजमेर से तबदीली हो गई। पहले वह बल्ख की तरफ भेजा गया, बाद मे जुझारसिह बुन्देला के विद्रोह को दबाने उसे बुन्देलखण्ड जाना पडा। सन् १६२९ ई० के नवम्बर-दिसम्बर के लगभग वह दिल्ली का सूबेदार नियुक्त किया गया और मई, १६३२ ई० तक वह इसी सूबेदारी पर बना रहा।[15] इन चार-पॉच बरसो मे महेशदास और उसके भाइयों ने महाबत खॉ की सेना के साथ किन-किन प्रदेशो की यात्रा की और क्या-क्या किया इसका कोई भी विवरण नही मिलता है।

२. महाबत खाँ के साथ दक्षिण में—दौलताबाद-विजय और परेण्डे का घेरा

गद्दी पर बैठने के समय से ही शाहजहाँ अहमदनगर राज्य को मुगल साम्राज्य मे मिला लेने के लिए प्रयत्नशील था। मुगल साम्राज्य की दक्षिणी सीमा को आगे बढाने के उद्देश्य से ही शाहजहाँ

---

[13] रासो०, पृ० १६-१७, १४२-३; जहांगीर०, पृ० ३८३-४।

[14] रासो०, पृ० १५, १७; गुरूजी०।

[15] पाद०, १, पृ० १९९, २१२, २३०, २४१, २४२, २५४, ३५२, ४२४; मा० उ०, १, पृ० ७२३; ३, पृ० ३९९; बनारसी०, पृ० १८५-६, ७९-८२, ६९, १३७-३८।

सन् १६२९ ई० के दिसम्बर मे स्वय सेना लेकर दक्षिण गया था। अहमदनगर राज्य के सुप्रसिद्ध मत्री, मलिक अम्बर का पुत्र, फ़तेह खॉ, सन् १६३१ ई० मे पुन अहमदनगर राज्य का कर्ता-धर्ता बन गया, उसने अपने स्वामी निजाम-उल्-मुल्क मुर्तज। शाह को कैद कर अन्त में उसे विष पिला कर मरवा डाला। फतेह खॉ ने मुगल साम्राज्य की अधीनता स्वीकार कर शाहजहॉ से सन्धि कर ली। इससे सन्तुष्ट होकर शाहजहॉ अप्रेल ५, १६३२ ई० को बुरहानपुर से उत्तरी भारत के लिए रवाना हो गया।[१६]

इस समय दक्षिणी सूबो की सूबेदारी पर आजम खॉ नियुक्त था, परन्तु शाहजहॉ को यह आवश्यक जान पड़ा कि आजम खॉ के स्थान पर किसी अधिक सुयोग्य व्यक्ति की नियुक्ति की जावे। अतएव मई २, १६३२ ई० के दिन शाहजहॉ ने आजम खॉ को बदल कर महाबत खाँ को दक्षिण और खानदेश की सूबेदारी दी। महाबत खॉ इस समय दिल्ली मे था, एव उसे हुक्म हुआ कि दक्षिणी सूबो के शासन-सम्बन्धी आदेश प्राप्त करने को वह शीघ्र ही बादशाही सेवा मे उपस्थित हो। महाबत खॉ के दक्षिण पहुँचने तक उन सूबो की देख-भाल का काम महाबत खॉ के ही पुत्र खान जमान को, जो इन दिनों दक्षिण मे था, सौपा गया।[१७]

शाही हुक्म पाकर महाबत खाँ खानखाना दिल्ली से रवाना

---

[१६] पाद०, १, पृ० ३७८-७९, ४०२, ४०९-१०, ४२२; बनारसी०, पृ० ७३-७७, १३१, १३६-१३७। शाहजहाँ बुरहानपुर से २४ रमज़ान को रवाना हुआ; बनारसी०, पृ० १३७ पर शाहजहॉ के रवाना होने की अंग्रेजी तारीख मार्च ६, १६३२ ई० दी गई है, जो सर्वथा ग़लत है। उस दिन २४ शाबान था, २४ रमज़ान नहीं।

[१७] पाद०, १, पृ० ४२४; बनारसी०, पृ० १३८ फुटनोट।

होकर मई २७, १६३२ ई० को आगरा के पास शाहजहाँ की सेवा मे जा पहुँचा। जून ७, १६३२ ई० को शाहजहाँ ने महाबत खाँ को दक्षिण के लिए बिदा किया, महाबत खाँ के छोटे लडके और बडे लडके खान जमान का लडका भी महाबत खाँ के साथ चले।[१८] महेशदास राठौड और उसके तीनो भाई, जसवन्तसिह, जुझारसिह तथा राजसिह, इस समय महाबत खाँ की सेना मे थे, उन सब का महाबत खाँ के साथ दक्षिण जाना अवश्यम्भावी था। दक्षिण जाते समय कुछ काल के लिए महेशदास अपने घर पीसागन गया था; वहाँ अपने कौटुम्बिक मामलो को तय कर अगस्त, १६३२ ई० के प्रारम्भ मे उसने व्यास रघुनाथ को अपने घराने का राजव्यास नियुक्त किया। पीसागन से वह सीधा ही महावत खाँ के पास दक्षिण में जा पहुँचा होगा।[१९]

महाबत खाँ की सेना मे इस समय महेशदास के कई अन्य सम्बन्धी और साथी भी सेवा कर रहे थे। महेशदास के मामा जोगीदास के दोनों लडके भाटी जगन्नाथ और भाटी रघुनाथ भी

---

[१८] पाद०, १, पृ० ४२६, ४२८।

[१९] रासो०, पृ० २२; राजव्यास०। अगस्त, १६३२ ई० मे महेशदास पीसांगन में ही था, और वहीं उसने रघुनाथ व्यास को दो सनदें दीं। भाद्रपद सु० २, सं० १६८९ बि० (अगस्त ७, १६३२ ई०)को रघुनाथ को राजव्यास के पद पर नियुक्ति की सनद मिली। सात दिन बाद भाद्रपद सु० ९ (१४ अगस्त) को उसे परगना तीतरोद (वर्तमान सीतामऊ राज्य)में चगत्या नामक गाँव पुण्यार्थ मिला। तबसे कोई सन् १९०५ ई० तक यह गाँव रघुनाथ व्यास के वशजो के ही अधिकार में था। यह रघुनाथ, दलपत द्वारा नियुक्त राजव्यास हरि दायमा के ही वंश का था; सभव है उसी का पुत्र हो। इस घराने का पूरा-पूरा वंशवृक्ष नहीं प्राप्त हो सका है।

महावत खॉ के साथ थे ।[२०] महेशदास के पिता दलपत के मामा सांचोरा चौहान सावन्तसिह के चार पुत्र सादूल, बल्लू, अचलदास और गोपालदास भी महाबत खॉ की इसी सेना मे थे । महाबत खॉ के साथ ही ये सब दक्षिण को गए ।[२१]

दक्षिण पहुंचने पर महाबत खॉ ने देखा कि वहॉ की परिस्थिति पूर्णतया बदल चुकी थी । शाहजी भोसला ने पुन मुगल साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह का झडा खडा किया, और मुगल सेनाओ का सामना करने के लिए बीजापुर के आदिलशाह ने भी रणदौला खॉ के नेतृत्व मे एक बडी सेना दौलताबाद की ओर भेजी । शाहजी और रणदौला खॉ को दौलताबाद की ओर बढते देख कर फ़तेह खॉ घबरा गया और उसने सहायता के लिए महाबत खॉ को लिखा । महाबत खॉ ने अपने पुत्र ख़ान जमान को ४०,००० सिपाहियो की एक बडी सेना

---

[२०] दौलताबाद की इस चढाई के समय भाटी गोविन्ददास के दोनो पौत्र, जगन्नाथ और रघुनाथ, भी महेशदास के साथ थे, जिसका उल्लेख रासो० में है । इन दोनो भाइयो का महेशदास के साथ क्या कौटुम्बिक सम्बन्ध था, इसकी ओर रासोकार ने कहीं भी सकेत नहीं किया है । इसके विपरीत रासो के उक्त विवरण से यही अनुमान होता है कि ये दोनो भाई महेशदास के सामन्त या सेनानायक मात्र थे; रासो०, पृ० २२, २६, ३२, ३८ । परन्तु यह बात ठीक नहीं । महेशदास की ही तरह ये दोनो भाई भी महाबत ख़ां की सेना में नौकर थे, और जगन्नाथ पर तो महाबत ख़ां का पूरा-पूरा विश्वास था । नैणसी०, २, पृ० ३६६-३६७; पाद०, १, पृ० ५०६; १ (खण्ड २), पृ० ३८ ।

[२१] नैणसी०, १, पृ० १७६-७; २, पृ० ३६६-७ । सादूल और अचलदास महाबत ख़ाँ की सेवा करते हुए दक्षिण में ही इन्हीं दो वर्षों में (सन् १६३३-४ ई० में) मारे गए । दौलताबाद के घेरे के समय उनके मारे जाने का उल्लेख कही भी नहीं मिलता है । अगले वर्ष परेण्डा के किले पर चढ़ाई के समय फरवरी २४, १६३४ ई० के युद्ध में उनका मारा जाना अधिक सभव जान पड़ता है ।

लेकर तेजी से आगे भेजा और स्वय भी पीछे-पीछे जनवरी १, १६३३ ई० को दौलताबाद के लिए रवाना हुआ। परन्तु खान जमान के दौलताबाद पहुँचने से पहिले ही फतेह खाँ रणदौला के साथ समझौता कर मुगलों का विरोध करने का निश्चय कर चुका था। महाबत खॉ इधर जब जफरनगर[२२] पहुँचा तो उसे फतेह खॉ की इस नई चाल का पता लगा। उसने तत्काल खान जमान को हुक्म भेजा कि वह दौलताबाद के किले का घेरा डाले। खान जमान ने निजामपुर से शाहजी को खदेड कर दौलताबाद के किले का घेरा डाला। महाबत खॉ भी जफरनगर से बढता हुआ मार्च १, १६३३ ई० को दौलताबाद पहुँचा।[२३]

महाबत खॉ के साथ महेशदास राठौड़, उसके भाई, अन्य सम्बन्धी तथा साचोरा योद्धा भी दौलताबाद जा पहुँचे। दौलताबाद के इस घेरे के समय महेशदास, उसके भाई और अन्य साथियो ने अनेकानेक बार वीरता दिखाई, जिससे महेशदास की वीरता की कहानियॉ सब दूर कही जाने लगी। पादशाहनामे मे महेशदास अथवा उसके सम्बन्धियो के युद्ध मे सम्मिलित होने का तीन बार ही स्पष्ट उल्लेख मिलता है। यह सम्भव है कि इनके अतिरिक्त अन्य समय भी महेशदास युद्ध मे सम्मिलित हुआ हो, किन्तु प्रामाणिक प्राप्य इतिहास के आधार पर उन विशिष्ट अवसरो का ही विस्तृत विवरण दिया जाता है।[२४]

---

[२२] यह स्थान अब 'जफराबाद' नाम से प्रसिद्ध है। बुरहानपुर से कोई ८० मील दक्षिणमें यह स्थान आजकल हैदराबाद राज्य के औरंगाबाद जिले में है।

[२३] पाद०, १, पृ० ४४२, ४९६-५०१; हाउस०, पृ० ४३-४४; बनारसी०, पृ० १३९-४०।

[२४] रासो०, पृ० १८-४७ पर भी महाबत खॉ की दक्षिणी सूबो की सूबेदारी

दौलताबाद के किले का घेरा लगा कर उसको हस्तगत करने के प्रयत्न किए जा रहे थे। पुन यद्यपि खान जमान ने शाहजी आदि विरोधी दलो को खदेड दिया था, परन्तु फिर भी ये दल पर्याप्त दूरी पर मुगल सेना के चारो ओर चक्कर काटते ही रहे, और समय-समय पर किले मे भोजन-सामग्री आदि अत्यावश्यक वस्तुएँ पहुँचाने का कई बार विफल प्रयत्न किया। मार्च २८, १६३३ ई० को भी इसी प्रकार शत्रुओ का एक दल धान्य की कई थैलियाँ लेकर किले तक पहुँच गया और जब मुगल सेना ने उन पर हमला किया तो वे उन थैलों को किले के बाहर की मुगलो की खन्दको मे डाल कर भाग गए। वहाँ से लौटते समय राह मे शत्रुओ के इस दल की महाबत खाँ के पोते और खान जमान के बेटे, शुक्रुल्ला खाँ से मुठभेड हो गई। इस लड़ाई मे शत्रुओं के भी बहुत से सैनिक मारे गए। मुगलो की ओर से शुक्रुल्ला खाँ के साथ महेशदास राठौड का ममेरा भाई जगन्नाथ

पर नियुक्ति, बादशाह की सेवा में से उसका दक्षिण को रवाना होना, दौलताबाद का घेरा लगाना, किले में धान्य की कमी होना, बीजापुर आदि से सहायता के लिए किलेवालो की प्रार्थना एवं बीजापुरवालो का सहायतार्थ सेना भेजना, महाबत खाँ का किले पर हमला करने का निश्चय करना, किले पर हमला, महेशदास एवं उसके साथियो का वीरतापूर्वक युद्ध करना, किले का महाबत खाँ के अधिकार में आना, शाहजहाँ की सेवा में महाबत खाँ का पत्र लिखना, दिल्ली में विजयोत्सव, आदि का विवरण लिखा है। परन्तु यह वर्णन इस युद्ध से कोई चालीस वर्ष बाद महेशदास के पौत्र के समय में लिखा गया था, एवं इस वर्णन में ऐतिहासिक तथ्य कम और कवित्व अधिक है। कवि ने महेशदास के महत्त्व का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन किया है। पाद० में अप्राप्य, तथा प्रधान प्रामाणिक घटनावली से विरुद्ध न पाई जाने वाली कौटुम्बिक और निजी घटनाओं के लिए रासो० अवश्य बहुत ही उपयोगी है। ऐसी सारी बातो का यथास्थान समावेश कर लिया गया है।

भाटी भी था, वह बहादुरी के साथ लडकर इस युद्ध मे काम आया। पादशाहनामे मे लिखा है कि जगन्नाथ भाटी की गिनती महाबत खाँ के बहुत ही विश्वासपात्र बहादुर राजपूतो मे की जाती थी।[२५]

दौलताबाद का किला बहुत ही सुदृढ था, उसमे अनेकानेक परकोटे थे। किले के बीचोंबीच सुदृढ चट्टान पर स्थित अजेय कालाकोट था, उससे नीचे महाकोट था। महाकोट से बाहर एक और बहुत ही सुदृढ दीवाल थी, इसे मलिक अम्बर ने बनवाया था, एवं वह अम्बरकोट के नाम से प्रसिद्ध थी। पादशाहनामे मे लिखा है कि "यह अम्बरकोट धरती से चौदह गज ऊँचा था और उसकी मोटाई दस गज की थी; इसके ऊपर तोपें लगी हुई थी और हमला करने वालो का सामना करने का पूरा-पूरा प्रवन्ध था।" अम्बरकोट से बाहर एक गहरी खाई भी थी।[२६] इस सुदृढ किले का घेरा अब और भी सख्ती से लगाया जाने लगा, ऐसे ही समय एक दिन महेशदास का साथी, साचोरा चौहान सावन्तसिह का पुत्र, गोपालदास, किले की दीवाल से चलाए हुए एक गोले के लगने से मर गया।[२७]

अम्बरकोट को तोड कर किले मे घुसने के लिए राह बनाने

---

[२५] पाद०, १, पृ० ५०९; नैणसी०, २, पृ० ३६६-३६७। रासो० में इस घटना का कोई उल्लेख नहीं है। अप्रेल ९, १६३३ ई० की रात को अम्बरकोट पर आक्रमण के समय भी जगन्नाथ भाटी का महेशदास के साथ होना लिखा है (पृ० ३०८); इससे स्पष्ट है कि रासोकार को जगन्नाथ भाटी के पहिले ही मारे जाने की घटना ज्ञात न थी।

[२६] पाद०, १, पृ० ५०२, ५१३, ५२९।

[२७] रासो०, पृ० २६। रासो में कोई तिथि या तारीख नहीं दी गई है; परन्तु विवरण देखने से यह स्पष्ट है कि घेरे के प्रारम्भिक दिनो में (मार्च, १६३३ ई० में) ही गोपालदास मरा था। नैणसी०, १, पृ० १७६-७।

को कोट के नीचे तक एक सुरग बना कर उसमे बारूद भरी गई। अप्रेल ९, १६३३ ई० को यह सुरग तैयार हो गई। उसी रात पिछले पहर सुरग उडाने, एवं सुरग के उडते ही तत्काल किले पर हमला करने का निश्चय कर, उसके लिए तैयारी की जाने का आदेश दिया गया। परन्तु भूल से निश्चित समय से पहिले ही वह सुरग चला दी गई, जिससे २८ गज दीवार और १२ गज बुर्ज का हिस्सा उड गया। उस समय मुगल सेना तैयार न थी, एव सुरग उडने से हुई क्षति का लाभ उठा कर वह तत्काल ही किले मे नही घुस सकी। इधर किले वाले टूटी दीवार के उस हिस्से पर आ डटे और किले की रक्षा के लिए जी-जान से लडने लगे। उन्होने अस्त्र-शस्त्र ऐसी तेजी से फेके कि हमला करने वाले पीछे हटकर खाइयों में जा छुपे। तब तो किले वाले उस टूटी हुई दीवार के स्थान पर लकडी के बडे-बडे पाट डाल कर किले के बचाव का प्रबन्ध करने लगे।

महाबत खॉ घटनास्थल पर उपस्थित था, उसे अपने सारे प्रयत्न विफल होते देख पडे। हमला करने वालो को साहस बँधाने के लिए उसने स्वय पैदल ही उनके साथ जाने का निश्चय किया, परन्तु नासिर खॉ ने उसे रोक दिया और हमला करने वालो के दल को लेकर वह स्वय अम्बरकोट की ओर बढा। तब तो महाबत खॉ ने महेशदास राठौड और उसके साथियो को नासिर खा की मदद पर भेजा। महेशदास के साथ इस समय उसके तीनो भाई, जुझारसिह, राजसिह एव जसवन्तसिह, सांचोरा चौहान बल्लू और भाटी रघुनाथ थे। नासिर खॉ, महेशदास राठौड और उनके साथियों ने किले की उस टूटी हुई दीवार पर बडे जोरो से हमला किया। किले वालो ने डट कर उनका सामना किया। नासिर खॉ जख्मी हुआ। महेश-दास राठौड़ के दो भाई, जुझारसिह और राजसिह, बड़ी वीरता के

साथ लडते हुए काम आए। महेशदास और बल्लू भी वीरता के साथ लड़े और जख्मी नासिर खॉ के साथ आगे बढते ही गए। उधर राजा पहाडसिंह बुन्देला और उनके अन्य साथियो ने भी बाएँ तरफ से उसी दीवार पर हमला किया। खैरियत खॉ बीजापुरी ने बहुत देर तक मुगल सेना का सामना किया, परन्तु अन्त मे उसे पीछे हटना ही पडा, महाकोट की खाइयो मे जाकर उसने अपनी जान बचाई। अम्बरकोट पर मुगल सेना का अधिकार हो गया, और महाबत खॉ ने तत्काल ही महाकोट का घेरा लगाने का प्रबन्ध किया। अम्बर-कोट को जीतने मे महेशदास राठौड़ और उसके साथियों ने बहुत वीरता दिखाई, महेशदास के दो भाई इस युद्ध मे मारे गए, और कहा जाता है कि इस युद्ध मे महेशदास को भी चार घाव लगे थे। महेशदास की इस वीरता, आत्म-त्याग और प्रयत्नो से महाबत खाँ का प्रसन्न होना स्वाभाविक ही था।[२८]

---

[२८] पाद०, १, पृ० ५१२-५१४; रासो०, पृ० ३७-४१।

महेशदास का कौटुम्बिक और निजी झण्डा सफेद था; युद्धो के सब अवसरो पर महेशदास का निजी सैनिक दल उसे साथ ले जाता था। वह सफेद झण्डा इस युद्ध के समय भी साथ था। गुरूजी० में लिखा है कि दौलताबाद के इस घेरे के अवसर पर जब महेशदास ने क़िले (अम्बरकोट) में घुस कर उस पर सफलता-पूर्वक अधिकार किया, तब वहॉ शत्रुओ का एक लाल झण्डा उसके हाथ लगा। महेशदास ने यह झण्डा महाबत खॉ को और उसके द्वारा शाहजहॉ को भेंट किया। किन्तु इस लाल झण्डे को महेशदास ने ही जीता था, एवं इस युद्ध में उसकी वीरता से प्रसन्न होकर वह लाल झण्डा महेशदास को ही दे दिया गया। तब से यह लाल झण्डा भी महेशदास का दूसरा कौटुम्बिक झण्डा बन गया। आज भी महेशदास के वशजो के झण्डो के रंग श्वेत और लाल होते है। चूँकि यह लाल झण्डा जीत कर श्वेत ध्वज के पीछे-पीछे ही लाया गया था एव जुलूसो वग़ैरह में आज भी यह लाल झण्डा सफेद झण्डे से पीछे ही रहता है।

इधर किले के अन्दर धान्य की कमी निरन्तर बढती जा रही थी; अब किले वालो के भूखो मरने की नौबत आई। अतएव यद्यपि पहिले भी उनके कई प्रयत्न विफल हो गए थे, रणदौला और शाहजी ने एक बार और किले तक अनाज पहुँचाने का प्रयत्न किया। अप्रेल १७, १६३३ ई० को धान्य के ३,००० थैले किले तक पहुँचाने के लिए कर्णाटकी सैनिकों के साथ भेजे। महाबत खाँ को इस प्रयत्न का पहिले ही पता लग गया था; उसने किले के पास की खाई के बाहर नासिर खाँ आदि को नियुक्त किया और राजपूतो का एक दल महेशदास राठौड़ के नेतृत्व मे खाई के अन्दर छुपा कर रखा। जब धान्य को लाने वाला दल खाई के पास पहुँचा मुगल सैनिकों

गुरूजी० में दिए गए उपर्युक्त कथानक का कोई अन्य ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता है। महेशदास के वशजो द्वारा स्थापित राज्यो में वशपरम्परागत यही कथा तथा रीति-रस्म प्रचलित है।

इस लाल झण्डे की प्रारम्भिक आकृति क्या थी यह निश्चित रूपेण बताना सम्भव नही, क्योंकि जब वह झण्डा कौटुम्बिक झण्डा बन गया तो रंग के अतिरिक्त आकृति आदि अन्य बातो मे यह झण्डा भी श्वेत झण्डे के समान ही बना दिया गया।

यह लाल झण्डा प्रारम्भ में किसका था? महेशदास ने किससे छीना? एव कब उसे हस्तगत किया? इन प्रश्नो का निश्चित रूपेण उत्तर नही दिया जा सकता है। मारवाड़०, १, पृ० २०१ पर लिखा है कि जोधपुर के राजा गजसिंह ने भी सन् १७२१ ई० मे मलिक अम्बर का लाल झण्डा छीन लिया था और उसी सफलता की यादगार के उपलक्ष मे उसी दिन से जोधपुर के राजकीय झण्डे में लाल रग की पट्टी लगाई जाती है। इसे देखते हुए यही अनुमान होता है कि महेशदास ने जो लाल झण्डा जीता वह मलिक अम्बर के पुत्र, फतेह खाँ का ही था, और अप्रेल १०, १६३३ ई० को अम्बरकोट पर हमला करते समय ही यह झण्डा उसके हाथ लगा। यो मारवाड़० के इस उल्लेख द्वारा गुरूजी० में दिए गए विवरण का समर्थन होता है।

ने दोनों ओर से हमला किया, जिससे दुश्मनों के सिपाही भाग खडे हुए और शाही सैनिक धान्य के सारे थैले शाही शिविर मे ले गए ।[२९]

इसके बाद शाही सेना को घेरा उठाने के लिए बाध्य करने को शत्रुओ ने अनेक प्रयत्न किए, परन्तु महाबत खाँ ने किला लेकर ही छोडा । मई २४ को शाही सेना ने महाकोट पर भी अधिकार कर लिया । अन्त मे फतेह खॉ भी किला छोड कर बाहर निकल आया और जून १७ को दौलताबाद पर मुगलो का अधिकार हो गया । महाबत खॉ ने दौलताबाद का किला नासिर खॉ को सौप दिया और वह स्वयं बुरहानपुर को लौट गया । महेशदास, उसका भाई जसवन्तसिंह एव उसके अन्य साथी साचोरा चौहान बल्लू, शादूल तथा भाटी रघुनाथ भी महाबत खॉ के साथ बुरहानपुर को लौट गए ।[३०]

दौलताबाद का किला जीतने की खुशी मे महाबत खॉ आदि सेनानायको को पुरस्कार एव उच्च उपाधियॉ दी गईं । पादशाहनामे मे लिखा है कि "दूसरे निम्नकोटि के व्यक्तियो को उनकी सेवा और उनके पद के अनुसार इनाम दिए गए" । इस समय महेशदास महाबत खॉ की सेवा मे था एव उसका कोई विशेष उल्लेख इनाम पाने वालों की सूची मे नही मिलता है ।[३१]

दौलताबाद के किले को जीत कर भी महाबत खॉ को सन्तोष न हुआ; उसने अनुभव किया कि सुदूर स्थित परेण्डा के किले को हस्तगत किए बिना अहमदनगर के विजित प्रदेशों पर शान्तिपूर्वक शासन करना सम्भव नही । अतएव उसने परेण्डा के किले पर चढाई

---

[२९] पाद०, १, पृ० ५१४-५; बनारसी०, पृ० १४०-१४१ ।

[३०] पाद०, १, पृ० ५१४-५२८, ५३२ ।

[३१] पाद०, १, पृ० ५३१-५३२; बनारसी०, पृ० १४२-३ ।

करने का प्रस्ताव किया और इस चढाई के लिये किसी शाहजादे के भेजे जाने की महाबत खॉ ने प्रार्थना की। महाबत खॉ के प्रस्ताव को स्वीकार कर शाहजहॉ ने शाहजादे शुजा को सेना के साथ अगस्त १८, १६३३ ई० को आगरा से दक्षिण के लिए रवाना किया। बुरहानपुर मे महाबत खॉ शाहजादे से मिला और वहॉ से सीधा परेण्डा जाने के लिए अक्तूबर २०, १६३३ ई० को वे रवाना हुए। महाबत खॉ ने अपने लडके खान जमान को बहुत सी सेना के साथ आगे जाकर परेण्डा का घेरा लगाने को भेजा। महाबत खॉ स्वय शाहजादे के साथ पीछे धीरे-धीरे चला। महाबत खॉ के साथ महेश-दास राठौड, भाटी रघुनाथ आदि उसके विश्वस्त वीर राजपूत भी थे।

खान जमान परेण्डा का घेरा लगा कर बैठ गया; महाबत खॉ ने उसकी मदद के लिए राजा विठ्ठलदास गौड के साथ कुछ और सेना भेजी। महाबत खॉ और शुजा ने भी पीछे-पीछे आकर परेण्डा से कोई तीन कोस की दूरी पर डेरा डाला। किन्तु इधर महाबत खॉ का पुराना विरोधी शाहजी भोंसला चुप नही बैठा था। निजाम-शाह के दूर के किसी भाई को उसने अहमदनगर राज्य का सुलतान घोषित कर बीजापुर राज्य की मदद से महाबत खॉ को हैरान करने मे कोई भी प्रयत्न उठा नही रखा। मुगल पड़ाव मे अन्न, घास-दाना आदि की कमी पड गई, और सारे प्रयत्न करने पर भी बुरहानपुर के साथ महाबत खॉ का ऐसा लगाव नही रह सका कि अन्न-घास आदि आवश्यक वस्तुएँ बेरोक-टोक उसके पडाव तक पहुँच सकें। शाहजी के सैनिक मुगल सेना के अन्न-घास के कारवॉ पर आक्रमण कर लगातार लूट-खसोट करने लगे।[१२]

---

[१२] पाद०, १, पृ० ५३७-३९; १ (खण्ड), पृ० ३४-३५, ३६-३७;

ऐसे ही एक अवसर पर फरवरी २४, १६३४ ई० को महाबत खाँ अपने शिविर से कोई आधे कोस ही गया था कि दस हजार शत्रुओं के एक दल ने महाबत खाँ की सेना पर हमला कर दिया। महाबत खाँ के हरोल मे महेशदास राठौड, रघुनाथ भाटी और अन्य राजपूत थे, उन्होने डट कर शत्रु का सामना किया, और सारे राजपूत लडते हुए रणभूमि मे गिर गए। महाबत खाँ की जान पर बन आई, और अपने घायल राजपूतो को उठाने का भी उसे अवसर न मिला। परन्तु महाबत खाँ के सौभाग्य से इसी समय नासिर खाँ, जो अब ख़ान दौरान कहलाता था, कोई बारह हजार सवारो के साथ वहाँ आ पहुँचा। ख़ान दौरान के आते ही दुश्मन भाग खडे हुए और महाबत खाँ की जान बच गई। ख़ान दौरान जाकर महेशदास राठौड और दूसरे राजपूतो को उठा लाया। महेशदास जीवित था, परन्तु वह बहुत ही बुरी तरह घायल हो गया था। इलाज और दवाई से महेशदास और कई अन्य घायल राजपूतो की जान बच गई।[३३]

बनारसी०, पृ० १५६-१६१।

[३३] पाद०, १ (खण्ड २), पृ० ३८-३९।

रघुनाथ भाटी भी घायल हुआ था, किन्तु वह भी बच गया। सन् १६५८ ई० में धरमत (फ़तेहाबाद) के युद्ध के समय यही रघुनाथ भाटी जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह की सेवा में था, एवं उसकी ओर से औरंगजेब के विरुद्ध लड़ कर घायल हुआ था। ख्यात०, १, पृ० २१४, २२२; रासो०, पृ० १३४।

नैणसी०, २, पृ० ३६६-३६७ पर लिखा है कि भाटी रघुनाथ का पिता, जोगीदास, 'स० १६६१ वि० (सन् १६३४ ई०) में महाबत खाँ के पक्ष में काम आया'। पाद० में कही भी इस घटना का कोई उल्लेख नहीं होना नैणसी के इस उल्लेख को शंकास्पद अवश्य बना देता है। परन्तु अनुमान यही होता है कि

इसी प्रकार की निरन्तर लडाई और कठिनाइयाँ, तथा महाबत खाँ और खान दौरान मे आपसी मनोमालिन्य के कारण शाही सेना को परेण्डा किला जीतने मे कोई सफलता न मिली। हताश होकर महाबत खाँ की सलाह के अनुसार मई २१, १६३४ ई० को शाहजादा शुजा और महाबत खाँ परेण्डा के किले का घेरा उठा कर बुरहानपुर के लिए रवाना हो गए। तीन सप्ताह बाद जून १३, १६३४ ई० को वे बुरहानपुर पहुँचे। शाही सेना की इस विफलता का हाल सुन कर शाहजहाँ बहुत ही रुष्ट हुआ और उसने शुजा को तत्काल ही उत्तरी भारत लौट आने के लिए लिखा। परेण्डा की अपनी इस विफलता और शाहजहाँ की अप्रसन्नता से महाबत खाँ बहुत ही क्षुब्ध हो गया, उसका स्वास्थ्य बिगडने लगा, और अक्तूबर २६, १६३४ ई० को बुरहानपुर मे ही महाबत खाँ की मृत्यु हो गई।[३४]

३. शाही सेवा में—मान और पद-वृद्धि

महाबत खाँ की मृत्यु होने पर महेशदास राठौड, उसका भाई और उसके अन्य बचे-खुचे साथी उत्तरी भारत को लौट गए। महेशदास राठौड़ ने महाबत खाँ की सेवा में वीरता के लिए पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी, एव सन् १६३५ ई० के प्रारम्भ मे जब

जोगीदास भी इसी युद्ध में मारा गया होगा।

नैणसी०, १, पृ० १७७ पर लिखा है कि महाबत खाँ की सेवा करते हुए बल्लू चौहान भी लड़ाई में घायल हुआ था। पाद० में बल्लू चौहान का नाम नहीं लिखा है, परन्तु इसी युद्ध मे बल्लू चौहान का भी महेशदास के साथ होना एवं उसी के साथ बल्लू का भी घायल होना सम्भव ही जान पड़ता है।

[३४] पाद०, १ (खण्ड २), पृ० ४५, ४७, ५६-६०; मा० उ०, ३, पृ० ४०७; बनारसी०, पृ० १६२-३; हाउस०, पृ० ४६।

वह बादशाही दरबार मे उपस्थित हुआ तो शाहजहाँ ने उसे शाही मनसबदार नियुक्त कर, जनवरी १५, १६३५ ई० को पाँच सदी जात–चार सौ सवारो का मनसब दिया। रतन रासो मे यह भी लिखा है कि प्रथम शाही मनसब देते समय शाहजहाँ ने अपने हाथो से महेशदास को एक तलवार देकर सम्मानित किया था।[३५]

महेशदास के अधिकार मे अब तक पीसागन और उसके आस-पास का प्रदेश ही था, यह उसकी कौटुम्बिक जागीर थी। इसी कारण महेशदास का परिवार भी अब तक पीसागन मे ही रहता है। महेशदास की दी हुई प्राप्य सनदो से यह भी ज्ञात होता है कि परगना तीतरोद (वर्तमान सीतामऊ राज्य) के कुछ गॉव भी इस समय महेशदास के अधिकार मे थे, और उसकी मृत्यु तक महेशदास का कुछ न कुछ अधिकार इस प्रदेश मे बना रहा।[३६] शाही मनसब-

---

[३५] मा० उ०, ३, पृ० ४४५; पाद०, १ (खण्ड २), पृ० ६८। रासो०, पृ० ४७। रासो० में इसे शमशीर लिखा है, परन्तु असल में यह खाण्डा था। शाही पुरस्कार होने के कारण महेशदास और उसके वंशजों के लिए यह खाण्डा विशेष सम्माननीय वस्तु थी, अतएव महेशदास और रतनसिंह के समकालीन चित्रो में उनके हाथ में यही खाण्डा होना चित्रित किया गया है। रतनसिंह के ज्येष्ठ पुत्र के उत्तराधिकारी होने के कारण महेशदास और रतनसिंह की अन्य वंशक्रमागत सम्पत्ति के साथ ही यह खाण्डा भी केशवदास के अधिकार में आया; आज भी सीतामऊ राजघराने के शस्त्रागार में यह विद्यमान है, एव राजघराने के पूजनीय शस्त्रो में इसकी गिनती है।

[३६] गुरूजी०; राजव्यास०।

परगना तीतरोद के गाँव किस प्रकार महेशदास के अधिकार में आए यह कहना कठिन है; इस प्रश्न पर प्रकाश डाल सकने वाली कोई ऐतिहासिक सामग्री प्राप्य नहीं है। तीतरोद परगने में महेशदास द्वारा ही दी गई जमीन की अब तक चार सनदें प्राप्त हुई है।

दार बनने पर बादशाह ने उसे जहाजपुर जागीर मे दिया। जहाजपुर मिलने पर महेशदास का कुटुम्ब पीसागन छोड कर जहाजपुर मे जा रहा, एवं सन् १६४२ ई० मे जालोर मिलने तक जहाजपुर मे ही रहे। महेशदास की जागीर का केन्द्र भी जहाजपुर ही था एव उसका निजी काम भी वहाँ ही होता था।[१७]

शाही मनसबदार बनने पर महेशदास को अनेकानेक चढाइयो तथा अन्य महत्वपूर्ण कार्यो के लिए समय-समय पर शाही सेना के साथ भेजा गया। शाहजहाँ महेशदास की वीरता से परिचित था

---

(१) व्यास रघुनाथ को परगना तीतरोद में गाँव चगत्या, सन् १६३२ ई० में (राजव्यास०)।

(२) राजगुरु मानसिंह हीरा को परगना तीतरोद में डाबड़ी गाव, सन् १६३४ ई० में (गुरूजी०)।

(३) एक उदम्बर ब्राह्मण को कस्वा सीतामऊ में जमीन, सन् १६३७ ई० में (सनदें०)।

(४) राजगुरु को परगना तीतरोद में डाबड़ी गाँव और कस्बा सीतामऊ में भेरू तालाब की जमीन, सन् १६३९ ई० में (गुरूजी०)।

[१७] ख्यात०, १, पृ० १०६; गुरूजी०।

मारवाड़०, १, पृ० १७८, फुटनोट नं० ५ में रेऊ ने लिखा है "इसमें ८४ गाँव तो फूलिया के परगने में और ३२५ गाँव जहाजपुर के परगने में थे।" रेऊ ने अपने इस कथन के आधार का कोई उल्लेख नहीं किया है। फूलिया परगने में महेशदास को ८४ गाँव मिलने का उल्लेख ज्ञात ऐतिहासिक आधार ग्रन्थों में केवल राणी० में ही मिलता है। शाही सेवा में कई वर्ष रहने के बाद जब महेशदास का मनसब बहुत बढ़ गया था, तब ही जाकर कहीं जहाजपुर परगने में इतने गाँवो पर उसका अधिकार हो सका होगा।

सन् १६३८ ई० एवं सन् १६४१ ई० में दी गई सनदें और ताम्र-पत्र जहाजपुर में ही लिखे गए थे।

ही, और जैसे-जैसे अब शाहजहाँ को महेशदास की योग्यता का परिचय मिला और जैसे-जैसे महेशदास शाहजहाँ का विश्वासपात्र बनता गया, तैसे-तैसे उसका मनसब भी बढने लगा। जिन-जिन चढाइयो या युद्धो मे महेशदास सम्मिलित हुआ, उनके कारणो तथा उनकी विशिष्ट घटनाओ का सविस्तार वर्णन करने से शाहजहाँ के शासन-काल की आधी से अधिक महत्वपूर्ण बातो का उल्लेख करना आवश्यक हो जावेगा, अतएव यहाँ उन विभिन्न चढाइयो आदि की विशेषतया उन्ही बातो का उल्लेख किया जावेगा जिनमें या तो महेशदास सम्मिलित था या जिनसे महेशदास की जीवनी, उसकी कार्यवाही या उसके घूमने-घामने पर कुछ भी प्रकाश पडता हो।

मनसबदारी मिलने के कोई सात-आठ माह बाद ही महेशदास को शाही सेना के साथ जाना पडा। जुझारसिह बुन्देला के विद्रोह को महाबत खाँ ने सन् १६२९ ई० मे शान्त किया था और जुझारसिह ने बादशाह से क्षमा याचना की थी, परन्तु वह बहुत समय तक चुप न बैठ सका। सन् १६३५ ई० में वह पुन विद्रोही बन बैठा। इस विद्रोह को दबाने के लिए तीन बडी-बडी शाही सेनाएँ भेजी गईं। शाहजहाँ ने शाहजादे औरगजेब को इन तीनो सेनाओ का प्रधान सेनापति नियुक्त किया। सितम्बर १८, १६३५ ई० को औरगजेब आगरा से इस चढाई के लिए रवाना हुआ। उसके साथ जो सरदार भेजे गए थे उनमे महेशदास राठौड़ भी था; आगरा से रवाना होते समय उसके पद और मनसब के अनुसार महेशदास को भी खिलअत, इनाम आदि मिला[१८]। आगामी चार-पाँच माह तक महेशदास

---

[१८] बनारसी०, पृ० ८३-८६; औरग०, १-२, पृ० १५-१८; पाद०, १ (खण्ड २), पृ० १००।

औरगजेब के साथ ही बना रहा।

इतनी बडी सेना को आते देख कर जुझारसिह भाग खडा हुआ और अपने स्त्री-बच्चो तथा बहुत कुछ धन और माल-असबाब भी साथ ले गया। शाही सेना ने एक-एक कर ओरछा, धामुनी, चौरागढ और झाँसी के किलो पर अधिकार कर लिया। जुझारसिह और उसका पुत्र विक्रमाजीत जुगराज गोण्डवाने के जगलों मे जा घुसे, परन्तु शाही सेना ने वहाँ भी उनका पीछा किया। जुझारसिह और विक्रमाजीत को गोण्डो ने मार डाला। ओरछा की गद्दी पर जुझारसिह के ही चचेरे भाई के पौत्र देवीसिंह बुन्देला को बिठाया।[३९]

इस चढाई के समय औरगजेब को प्रधान सेनापति का पद इसलिए दिया गया था कि उसे अनुभव प्राप्त हो और इस प्रकार तीनो शाही सेनाओ के सेनापतियो मे किसी प्रकार के पारस्परिक कलह की भी सम्भावना न रहे। अतएव औरंगजेब ने युद्धो मे कोई भाग न लिया, और आगे बढती हुई सेनाओं से बहुत पीछे ही रहा, जिससे उसके साथ रहने वाले महेशदास को भी इस बार युद्ध करने का कोई भी अवसर न मिला। नवम्बर, १६३५ ई० के पिछले हफ्तो मे औरंगजेब भी धामुनी आ पहुँचा।[४०]

इधर औरंगजेब को रवाना करने के तीन दिन बाद ही शाहजहाँ भी आगरा से रवाना होकर बुन्देलखण्ड की ओर बढा। दतिया होता हुआ नवम्बर २६, १६३५ ई० को वह ओरछा पहुँचा। औरंगजेब भी धामुनी से लौट कर दिसम्बर ३ को ओरछा के पास

---

[३९] बनारसी०, पृ० ८८-८९; औरग०, १-२, पृ० १९-२४।

[४०] बनारसी०, पृ० ८७-८८; औरंग०, १-२, पृ० १८-१९, २४।

शाहजहाँ की सेवा मे उपस्थित हुआ। दो दिन बाद शाहजहाँ और औरगजेब सिरोज के रास्ते से दक्षिण को चले। महेशदास भी इनके साथ दक्षिण के लिए रवाना हुआ।[४१]

परेण्डा का किला लेने मे महाबत खाॅ की जो विफलता हुई थी, वह अब भी शाहजहाॅ को खटक रही थी। शाहजहाॅ ने अनुभव किया कि शाहजी भोंसला की शक्ति को नष्ट किए बिना अहमदनगर राज्य के जीते हुए प्रदेशो पर स्थायी शासन स्थापित नही हो सकेगा. शाहजी भोसले को बीजापुर राज्य भी समय-समय पर सहायता देता रहा था, एवं अपने उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए बीजापुर तथा गोलकुण्डा राज्यों पर भी आक्रमण करना आवश्यक होगा, यह बात भी उसे स्पष्टरूपेण ज्ञात थी। परन्तु इस बार शाहजहाँ इस मामले को अधूरा नही छोडना चाहता था, अतएव पूरी-पूरी सैनिक तैयारी कर वह दक्षिण को बढा।[४२]

फरवरी, सन् १६३६ ई० के प्रारम्भ मे शाहजहाॅ दौलताबाद के पास जा पहुँचा। वहाॅ उसने तीन विभिन्न सेनाएँ सगठित की। खान जमान और शायस्ता खाॅ के सेनापतित्व मे दो सेनाएँ तो शाहजी भोसला के विरुद्ध भेजी गई। तीसरी सेना का सेनापति खान दौरान नियुक्त किया गया और आम्बेर के राजा जयसिह तथा अन्य राजपूत सेनानायको के साथ महेशदास राठौड की नियुक्ति भी खान दौरान की इसी सेना मे की गई। फरवरी ४, १६३६ ई० को खान दौरान शाही पडाव से बिदा हुआ। रवाना होते समय महेशदास को भी

---

[४१]बनारसी०, पृ० १४५, ६०-६१; औरंग०, १-२, पृ० २६।

[४२]बनारसी०, पृ० १४५, १६४; औरग०, १-२, पृ० २६-३०; हाउस०, पृ० ४६-५०।

उसके पद और मनसब के अनुसार खिलअत, घोडा, आदि इनाम मिले। खान दौरान को आज्ञा हुई कि वह सेना सहित बीजापुर और गोलकुण्डा की सीमाओ पर स्थित कन्धार और नान्देर जाकर तैयार रहे।[४३]

शाहजहाँ फरवरी २१, १६३६ ई० को दौलताबाद जा पहुँचा। इतनी बडी सेना को बढते देखकर गोलकुण्डा के सुलतान कुतुबशाह ने तो शाहजहाँ को कर देना स्वीकार कर लिया, परन्तु बीजापुर के शासक आदिल शाह ने अपना विरोध नहीं छोडा। तब तो शाहजहाँ ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि वह बीजापुर राज्य के प्रदेश को उजाड दे। खान दौरान भी नान्देर से बढता हुआ, भीमा नदी पर स्थित फिरोजाबाद[४४] तक जा कर लौट आया। खान जमान और खान जहान की सेनाओं ने भी बीजापुर के राज्य में बहुत हानि पहुँचाई। तब तो आदिल शाह ने भी शाहजहाँ की आधीनता स्वीकार कर ली। शाहजहाँ ने मई ६, १६३६ ई० को सन्धि की अपनी शर्तें आदिल शाह के पास लिख कर भेज दी, और अपने सेनापतियो को आज्ञा दी कि वे बीजापुर राज्य मे कोई उपद्रव न मचावे। खान दौरान को हुक्म हुआ कि वह उदगिर और औसा के किलो का घेरा लगा कर उन्हे जीत ले। जून २५, १६३६ ई० को गोलकुण्डा का पेशकस शाहजहाँ की सेवा मे पहुँचा, और जुलाई ११ को मकरमत

---

[४३]बनारसी०, पृ० १४५-४६; औरंग०, १-२, पृ० ३०; हाउस०, पृ० ४६-५०; पाद०, १ (खण्ड २), पृ० १३५-३६, १३७।

[४४]फिरोजाबाद बीजापुर से कोई ७६ मील उत्तर-पूर्व में भीमा नदी पर स्थित है। पाद०, १ (खण्ड २), पृ० १५३ पर लिखा है कि फिरोजाबाद से बीजापुर केवल १२ कोस रह गया था; परन्तु यह कथन ठीक नहीं।

ख़ॉ बीजापुर का पेशकस तथा आदिल शाह की तरफ से भेट ले आया।[४५]

अब कोई काम रहा न था, एवं जुलाई ११, १६३६ ई० को शाहजहॉ दौलताबाद से उत्तरी भारत के लिए रवाना हुआ। शाहजहॉ ने दक्षिणी भारत के मुगल प्रदेश का शासन-प्रबन्ध पुन. सगठित किया और जुलाई १४, १६३६ ई० को औरंगजेब को दक्षिणी सूबों का शासक नियुक्त किया। शाहजहॉ माण्डू और अजमेर होता हुआ जनवरी ५, १६३७ ई० को आगरा पहुँचा।[४६]

इधर खान दौरान ने जून १९ को उदगिर किले का घेरा लगाया, और कुछ दिन बाद औसा किले को घेरने को सेना भेजी। सवा तीन माह के घेरे के बाद सितम्बर २८ को उसने उदगिर किला जीत लिया, और अक्तूबर १९ को औसा किला भी शाही सेना के अधिकार मे आ गया। बीजापुर पर आक्रमण और उदगिर के घेरे के समय महेशदास खान दौरान के ही साथ था, परन्तु उसके कार्य और युद्धो आदि का कोई वर्णन नही मिलता है।[४७]

इन किलों को जीत कर खान दौरान उत्तरी भारत को लौटा और महेशदास भी उसके साथ ही चला। राह में ख़ान दौरान ने देवगढ के गोण्ड राजा कुकिया के प्रदेश मे जाकर नागपुर के किले को घेरा; जनवरी १६, १६३७ ई० को कुकिया ने आत्म-समर्पण

---

[४५] बनारसी०, पृ० १४६, १६४-१६६; औरंग०, १-२, पृ० ३०-३५।

[४६] औरग०, १-२, पृ० २६, ३६-३८; बनारसी०, पृ० १४७; पाद०, १ (खण्ड २), पृ० २०२, २०५।

[४७] बनारसी०, पृ० १४७; औरंग०, १-२, पृ० ३८-३९; पाद०, १ (खण्ड २), पृ० २१७-२२०।

कर दिया, खान दौरान ने उससे कर लेकर नागपुर उसे वापिस दे दिया।[४८]

विजयी खान दौरान मार्च १२ को आगरा पहुँचा, शाहजहाँ ने खान दौरान की सफल सेवाओ से प्रसन्न होकर उसका मनसब बढाया। आम्बेर के राजा जयसिह, जोधपुर के राव अमरसिह और कोटा के माधोसिह के मनसब बढा कर तथा इनाम आदि देकर उनकी सेवाओं को भी पुरस्कृत किया। ऐसा अनुमान होता है कि इसी अवसर पर महेशदास राठौड का मनसब भी ५ सदी जात-चार सौ सवार से बढा कर ८ सदी जात-छ सौ सवार कर दिया गया था।[४९]

दक्षिणी भारत की इस चढाई से लौटने के बाद महेशदास पुन शाहजहाँ की सेवा मे रहने लगा। महेशदास शाहजहाँ के "हाजिर रकाब" मनसबदारो मे से था। कभी किसी खास चढाई पर भेजे जाने को वह "ताइनात" किया जाता था, वर्ना वह शाहजहाँ के शाही दरबार मे रह कर पहरा-चौकी सम्हालना या बादशाही आज्ञानुसार सेवा करना ही उसका कर्तव्य होता था।[५०] इसी कारण महेश-

---

[४८]औरंग०, १-२, पृ० ४१-४२; पाद०, १ (खण्ड २), पृ० २३०-२३३।

[४९]पाद०, १ (खण्ड २), पृ० २४६-७।

इस अवसर पर पुरस्कृत व्यक्तियो में से तीन-चार बड़े-बड़े मनसबदारो का ही पाद० में उल्लेख मिलता है। पाद०, १ (खण्ड २), पृ० ३१३ के उल्लेख के अनुसार शाहजहाँ के शाही जुलूस सन् १० समाप्त होने के समय (अक्तूबर १०, १६३७ ई० को) महेशदास का मनसब आठ सदी जात-छः सौ सवार था। मनसब में इस वृद्धि की सम्भावना के लिए दक्षिण की विजय-यात्रा से लौटने का यही अवसर पूर्णतया उपयुक्त जान पड़ता है।

[५०]बनारसी०, पृ० २८८-९; इर्विन०, पृ० ६; बरनियर०, पृ० २१४, २१५, ३७०-१; मा० उ०, ३, पृ० ४४६।

दास को शाहजहाँ के साथ ही यत्र-तत्र जाना पडता था ।

मार्च, १६३७ ई० मे आगरा पहुँचने पर महेशदास कोई डेढ साल आगरा मे ही रहा । शाहजहाँ उससे प्रसन्न था एव उसका मनसब भी बढने लगा । मार्च ११, १६३८ ई० को नौरोज के दरबार के अवसर पर महेशदास का मनसब बढा कर एक हजार जात-६०० सवार का कर दिया गया ।[५१]

इधर फरवरी, १६३८ ई० मे कन्धार के ईरानी किलेदार अली मर्दान खाँ ने कन्धार का किला मुगलो को सौप कर वह स्वयं मुगल मनसबदार बन गया । तब से आगामी पन्द्रह वर्ष तक शाहजहाँ उत्तर-पश्चिमी सरहद के ही मामले में उलझा रहा । कन्धार के किले को सुदृढ बनाने एव उसे ईरानियो के आक्रमणो से बचाने के लिए शाहजहाँ बहुत ही उत्सुक हो गया । मध्य एशिया मे बल्ख और बदक्शा की राजनैतिक परिस्थिति से भी शाहजहां पूरी तरह परिचित होना चाहता था । अतएव अगस्त १८, १६३८ ई० को शाहजहाँ आगरा से रवाना होकर नवम्बर १२ को लाहौर पहुँचा, और तीन माह तक लाहौर मे ही ठहरा रहा । महेशदास भी इस यात्रा मे शाहजहाँ के साथ आगरा से आया और फरवरी, १६४० ई० तक लगातार शाहजहाँ की सेवा मे साथ ही बना रहा । फरवरी २४, १६३९ ई० को शाहजहाँ लाहौर से रवाना होकर मई १८ को काबुल पहुँचा । महेशदास भी शाहजहा के साथ काबुल गया था, परन्तु तत्कालीन दिए हुए ताम्र-पत्र से ज्ञात होता है कि उस समय महेशदास पीछे रह गया था एव मई १८, १६३९ ई० को उसका पडाव जलालावाद मे था । बाद मे वह भी शाहजहाँ के

---

[५१]पाद०, २, पृ० ९२ ।

साथ जा मिला होगा। शाहजहाँ लगभग तीन माह तक काबुल मे ठहरा और बाद मे बगष होता हुआ अक्तूबर ९, १६३९ ई० को वह लाहौर लौट आया।[५२]

मई १८, १६३९ ई० को जब महेशदास जलालाबाद म ठहरा हुआ था तब उसने अपने राजगुरु को परगना तीतरोद मे डाबड़ी गाँव दिया और कस्बा सीतामऊ मे भेरू तालाब की जमीन दी और उसका एक ताम्र-पत्र लिख दिया। इस अवसर पर महेशदास ने इस डाबड़ी गाँव का नाम बदल कर महेशदासपुरा रखा। इसी वर्ष महेशदास ने अपने इन्ही राजगुरु को जहाजपुर परगने मे भी कुछ जागीर दी थी।

इस बार शाहजहाँ लाहौर मे कोई चार माह ठहरा रहा, अतएव उसके साथ महेशदास को भी लाहौर में ही रहना पडा। इन्ही दिनो लाहौर मे ही महेशदास ने रतलाम परगना के अन्तर्गत चौराणा गाँव अपने राजपुरोहित को जागीर मे दिया।[५३]

फरवरी ८, १६४० ई० को शाहजहाँ लाहौर से काश्मीर के लिए रवाना हो गया। महेशदास गगा-स्नान के लिए उत्सुक था एव वह शाहजहाँ के साथ काश्मीर न गया, उसने इस बार छुट्टी ले ली। लाहौर से रवाना होकर सवत् १६९७ वि० के श्राद्ध पक्ष

---

[५२]पाद०, २, पृ० ११०, १२३, १४१, १४७, १५६, १६३; बनारसी०, पृ० १८८-८९, ३१५।

[५३]गुरुजी०। डाबडी गाँव सीतामऊ राज्य के अन्तर्गत आज भी विद्यमान है, परन्तु उसका यह नया नाम स्थायी नही हुआ।

ऐसा अनुमान होता है कि मार्च १६३८ ई०में मनसब-वृद्धि के समय रतलाम परगने के भी कुछ गाँव महेशदास को मिले होगे; उन्ही में से उसने यह गाँव अपने राजपुरोहित को जागीर में दिया।

मे (आश्विन कृष्ण पक्ष—अगस्त २२ से सितम्बर ५, १६४० ई०) वह प्रयाग पहुँचा और वहाँ त्रिवेणी घाट पर शास्त्रोक्त क्रिया-कर्म करके उसने यथाविधि गगा-स्नान किया। गगा-यात्रा के इस अवसर पर महेशदास के साथ उसका ज्येष्ठ पुत्र रतनसिह भी था। इस यात्रा से लौट कर महेशदास सीधा लाहौर पहुँचा, और जब नवम्बर ६, १६४० ई० को शाहजहाँ काश्मीर से लौट कर लाहौर आया तब महेशदास पुन उसकी सेवा मे उपस्थित हो गया।[५४]

४. महेशदास के पुत्र; रतनसिंह का शाही दरबार में सम्मान

यह पहिले ही लिखा जा चुका है कि महेशदास का प्रथम विवाह आम्बेर राज्य के राजावत नवलसिह लूणकरण[५५] की कन्या कुसुम-कुँअरदे के साथ बाल्यकाल मे ही हो चुका था। इसी रानी से महेश दास के ज्येष्ठ पुत्र रतनसिह का जन्म चैत्र वदि अमावस्या स० १६७५ वि० (शनिवार मार्च ६, १६१९ ई०) को बलाहेडा मे हुआ था।[५६]

---

[५४]पाद०, २, पृ० १७६, २१५; गुरूजी०।

[५५]गुरूजी०। रानी० तथा बड़वो की ख्यातो में 'नवलसिह' नहीं है, उनमें उसका नाम केवल लूणकरण लिखा है।

इस व्यक्ति का नाम नैणसी में नही मिलता है।

[५६]मारवाड़०, पृ० १७८; रतन०, पृ० ७; गुरूजी०; राणी०।

जोधपुर वाले मुशी देवीप्रसादजी के सग्रह में रतनसिह की जन्मकुण्डली थी, जो रतन० पृ० ७ पर से यहाँ उद्धृत की जा रही है।

महेशदास के कुल मिला कर सात रानियाँ थी जिनसे छः पुत्र और पाँच पुत्रियाँ हुई।[५७] महेशदास के दूसरे पुत्र का नाम कल्याण-

उ० घ० ४।२ र० ११।८
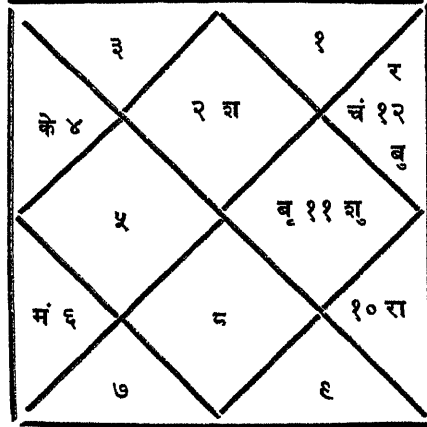
[५७]रतन०, पृ० ६। ख्यातों में विशेषतया सात रानियो का ही उल्लेख मिलता है। गुरूजी० और राणी० में अवश्य आठ रानियो के नाम दिए है।

प्रायः महेशदास के पाँच पुत्रो का ही उल्लेख मिलता है, परन्तु वास्तव में उसके छः पुत्र थे।

राणी० में केवल चार पुत्रियो का ही उल्लेख है, परन्तु गुरुजी० तथा बडवो की ख्यातों में पाँच पुत्रियाँ होना लिखा है। महेशदास की इन पुत्रियो में से एक का विवाह जैसलमेर के रावल सबलसिंह के साथ हुआ। दूसरी का विवाह रामपुरा के राव अमरसिह् के पुत्र मोहकमसिंह के साथ हुआ था, जो अपने पिता की मृत्यु पर सन् १६७२ ई० में रामपुरा की गद्दी पर बैठा। भारतीय इतिहास में सुज्ञात गोपालसिंह चन्द्रावत महेशदास की ही पुत्री का लडका था। गुरूजी०; राणी०। तीसरी का विवाह बूँदी के रावराजा शत्रुसाल के साथ हुआ था; राव राजा भावसिंह महेशदास के ही नाती थे। गुरूजी० के अनुसार इस पुत्री का नाम कल्याणकुँअर था, किन्तु वंश० में इसका नाम श्यामकुँअर लिखा है, जो

दास[५८] था; इनकी माता जालोर के सकतसिंह सोनगरा[५९] की पुत्री अमोलक दे कुँअर सोनगरी थी। तीसरा पुत्र रायसल[६०] था। बूँदी

अधिक विश्वसनीय जान पड़ता है। वंश० में श्यामकुँअर को दलपत की कनिष्ठा पुत्री लिखा है, जो ठीक नहीं। गुरूजी०; वंश०, ३, पृ० २४५६, २५५६, २७१६।

[५८]प्राचीन ख्यातों के आधार पर ख्यात०, १, पृ० १०७ पर इसका नाम 'कल्याणदास' लिखा है, परन्तु बाद में "कल्याणसिंह" नाम चल निकला होगा। जिससे गुरुजी० आदि में "कल्याणसिंह" नाम ही लिखा मिलता है। रासो० ४७, ७०, १३०।

गुरूजी० में लिखा है कि कल्याणदास को सं० १७१० वि० (१६५३-५४ ई०) में शाही मनसब मिला और उसके साथ ही लोहावद, गुणावद और बारा-बडोद के परगने जो आजकल कोटा राज्य के अन्तर्गत हैं, जागीर में मिले थे। परन्तु वारिस० आदि फारसी ग्रंथों में इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता है। कल्याणसिंह का मनसब चार सदी जात या उससे कम का ही होगा, वर्ना वारिस० में दी गई मनसबदारों की सूची में उसका नाम अवश्य होता।

कल्याणसिंह के जीवन का कोई विवरण नहीं मिलता है। उसके वंशज कल्याणसिंहोत कहलाए; और आज भी मेरियाखेड़ी (सीतामऊ राज्य में), तोलखेडी (जावरा राज्य में) एवं बारा-बड़ोद (कोटा राज्य के अन्तर्गत) के ठिकानों पर कल्याणसिंहोतों का अधिकार है।

[५९]यह सकतसिंह सोनगरा उदयसिंह का पुत्र तथा अखेराज रणधीरोत का पौत्र था। नैणसी०, १, पृ० १६५।

[६०]गुरूजी० और राणी० में महेशदास के पुत्रों की सूची में रायसल का नाम ही नहीं है; और उन्हीं के आधार पर रतन०, पृ० ६ पर भी रायसल का नाम नहीं लिखा गया है। परन्तु ख्यात०, १, पृ० १०७ पर रायसल को महेशदास का चौथा पुत्र लिखा है। रासो०, पृ० ४७ पर रायसल को महेशदास का तीसरा पुत्र लिखा है। रासो०, पृ० ७० पर पुनः रायसल का नाम महेशदास के पुत्रों की सूची में आता है। तीन बड़वों की ख्यातों में भी रायसल का नाम मिलता है, जिनमें से दो ख्यातों के अनुसार रतनसिंह की जननी ने इसको भी जन्म दिया

के राजसिंह हाड़ा[११] की लडकी सूरज कुँअर ने चौथे पुत्र फतेहसिंह[१२]

था, परन्तु तीसरी ख्यात उसे कल्याणदास का सहोदर भाई बताती है।

रायसल के जीवन का कोई भी हाल नहीं मिलता है।

[११]गुरूजी० में इस राजसिंह को देवकरणोत लिखा है। कुछ ख्यातो मे हाडी रानी सूरज कुँअर के पिता का नाम बूँदी के भोजराज का पुत्र श्यामदास मिलता है।

[१२]रासो०, पृ० ४७, ७०, १०३।

गुरूजी० में लिखा है कि फतेहसिंह को सन् १६६५ ई० (सं० १७२२ वि०) में ७ सदी का मनसब मिला और साथ में उसे फूलिया परगने के ८० गाँव जागीर में मिले थे। वह महाबत खाँ (महाबत खाँ खानखाना के दूसरे पुत्र लहरास्प खाँ) की सेना मे तैनात था। यह कथन कई अशो में ठीक नही। सन् १६५८ ई० (१७१५ वि०) में फतेहसिंह की मृत्यु हो चुकी थी। सम्भव है कि सवत में दस वर्ष की भूल हो गई हो और ठीक सन् १६५५ ई० (१७१२ वि०) हो। परन्तु जो मनसब उसको मिलना बताया जाता है वह अत्युक्ति ही है क्योकि वारिस द्वारा दी गई मनसबदारो की सूची में फतेहसिंह का नाम नही है। ख्यात०, १, पृ० २०७ के अनुसार सन् १६५८ ई० में फतेहसिंह का मनसब डेढ सदी जात-तीस सवार का था, जो अधिक ठीक जान पडता है।

सन् १६५५-५७ ई० तक महाबत खाँ दक्षिण में औरंगजेब के साथ था, परन्तु सन् १६५७ ई० में शाहजहाँ ने उसे वापिस बुला लिया। दिसम्बर २०, १६५७ ई० को वह आगरा में शाही दरबार में उपस्थित हुआ और फरवरी ४, १६५८ ई० को काबुल का सूबेदार नियुक्त कर वह काबुल भेज दिया गया। सम्भव है कि फतेहसिंह भी महाबत खाँ के साथ दक्षिण में रहा हो, परन्तु वहाँसे लौटने पर वह काबुल नहीं गया। धरमत के युद्ध मे शाही सेना की ओर से लडता हुआ अप्रेल १५, १६५८ ई० (वैशाख कृष्णा ६, १७१५ वि०) को वह मारा गया। औरंग०, १-२, पृ० २८२; ख्यात०, १, पृ० २०७; रासो०, पृ० ११७, ११६, १२७, १३१, १३६।

फ़तेहसिंह की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र केसरीसिंह अपने छोटे भाइयो को लेकर खिलेड़ी गाँव में (जो आज कल धार राज्य में है) जा रहा; वहाँ फतेहसिंह

और पाँचवें पुत्र रामचन्द्र[६३] को जन्म दिया था। छठे पुत्र सूरजमल[६४] की माता सरवाड़ मनोहरपुर के गौड़ भोपतसिंह की पुत्री पेप कुँअर थी।[६५]

रतनसिंह महेशदास का ज्येष्ठ पुत्र था, परन्तु वह निश्चिततया

की निजी जागीर थी। केसरीसिंह के वंशजों ने बाद में वर्तमान पाना ठिकाने की, जो आजकल धार राज्य के आधीन है, स्थापना की। आज भी पाना ठिकाना और खिलेड़ी की जागीर केसरीसिंह के वंशजों के अधिकार में है। गुरूजी०।

फ़तेहसिंह के वंशज फ़तेहसिंहोत कहलाए। उनकी संख्या बहुत बढ़ी और ईसा की १८ वीं शताब्दी के पिछले पचास वर्षों में मरहठों की असंगठित शासना-व्यवस्था से लाभ उठा कर फ़तेहसिंह के छोटे पुत्रों के वंशजों ने मालवा में अनेकानेक ठिकानों की स्थापना की जिनमें रुणीजा, पचलाना, बोरखेड़ा, मुँगेला, पाणदा, बिड़वाल, कोद, सरसी विशेष उल्लेखनीय हैं। सीतामऊ, रतलाम, सैलाना, झाबुआ आदि राज्यों में भी फ़तेहसिंहोतों ने बहुत कुछ सम्मान और कई एक जागीरें पाईं। गुरूजी०।

[६३] रासो०, पृ० ४७, ७०। रामचन्द्र के जीवन का कोई भी विवरण नहीं मिलता है। उसके वंशज रामचन्द्रोत राठौड़ कहलाए। सन् १७९३-४ ई० (सं० १८५० वि०) में रामचन्द्र के एक वंशज को रतलाम राज्य में जागीर मिली, जिससे वर्तमान सरवन ठिकाने की स्थापना हुई। यह ठिकाना आज भी रामचन्द्र के वंशजों के ही अधिकार में है। गुरूजी०।

[६४] रासो०, पृ० ४७।

सूरजमल के जीवन का कोई हाल नहीं मिलता है। उसके कोई पुत्र नहीं था। गुरूजी०।

[६५] गुरूजी० के अनुसार यह रानी राजगढ़ की थी। एक ख्यातमें इसी रानी को शेखावत लिखा है। कुछ ख्यातों के अनुसार सूरजमल महेशदास की दूसरी राजावत रानी का पुत्र था; यह रानी केसरीसिंह की पुत्री तथा दुर्जनसिंह बलभद्रोत की पौत्री थी। केसरीसिंह के लिए देखो—नैणसी, २, पृ० १९।

उसका उत्तराधिकारी न था। उन दिनो ज्येष्ठ पुत्र के उत्तराधिकारी होने का नियम सदैव नही पाला जाता था। लडाई-भिड़ाई के इस युग में जब मुगल शासको की सत्ता का प्रबल प्रताप सब दूर फैला हुआ था, उत्तराधिकारी का चुनाव अनेकानेक बातो के आधार पर होता था। उत्तराधिकारी बनने की उपयुक्तता, युद्ध मे उसकी वीरता और साहस एव योद्धाओ का नेतृत्व कर सकने की उसकी योग्यता, उसके प्रति उसके पिता की भावना तथा उस विशिष्ट पुत्र के सम्बन्ध मे मुगल सम्राट् की धारणा का इस चुनाव पर बहुत प्रभाव पडता था। यही कारण था कि जोधपुर, आम्बेर और उदयपुर मे भी कई बार ज्येष्ठ पुत्र के रहते हुए भी छोटे पुत्र उत्तराधिकारी बने। अतएव प्रारम्भ मे महेशदास के उत्तराधिकारी का प्रश्न भी अनिश्चित ही रहा।

कहा जाता है कि महेशदास जालोर वाली अपनी सोनगरी रानी से अधिक प्रसन्न था एव उससे उत्पन्न अपने दूसरे लड़के कल्याणदास को ही वह अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था।[६६]

---

[६६] रतन०, पृ० ९-१०; मारवाड़०, १, पृ० १७८-९।

दन्तकथाओं के आधार पर रतन० (पृ० ९) में कल्याणदास के प्रति महेशदास के इस पक्षपात का एक कारण रतनसिंह और उसकी जननी का अंगवर्ण काला होना तथा साथ ही कल्याणदास और उसकी जननी का अंगवर्ण गौर होना बताया है। रतलाम० में (पृ० ४) भी इसी कारण को दुहराया गया है। रतलाम० के इस कथन का आधार भी दन्तकथाएँ ही है, किन्तु वहाँ सारा विवरण इस प्रकार दिया गया है कि उससे भ्रम हो जाना सभव है। ऐसे ही भ्रम में पड़कर रेऊ ने प्राचीन०, ३, पृ० ३९० पर इस कथन का आधार रासो० को बताया है जो ठीक नहीं; रासो० में कही भी इसका उल्लेख नहीं मिलता है।

रतन० (पृ० १०, १२) में लिखा है कि कल्याणदास को अपना उत्तराधि-

कहा जाता है कि रतनसिह बचपन मे बहुत ही उद्धत प्रकृति का था। उसका बाल्यकाल बहुत कुछ ननिहाल मे ही बीता था। एव महेश-दास उससे अधिक प्रसन्न न था।[६७] तथापि सन् १६४० ई० मे जब महेशदास गगा-स्नान के लिए प्रयाग गया तब रतनसिह भी उसके साथ था, और ऐसा अनुमान होता है कि प्रयाग से लौट कर लाहौर आते समय रतनसिह भी महेशदास के साथ ही लाहौर चला आया था।[६८]

कारी बनाने के लिए महेशदास ने शाहजहाँ की भी स्वीकृति प्राप्त कर ली थी। परन्तु यह कथन ठीक नहीं है। इस समय तक महेशदास केवल मनसबदार ही था, एवं मनसब के उत्तराधिकार का प्रश्न उठ ही नहीं सकता था। शाही दरबार में रतनसिंह का प्रवेश होने के कोई डेढ वर्ष बाद ही महेशदास को जालोर का परगना वशपरम्परागत जागीर के रूप में मिला था।

[६७] रतन०, पृ० ९। बाल्यकाल में रतनसिंह के जालोर न आने या वहाँ आकर अधिक न ठहरने का उल्लेख रतन० के लेखक ने किया है। यहाँ जालोर से महेशदास के परिवार के निवासस्थाल का ही अर्थ समझना चाहिए। रतन० के लेखक को यह ज्ञात न था कि सन् १६४२ ई० में जालोर परगना मिलने से पहिले महेशदास का निवास क्रमशः पीसागन और जहाजपुर में रहा था।

[६८] गुरुजी०।

कल्याणदास के उत्तराधिकारी नियुक्त होने की सूचना का रतनसिंह के पास जालोर पहुँचना, रतनसिंह का दुखी होकर दिल्ली जाने का इरादा करना, दिल्ली जाने में कल्याणदास की जननीके बाधा डालने के विफल प्रयत्न, रतनसिंह का दिल्ली पहुँच कर जोधपुर के डेरे पर ठहरना, आम्बेर के मिर्जा राजा जयसिंह से मिलना एवं उनसे सहायता का आश्वासन पाना, आदि बातो का रतन०, पृ० १२-१३ पर विस्तृत विवरण दिया है। दन्तकथाओ तथा ख्यातो के आधार पर ही इनका उल्लेख वहाँ किया गया है। रासो० में इनमें से किसी का भी उल्लेख नहीं है। रासो०, पृ० ५१ पर तो रतनसिह का महेशदास के साथ कहरकोप हाथी देखने

काश्मीर से लौट कर जब नवम्बर ६, १६४० ई० को शाहजहाँ लाहौर पहुँचा तब तक महेशदास भी शाही सेवा मे उपस्थित हो गया। आगामी दो वर्षो तक शाहजहाँ लाहौर मे ही ठहरा रहा, और महेशदास भी शाहजहाँ की सेवा मे वहाँ ही बना रहा। ये दो वर्ष महेशदास के लिए बहुत ही सौभाग्यपूर्ण प्रमाणित हुए, उसका मनसब बढा, जमीदारी प्राप्त हुई और उसके पुत्र रतनसिह का भी शाही दरबार मे प्रवेश हो गया, जिससे उसके भावी उत्थान की नीव पड़ी।

जनवरी २२, १६४१ ई० को शाहजहाँ की वर्षगाठ थी, उसने ५०वे वर्ष में पदार्पण किया था, उसी उपलक्ष मे उस दिन तुला दान हुआ और उत्सव होने लगे जो कई दिन तक लगातार लाहौर मे होते ही रहे।[६९] इसी उत्सव के सिलसिले में एक दिन[७०] शाहजहाँ ने हाथियों की लड़ाई करवाने की आज्ञा दी। कहरकोप नामक एक शाही हाथी, जिस पर शाहजहाँ का विशेष प्रेम था, इस गज-युद्ध के लिए लाया गया। कहरकोप सर्वदा मस्त रहता था और उसको पूरी तरह वश मे रखना सम्भव नही था। गज-युद्ध के लिए लाते समय वह राह मे स्वच्छन्द होकर धूम-धाम करता बाजार में होता

जाने का उल्लेख है। अतएव ख्यातों में दिया गया विवरण प्रधानतया कल्पना और अतिशयोक्ति से पूर्ण एवं अविश्वसनीय ही जान पड़ता है।

[६९] पाद०, २, पृ० २२२।

[७०] हाथियों की यह लड़ाई, और रतनसिंह से कहरकोप की यह मुठभेड़ किस दिन हुई यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता है। फ़रवरी ११ को शाहजहाँ ने महेशदास को एक हाथी प्रदान किया तथा फ़रवरी १५ को रतनसिंह को सुनहरी तलवार दी, एवं अनुमान यही होता है कि यह घटना फ़रवरी १० या ११, १६४१ ई० को ही घटी होगी।

हुआ शाही दरबार के स्थान पर जा पहुँचा। हाथियो की लड़ाई देखने को वहाँ बहुत भीड एकत्रित थी, महेशदास भी वहाँ उपस्थित था, और उसके साथ उसका ज्येष्ठ पुत्र रतनसिह भी वही एक ओर सीढियो पर खडा था। हाथी को शाही दरबार-स्थान की सीढियाँ चढते देख कर रतनसिंह से रहा न गया। उसे पीछे हटाने के लिए अपनी कटार निकाल कर वह आगे बढा। अपने सामने आते हुए रतनसिह पर हाथी ने हमला किया और उसे सूँड से पकड कर धरती से उठा लिया। परन्तु रतनसिह ने तब भी साहस के साथ हाथी के सिर पर कटार मारी, और अवसर मिलते ही सूँड की पकड़ मे से निकल कर फुर्ती के साथ वह हाथी के सिर पर चढ बैठा और अपनी कटार से हाथी पर चोटे करता ही गया। अन्त मे घबरा कर हाथी लौटा और अवसर देखकर रतनसिह हाथी पर से कूद पडा।[७१]

रतनसिंह की यह वीरता देखकर शाहजहाँ बहुत ही प्रसन्न हुआ, उसको बहुत सराहा और रतनसिह को महेशदास जैसे वीर पिता का उपयुक्त उत्तराधिकारी माना।[७२] कहरकोप हाथी भी फरवरी

---

[७१] रतन०, पृ० १३-१५; रासो०, पृ० ४७-५२।

जिस कटार से रतनसिंह ने कहरकोप का सामना किया था, वह एक साधारण सीधा-साधा शस्त्र है। उसी दिन से वह कटारी इस घराने की एक पूजनीय वस्तु समझी जाने लगी। रतनसिंह के उत्तराधिकारी एवं ज्येष्ठ पुत्र रामसिंह के द्वारा यह पूजनीय कटारी रामसिंह के पुत्र केशवदास के अधिकार में आई और रतलाम राज्य का अन्त होने पर अन्य वशक्रमागत सम्पत्ति एवं वस्तुओ के साथ यह कटार भी केशवदास के ही अधिकार में रही। यह कटार आज भी सीतामऊ राजघराने के शस्त्रागार में विद्यमान है, एवं शस्त्र-पूजा के समय बड़े आदर के साथ इसकी भी पूजा होती है।

[७२] ख्यात० और दन्तकथाओं के आधार पर रतन०, पृ० १८ पर शाहजहाँ

११, १६४१ ई० को महेशदास को प्रदान कर दिया गया।[७३] एव चार ही दिन बाद फरवरी १५ को शाहजहाँ ने रतनसिह को सुनहरी साज की एक फौजी तलवार प्रदान की।[७४]

इस प्रकार अपनी वीरता, धैर्य और साहस द्वारा रतनसिह ने शाहजहाँ का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। रतनसिह की वीरता की ख्याति सर्वत्र फैल गई, और महेशदास ने उसे अपना उत्तराधिकारी बनाया।[७५]

और रतनसिह की बातचीत का विवरण दिया है जो चतुरतापूर्ण होते हुए भी बहुत कुछ कल्पनापूर्ण जान पडता है। यह सभव है कि इस समय जब शाहजहाँ को ज्ञात हुआ कि रतनसिह के ज्येष्ठ होते हुए भी महेशदास कल्याणदास को अधिक चाहता है एवं उसे अपना उत्तराधिकारी बनाने को उत्सुक है, शाहजहाँ ने महेशदास को सलाह दी कि वह रतनसिह जैसे वीर पुत्र को ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करे।

रतलाम०, पृ० ४-५ पर दिया हुआ वृत्तान्त ख्यातो और दन्तकथाओ के ही आधार पर लिखा गया है। रतन० में दिए हुए विवरण से इसमें कोई विशेष उल्लेखनीय विभिन्नता नही है।

रासो०, पृ० ५२-५ पर कुम्भकर्ण ने शाहजहाँ और उसकी बेगमो की प्रसन्नता, रतनसिह के प्रति उनका बर्ताव, एव रतनसिह और महेशदास को दिए गये पुरस्कारों का जो वर्णन लिखा है, वह अतिशयोक्ति पूर्ण है, और प्रधानतया कवि-कल्पना के ही आधार पर उसकी रचना हुई है।

[७३] पाद०, २, पृ० २२४। रासो०, पृ० ५३ पर लिखा है कि वह हाथी रतनसिह को मिला था, जो ठीक नही जान पड़ता।

[७४] पाद०, २, पृ० २२५; रासो०, पृ० ५३; रतन०, पृ० १९-२०।

[७५] इस घटना के बाद में दी गई महेशदास की सनदों एवं दान-पत्रो में रतनसिह का नाम भी मिलता है।

५. महेशदास की मान-वृद्धि एवं उसे जालोर का परगना मिलना

महेशदास का भाग्य-सितारा अब ऊँचा चढ़ने लगा। शाहजहाँ का वह विश्वासपात्र बनने लगा और उसके मनसब में भी निरन्तर वृद्धि होने लगी। अप्रेल १२, १६४१ ई० को उसका मनसब बढा कर अब एक हजारी जात–८०० सवारो का कर दिया गया।[७६] इसके कुछ ही माह बाद महेशदास छुट्टी लेकर जहाजपुर गया और कार्तिक विदी अमावस्या स० १६९८ वि० (अक्तूबर २४, १६४१ ई०) को सूर्यग्रहण के अवसर पर तीर्थस्थान के लिए वह पुष्कर गया, और इस पर्व पर उसने देवा नामक ब्राह्मण को जहाजपुर परगने के अन्तर्गत कुछ धरती पुण्यार्थ दी।[७७] पुष्कर मे तीर्थ-स्नान के बाद महेशदास पुनः शाहजहाँ की सेवा मे लाहौर लौट गया। वहाँ जनवरी ११, १६४२ ई० को तुलादान का दरबार हुआ, जिसकी खुशी मे महेशदास का मनसब बढा कर एक हजारी जात–एक हजार सवारो का कर दिया गया।[७८]

इस समय ईरान का शाह सफी कन्धार को जीतकर पुन. ईरान के राज्य मे लेने का दृढ निश्चय कर तैयारियाँ करने लगा। उसने अपने प्रधान सेनापति रुस्तम गुरजी को एक बडी सेना लेकर कन्धार

---

[७६] पाद०, २, पृ० २३०।

[७७] इस धरती-दान का ताम्र-पत्र महामहोपाध्याय डा० गोरीशंकरजी हीराचन्दजी ओझा के सग्रह में विद्यमान है। टीटा (टीटोड़ा) गाँव में १४६ बीघा धरती दान की गई थी। यह "टीटोड़ा" गाँव जहाजपुर से कोई १८ मील दक्षिण में है।

[७८] पाद०, २, पृ० २८१।

के लिए रवाना किया और राह मे निशापुर जाकर शाह के आने तक के लिए वहाँ पडाव करने का आदेश दिया। इन सब तैयारियो का विवरण सुन कर शाहजहाँ के दरबार मे बडी हलचल मच गई। शाहजादे दारा के प्रधान सेनापतित्व मे एक बडी सुसज्जित सेना तैयार की गई। सैद खान जहाँ, रुस्तम खाँ बहादुर, मिर्जा राजा जयसिह और राजा जसवतसिह आदि सेनापतियो को इस सेना मे नियुक्त किया गया। अन्य सेनानायकों के साथ महेशदास राठौड को भी इस सेना के साथ भेजा गया। अप्रेल १०, १६४२ ई० को यह सेना लाहौर से रवाना हुई। रवाना होते समय महेशदास को उसके मनसब के अनुरूप खिलअत, घोडा और अलम (झडा) दिए गए।[७२]

सिन्धु नदी पार कर जब यह सेना नीलाब नदी के पास पहुँची तब दारा ने सुना कि ईरान का शाह सफी मई २, १६४२ ई० को ही काशान मे मर गया। दारा सेना सहित गजनी मे ठहरा रहा और उसने शाहजहाँ को इस घटना की सूचना दी। यद्यपि दारा का प्रस्ताव था कि अवसर देखकर हिरात और सीस्तान पर आक्रमण कर उन्हे जीत लिया जावे, परन्तु शाहजहाँ ने इसे स्वीकार नही

---

[७२] पाद०, २, पृ० २९३-४; दारा०, १, पृ० ३१-३२।

यह अलम (झंडा) हरा या गहरे लाल रंग का होता था; उस पर सुनहरी जर का चिह्न और सुनहरी जरीन गोट होती थी। एक हजार सवार का मनसब प्राप्त होने के बाद ही यह अलम मनसबदार को दिया जाता था। ईर्विन०, पृ० ३१-२, ३४।

महेशदास को गहरे लाल रग का झडा मिला था। महेशदास एवं उसके उत्तराधिकारियों को प्राप्त ये झंडे केशवदास को प्राप्त हुए और आज भी वे केशवदास के वंशज, सीतामऊ राजघराने के राजचिह्न हैं।

किया और सेना सहित लौट आने का उसे हुक्म दिया। गजनी से रवाना होकर सितम्बर २, १६४२ ई० को दारा लाहौर पहुँचा; महेशदास राठौड भी दारा की सेना के साथ ही शाहजहाँ की सेवा मे वापस लौट आया था।[८०]

शाहजहाँ महेशदास से प्रसन्न था ही, अब उसने महेशदास का मान और पद-वृद्धि करने की सोची। अगस्त ३१, १६४२ ई० को उसने महेशदास का मनसब दुगना कर दिया, वह अब दो हजारी जात–दो हजार सवारो का मनसबदार बन गया। इस अवसर पर शाहजहाँ को यह भी आवश्यक जान पडा कि महेशदास को जागीर भी दी जावे जहाँ उसका परिवार आदि स्थायी तौर पर रह सके। अतएव अपना वतन (निवासस्थान) बनाने के लिए उसे जालोर परगना दिया।[८१] बहुत करके इसी अवसर पर महेशदास के ज्येष्ठ पुत्र रतनसिंह को भी चार सदी जात–दो सौ सवारों का मनसब मिला।[८२] इस प्रकार रतनसिंह की भी गिनती शाही मनसबदारो मे हो गई।

---

[८०] पाद०, २, पृ० २९४-३०८; दारा०, १, पृ० ३२-३३; बनारसी०, पृ० २१९, २२०।

[८१] पाद०, २, पृ० ३०८; नैणसी०, १, पृ० १८२; ख्यात०, १, पृ० १०६।

[८२] पाद०, २, पृ० ६३५ पर लिखा है कि सन् १६४७ ई० में जब महेशदास मरा, तब रतनसिंह का मनसब चार सदी-दो सौ सवारो का था। यह मनसब रतनसिंह को कब मिला, इसका कोई भी स्पष्ट उल्लेख किसी भी ऐतिहासिक ग्रन्थ में नहीं मिलता है। रासो०, पृ० ५२-५३ के अनुसार कहरकोप के साथ रतनसिंह की मुठभेड़ के दिन ही हाथी, तलवार आदि के साथ ही रतनसिंह को मनसब और जालोर का किला भी मिला। इस आधार पर रतन०, पृ० २०-२१ पर अनुमान किया गया है कि तलवार प्रदान किए जाते समय फरवरी १५, १६४१ ई०

अपने इस नए वतन का आवश्यक प्रबन्ध करने और अपनी नई जागीर पर अधिकार करने के लिए महेशदास शाहजहाँ से छुट्टी लेकर जालोर के लिए रवाना हुआ, और वह रतनसिह को भी अपने साथ ले गया।[८३]

जालोर का यह परगना सिरोही राज्य की उत्तर-पश्चिमी सरहद पर स्थित है। अकबर के शासन काल मे यह परगना अजमेर सूबे के अन्तर्गत सिरोही सरकार का ही एक महल माना जाता था। उस समय इस परगने पर बिहारी अफगानो का अधिकार था, जिन्हे जोधपुर के राजकुमार गजसिह ने सन् १६१६ ई० मे शाही आज्ञानुसार जालोर से मार भगाया और तब वे अफगान पालनपुर मे जा बसे। जब गजसिह जोधपुरका शासक बना तो यह परगना उसको जागीर मे दे दिया गया था, एव उसके जीवन पर्यन्त वह उसी के अधिकार मे रहा।[८४] गजसिह की मृत्यु होने पर सन् १६३८ ई० मे यह परगना खालसा किया गया, और सन् १६४२ ई० मे महेशदास को दिए जाने

को ही यह मनसब रतनसिंह को मिला होगा। परन्तु यह स्पष्ट है कि जालोर की जागीर उक्त घटना के कोई डेढ वर्ष बाद मिली। अतएव यह अधिक सम्भव जान पड़ता है कि महेशदास को जागीर देते समय और उसका मनसब दो हजारी जात–दो हजार सवार का करने के सुअवसर पर ही रतनसिंह को भी शाही मनसब मिला।

[८३] रासो०, पृ० ५६। नवम्बर १, १६४२ ई० को लाहौर से रवाना होकर शाहजहाँ जनवरी ५, १६४३ ई० को आगरा पहुँचा और आगामी दो वर्ष तक वह आगरा में ही रहा। (पाद०, २, पृ० ३१७, ३२०, ४०७)। महेशदास लाहौर से ही जालोर चला गया था, या आगरा पहुँच कर उसने छुट्टी ली, ऐतिहासिक ग्रन्थों में इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता है।

[८४] आईन०, २, पृ० २७६; ख्यात०, १, पृ० १४२, १४३, १५१, १५४, १५६; मारवाड़०, १, पृ० १६४-५; जोधपुर०, १, पृ० ३८२-४।

तक खालसे मे ही रहा। जिस समय जालोर परगना महेशदास को मिला उस समय इस परगने की आमदनी लगभग तीन लाख रुपए की रही होगी।[८५] जालोरमे एक सुदृढ प्राचीन दुर्ग भी था, जो सुवर्ण-गिरि या सोनगिरि नाम से प्रसिद्ध था।[८६] जालोर परगने के अन्तर्गत सैणा का छोटा सा इलाका भी सम्मिलित था। जालोर से कोई १८ मील दक्षिण मे खारी नदी के दक्षिणी तीर पर स्थित सैणा नामक कस्बे मे बोडा चौहान बसते थे। जिस समय जालोर का परगना महेशदास को मिला, सैणा के इलाके पर नारायणदास बोडा के पुत्र कल्याणदास बोड़ा का अधिकार था। उसने महेशदास की आधीनता स्वीकार कर ली और सैणा का भूमिया मान कर महेशदास ने उसे वहाँ ही निर्विघ्न रहने दिया।[८७]

जालोर पहुँच कर महेशदास ने अपनी जागीर के इस परगने पर अपना अधिकार स्थापित किया, और वहाँ आवश्यक प्रबन्ध कर उसने अपने परिवार एव कुटुम्बियो को भी जालोर बुला लिया। महेशदास के पुत्र, रतनसिह, रायसल, कल्याणदास, फतेहसिह और रामचन्द्र के अतिरिक्त कवि कुभकर्ण के कथनानुसार जो-जो व्यक्ति इस समय जालोर पहुँचे उनमे प्रमुख थे, महेशदास के भाई राजसिह के पुत्र, नाथ, भावसिह और विष्णुदास, महेशदास के दूसरे

---

[८५] ख्यात० में विभिन्न समय जालोर परगने की निम्नलिखित आय का उल्लेख मिलता है :—

सन् १६१६ ई० में — रु० ३,८७,७७०-१०-९ (१, पृ० १२३);
सन् १६३० ई० में — रु० २,८७,७७१-१२-९ (१, पृ० १५४);
सन् १६७८ ई० में — रु० ४,८७,५००-०-० (१, पृ० १९७)।

[८६] नैणसी०, १, पृ० १५२; रासो०, पृ० ५९; जोधपुर०, १, पृ० ५४-६।

[८७] नैणसी०, १, पृ० १८२।

भाई जुझारसिह के पुत्र पृथ्वीराज, अभयराज और रामचन्द्र, साचोरा चौहान शार्दूल के पुत्र अमरदास और भगवानदास, साचोरा चौहान वीरवर बल्लू का पुत्र नरपाल, साचोरा चौहान गोपालदास का पुत्र राम, साचोरा चौहान अचलदास का पुत्र केहरी और साचोरा चौहान भीम का पुत्र सूरजमल। ये सब रतनसिह के साथी थे।[८८]

महेशदास ने जालोर परगने का शासन-प्रबन्ध भी सगठित करने का प्रयत्न किया। अगस्त ८, १६४४ ई० को उसने मुहतो तिलोकसी सदारग को जालोर परगने का कानूनगो नियुक्त किया। जालोर के आसपास पुराने ऊजड़ गॉव पुन बसाने की ओर भी ध्यान दिया, डिडोरिया नामक गॉव को महेशपुरा नाम देकर पुन. आबाद किया।[८९] इस प्रकार आवश्यक प्रबन्ध करके महेशदास पुनः शाही सेवा में पहुँचने को जालोर से चला। शाहजहाँ इस समय आगरा मे था, एव महेशदास भी आगरा पहुँचा और वहाँ शाहजहाँ की सेवा मे बना रहा।

६. अन्तिम वर्ष (१६४५-४७ ई०); मान-वृद्धि, युद्ध एवं मृत्यु

लगभग दो वर्ष तक आगरा मे रह कर जनवरी १४, १६४५ ई० को शाहजहाँ वहाँ से लाहौर के लिए रवाना हुआ। महेशदास आगरा मे शाहजहाँ की सेवा मे तत्पर था, वह भी

---

[८८] रासो०, पृ० ७०।

साचोरा चौहानो के पारस्परिक सम्बन्धो आदि के लिए देखो—नैणसी०, १, पृ० १७६-१७७।

[८९] जोधपुर आर्कियालाजिकल डिपार्टमेण्ट के संग्रह में प्राप्य सनद; फ़ेहरिस्त०।
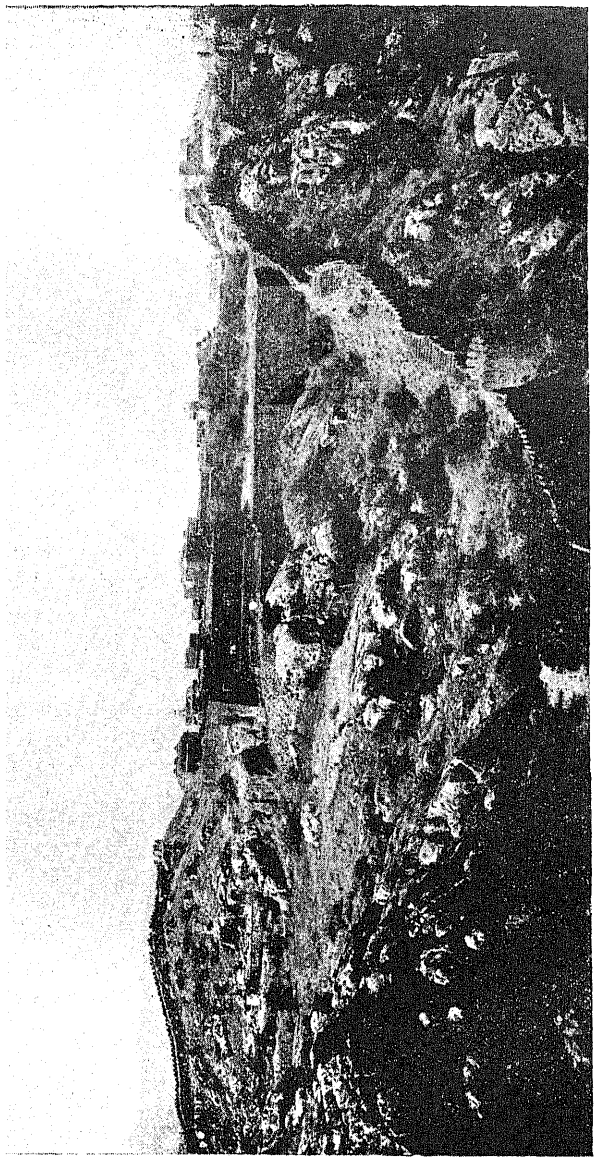
जालोर का किला

(जोधपुर राज्य के पुरातत्व-विभाग के सौजन्य से प्राप्त चित्र)

शाहजहाँ के साथ लाहौर की ओर चला। मार्च २० को महेशदास शाहजहाँ के साथ ही लाहौर पहुँचा, और दूसरे दिन मार्च २१ को शाहजहाँ ने महेशदास को लाहौर का किलेदार नियुक्त किया और इस नियुक्ति के अनुरूप उसे खिलअत भी प्रदान किया।[१०] लगभग एक वर्ष तक महेशदास इसी पद पर बना रहा। काश्मीर यात्रा से लौट कर जब शाहजहाँ अक्तूबर २५, १६४५ ई० को पुन. लाहौर पहुँचा, तब महेशदास लाहौर की किलेदारी पर ही नियुक्त था, और वहाँ शाहजहाँ की सेवा मे उपस्थित हुआ था।[११] महेशदास ने किलेदारी का कार्य बहुत ही योग्यता पूर्वक किया, एव जनवरी ११, १६४६ ई० को तुलादान के सुअवसर पर लाहौर मे ही महेशदास का मनसब पाँच सदी जात बढाकर अब ढाई हजार जात–दो हजार सवारो का कर दिया गया।[१२]

इधर सन् १६४५ ई० से ही बल्ख-बुखारा मे कई एक पारस्परिक झगड़े और गृह-युद्ध उठ खडे हुए थे। वहाँ के शासक नजर महम्मद के विरुद्ध विद्रोह होने लगे और उसका पुत्र अब्दुल अजीज समरकन्द-बुखारा का खान बन बैठा था। नजर महम्मद अब भी बल्ख का शासक था, परन्तु उसे अपने पुत्र और उसके साथियो की तरफ से पूरी पूरी आशका बनी हुई थी, एव उसने शाहजहाँ की मदद चाही। शाहजहाँ ने इस अवसर को हाथ से जाने न दिया। नजर महम्मद को सहायता देने के बहाने उसने मध्य एशिया मे बल्ख-बुखारा प््रदेश पर मुगल सत्ता स्थापित करने का अच्छा अवसर देखा। जनवरी

---

[१०] पाद०, २, पृ० ४०७, ४१३-४।

[११] पाद०, २, पृ० ४१४, ४७०।

[१२] पाद०, २, पृ० ४८०।

११, १६४६ ई० को नजर महम्मद का दूत शाहजहाँ की सेवा मे उपस्थित हुआ, और तत्काल ही शाहजहाँ ने सहायता देने का वादा कर इस चढाई के लिए सेना तैयार करने का हुक्म दिया।[९३]

शाहजादे मुराद को इस चढाई पर जाने वाली सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त किया, और उसके साथ ५०,००० सवार और १०,००० पैदल सिपाही, तोपची आदि नियुक्त हुए। मुगल साम्राज्य के प्राय सब कुशल योद्धा और सेनानायक इस सेना के साथ भेजे गए। राजा विठ्ठलदास गौड को इस सेना के हरोल का सेनानायक नियुक्त किया, और अन्य राजपूत सरदारो के साथ महेशदास राठौड भी हरोल मे जाने के लिए तैनात किया गया। फरवरी ६, १६४६ ई० को मुराद यह सेना लेकर लाहौर से रवाना हुआ और महेशदास भी उसी के साथ काबुल के लिए चल पडा। राह में कई दिन तक पेशावर में ठहरने के बाद अन्त मे मई १५ को मुराद काबुल पहुँचा। राजा विठ्ठलदास, महेशदास आदि अन्य राजपूतों के साथ पेशावर से बगष के घाटे मे होता हुआ काबुल आया और मुराद के साथ आ मिला।[९४]

मुराद के पीछे-पीछे शाहजहाँ भी मार्च २६, १६४६ ई० को लाहौर से काबुल के लिए रवाना हुआ। मई ११ को वह पेशावर पहुँचा। चन्द्र मास के हिसाब से मई १४ को शाहजहाँ की वर्षगाँठ थी एव उसके उपलक्ष मे पेशावर मे ही तुलादान हुआ, और इस अवसर पर कई एक अमीरों और सरदारो के मनसब और मान मे वृद्धि हुई। महेशदास राठौड के मनसब मे भी पाँच सदी जात बढ़ा कर अब तीन हजारी जात-दो हजार सवारो का कर दिया गया, महेशदास को

---

[९३] बनारसी०, पृ० १६१-५; पाद०, २, पृ० ४७६, ५३०-२।

[९४] पाद०, २, पृ० ४८२-५; बनारसी०, पृ० १६५।

नक्कारा प्रदान किया गया। यो अब महेशदास की गणना मुगल साम्राज्य के प्रधान अमीरो (अमीर-इ-आजम) मे होने लगी।[९५]

शाहजहाँ मई १५, १६४६ ई० को पेशावर से रवाना होकर मई २८ को काबुल पहुँचा। परन्तु उसके काबुल पहुँचने से पहिले ही शाही सेना बल्ख के लिए रवाना हो गई थी। मुराद ने राजा विठ्ठलदास के सेनानायकत्व मे मई २४ को हरोल को रवाना किया, और तीन दिन बाद वह स्वय भी बाकी रही सेना को लेकर काबुल से चल पडा। महेशदास विठ्ठलदास के साथ हरोल मे रवाना हुआ था। हरोल जून २ को गुलबहार पहुँचा और वहाँ राह मे पडी हुई बर्फ को उठवा कर राजा विठ्ठलदास ने रास्ता साफ करवाया। विठ्ठलदास के साथ ही महेशदास जून ६ को तूल के घाटे से गुजरा। मुगल साम्राज्य की सरहद यहाँ समाप्त हो गई।[९६]

अब सारी शाही सेना एक साथ ही बल्ख की ओर बढी। जून २५ को कुंदुज होता हुआ जुलाई १ को मुराद बल्ख के पास जा पहुँचा और दूसरे दिन उसने बल्ख पर अधिकार कर लिया। यह सेना नजर महम्मद की ही सहायता के लिए भेजी गई थी, और नजर महम्मद भी मुराद से मिलने को तैयार ही बैठा था, किन्तु जब शाही सेना बल्ख के पास पहुँची तो नज़र महम्मद डर कर बल्ख से भाग गया। मुराद ने यह बात सुनी तो उसने बहादुर ख़ाँ और असालत खाँ को

---

[९५] पाद०, २, पृ० ५००, ५०४-५; इर्विन०, पृ० ६।

इर्विन लिखता है कि विशेष अनुग्रह होने पर ही नक्कारा और नौबत बजाने का अधिकार दिया जाता था; दो हजार सवार या उससे उच्च मनसब वालो को ही यह अधिकार प्रदान किया जाता था। इर्विन०, पृ० ३०।

[९६] पाद०, २, पृ० ५०६, ५०६, ५०८, ५१३-५१४; बनारसी०, पृ० १६६-७।

नजर महम्मद का पीछा करने को भेजा, एव राजा विठ्ठलदास और तमाम राजपूतो को हरोल समेत अपने पास ही रखा। इस प्रकार महेशदास के भी मुराद के साथ बल्ख मे ही रहने का निश्चय हुआ। परन्तु महेशदास राठौड़ रूपसिह राठौड, रामसिह राठौड, तथा अन्य कई राजपूत सरदार बहादुर खॉ और असालत खॉ के साथ हमदर्दी दिखाने एव उनके साथ युद्ध मे शामिल होकर अपनी वीरता प्रदर्शित करने के लिए बहुत ही उत्सुक थे, अतएव मुराद और अमीर-उल्-उमरा अलीमर्दान खॉ की आज्ञा लिए बिना ही वे असालत खॉ और बहादुर खॉ के साथ शामिल होकर नजर महम्मद का पीछा करने को चले गए।[९७]

नजर महम्मद का पीछा करती, और उसके साथियो को गिरफ्तार करती हुई यह सेना जुलाई ६, १६४६ ई० को गोती गॉव पहुँची। वहॉ पता लगा कि गोती से छ कोस की दूरी पर स्थित शेरगान नामक कस्बे मे नजर महम्मद उजबको और अलमानो से मिल कर इस सेना का सामना करने की तैयारी कर रहा था। अतएव ग़ोती से उसी दिन सेना आगे बढी, और बहादुर खॉ एव असालत खॉ ने युद्ध के लिए अपनी सेना को व्यवस्थित किया। महेशदास आदि राजपूतों को हरोल मे दाहिनी ओर रखा।

नजर महम्मद के पास शेरगान मे १०,००० उजबक और अलमान थे, मगर जब उन्होने सुना कि मुगल सेना उनकी ओर बढी चली आ रही थी तो उनमे से कई शेरगान से निकलकर अदखुद को चल दिए। बाकी रहे सैनिको को लेकर नजरमहम्मद शेरगान से निकला और सामना करने के लिए मुगल सेना की ओर बढा, परन्तु

---

[९७] पाद०, पृ० ५२७, ५४९-५०; बनारसी०, पृ० १९७-९।

मुगल सेना के साथ मुठभेड होने पर मुगल सैनिको के बाणों और बन्दूको की मार से घबरा कर नजर महम्मद के साथी भाग खडे हुए। तब विवश होकर नजरमहम्मद भी युद्ध से मुहँ मोड कर अद-खुद को चला गया। शाही सेना ने शेरगान पर अधिकार कर लिया। शाही सेना की इस विजय का समाचार जुलाई १२ के दिन शाहजहाँ को काबुल मे ज्ञात हुआ। इस सफलता को प्राप्त करने मे जिन-जिन अमीरों, सरदारो या सेनानायकों ने हाथ बटाया था, उनके साथ ही साथ महेशदास राठौड को भी खिलअत मिला और उसके मनसब मे ५०० सवार बढा दिए, जिससे उसका मनसब अब तीन हजारी जात–ढाई हजार सवार का हो गया।[९८]

शेरगान–विजय ३ की ये खुशियाँ समाप्त भी न होने पाई थी कि शाहजहाँ को मुराद का पत्र मिला, जिसमे उसने प्रार्थना की थी कि उसे बल्ख से वापस काबुल बुला लिया जावे। शाहजहाँ ने पत्र द्वारा मुराद को समझाने का प्रयत्न किया, परन्तु मुराद पुन. वापस बुलाए जाने का आग्रह करता ही रहा और शाहजहाँ का उत्तर आने से पहिले ही बहादुर खाँ, असालत खाँ और उनके साथ की सारी सेना को शेरगान से वापस बल्ख बुला लिया। यों महेशदास पुन बल्ख को लौट आया।

शाहजहाँ ने अन्त में जुलाई ३० को अपने वजीर सादुल्ला को बल्ख भेजा। अगस्त १० को वहाँ पहुँचकर सादुल्ला ने मुराद को बहुत समझाया, किन्तु वह अपनी जिद से नही टला, और सादुल्ला के पहुँचने के दो-तीन दिन बाद ही मुराद बल्ख से काबुल के लिए रवाना हो गया। तब तो सादुल्ला खाँ बल्ख का शासन-प्रबन्ध सुव्यवस्थित

---

[९८] पाद०, २, पृ० ५५०-५५२, ५५४; बनारसी०, पृ० १९९-२००।

करने लगा। अगस्त १७ या १८ के लगभग, शाहजहा की आज्ञानुसार सादुल्ला खॉ ने नजर महम्मद की जो औरते, बेटे-बेटियॉ और पोते बल्ख मे थे, उन सबको राजा विट्ठलदास गौड, महेशदास राठौड, खलीलुल्ला खॉ, लेहरास्प खॉ आदि के साथ काबुल के लिए रवाना किया। महेशदास और उसके सब साथी अगस्त ३० को काबुल पहुँच कर शाहजहॉ की सेवा मे उपस्थित हुए।[९९]

काबुल पहुँचकर महेशदास पुन शाहजहॉ की सेवा मे रहने लगा। सितम्बर १०, १६४६ ई० को शाहजहॉ काबुल से लाहौर के लिए रवाना हुआ; महेशदास भी उसके साथ भारत की ओर लौटा और सम्राट् के साथ ही नवम्बर ९, १६४६ ई० को वह लाहौर पहुँच गया।[१००]

बल्ख की इस चढाई मे महेशदास ने बडी वीरता और साहस का परिचय दिया था। इस पिछले वर्ष भर मे उसका मनसब भी बहुत बढ गया था। निरन्तर उसकी मान-वृद्धि हो रही थी। सभव था कि सन् १६४७ ई० मे होने वाली बल्ख-बदकशॉ की चढाई मे वह पुन भेजा जाता, परन्तु दुर्भाग्यवश वह दीर्घायु न हो सका। मार्च ६, १६४७ ई० को महेशदास की लाहौर में मृत्यु हो गई।[१०१] लाहौर के काजी के बाग मे ही महेशदास की दाहक्रिया की गई; बाद मे उसी स्थान पर एक छत्री भी बनवाई गई थी।[१०२] महेशदास की मृत्यु की सूचना तथा उसकी पाग पहुँचने पर उसकी सातवी रानी, रामपुरा

---

[९९] पाद०, २, पृ० ५६४, ५७१; बनारसी०, पृ० २००-२०१।

[१००] पाद०, २, पृ० ५९४, ६०९।

[१०१] पाद०, २, पृ० ६३५।

[१०२] गुरुजी०; राणी०।

के हरिसिह चन्द्रावत की पुत्री सरस कुँवर चन्द्रावती जालोर में सती हुई ।[१०३]

महेशदास वीर और साहसी था, और पिछले वर्षों मे उसकी गणना अनुभवी और युद्ध-प्रिय सेनानायकों मे की जाती थी। अपनी ही योग्यता तथा साहस के बल पर मुगल साम्राज्य के एक मनसबदार के साधारण सैनिक से बढ़ते २ उसने "अमीर-इ-आजम" के मान को प्राप्त किया था । मृत्यु के समय उसका मनसब तीन हजारी ज़ात —ढाई हजार सवारो का था, और सारे मुगल साम्राज्य के हिन्दू मनसबदारों मे उसका आठवाँ नम्बर था ।[१०४] शाहजहाँ का वह बहुत ही विश्वासपात्र था । शाही दरबार मे सिंहासन के पास ही एक सदली रहती थी जिस पर शाहजहाँ की तलवार और तीरकश आदि रखे रहते थे, शाही दरबार के समय उस सदली एव शाही अस्त्र-शस्त्रो की देख-रेख करने का कार्य महेशदास को सौपा गया था । शाही सवारी के समय भी शाहजहाँ के पीछे कुछ ही गज की दूरी पर वह बराबर बना रहता था। अतएव जब शाहजहाँ ने महेशदास की मृत्यु का समाचार सुना तो उसे बहुत खेद हुआ । महेश-दास के सैनिक तितर-बितर न हो जायँ, इसी विचार से शाहजहाँ ने

---

[१०३] रासो०, पृ० ७२ ।

[१०४] महेशदास से अधिक मान-प्राप्त एव ज्यादा मनसब वाले सात हिन्दू मनसबदार थे :—

(१) राजा जसवन्तसिंह—जोधपुर, (२) राजा जयसिंह—आम्बेर, (३) राणा जगतसिंह—उदयपुर, (४) राजा विठ्ठलदास गौड़, (५) राजा पहाड़सिंह बुन्देला—ओरछा, (६) शत्रुसाल हाड़ा—बूँदी, और (७) माधोसिंह हाड़ा—कोटा । पाद०, २, पृ० ७२२-३ ।

महेशदास के उत्तराधिकारी, रतनसिह राठौड़ को विशेष रूपेण अधिक मनसब दिया ।[१०५]

महेशदास को वतन (निवास-स्थान) के तौर पर जालोर परगना जागीर मे प्राप्त हुआ था जो उसी रूप मे उसके उत्तराधिकारी के पास भी रहा । इस प्रकार महेशदास ने एक नवीन राज्य की स्थापना की थी, जिसके ही आधार पर आगे चलकर रतनसिंह ने रतलाम के प्रथम राज्य की नीव डाली । महेशदास को मुगल साम्राज्य से कभी भी "राजा" या इसी प्रकार का कोई भी खिताब नही मिला था, फारसी ग्रन्थो मे केवल उसका नाम ही लिखा मिलता है । अपने निजी पत्र-व्यवहार और उसके द्वारा दी गई सनदो आदि मे वह स्वय को "महाराज" लिखता था ।[१०६]

यो महेशदास ने अपने पुत्र के कुल की भावी महत्ता और अपूर्व गौरव की नीव डाली । किन्तु युद्धक्षेत्र मे शत्रुओ का सामना करते हुए कट-कट कर गिरने वाले, अपने प्राणों की बाज़ी लगा कर जीवन की चौसर खेलनेवाले, सर्वस्व की आहुति देकर स्वर्गीय गौरव-आभा प्राप्त करने वाले, मर कर अमर होने वाले, अनोखे वीरो का महत्व, जीवन भर युद्ध मे रत इस सफल साहसी योद्धा के भाग्य मे बदा न था । सफलता के इस लाडिले की मृत्युकालीन इस अनपेक्षित अनहोनी विफलता को देख कर कवि कुभकर्ण भी सिहर कर कह उठा,—

"निर्भय निसक छहतीस कुल, दिल दिलेल रखहु लख ।
अनफेर पित्ति सतसतिरन, मधुकर धर सज्या मरन ।।"[१०७]

---

[१०५] पाद०, २, पृ० ६३५; मा० उ०, ३, पृ० ४४६ ।

[१०६] सनदें०; राजव्यास० ।

[१०७] रासो०, पृ० ७३ ।

और शाहजहाँ ने भी विधि की इस विडम्बना से उदास होकर कहा, "महेशदास जैसे योद्धा को रणक्षेत्र में वीर गति प्राप्त होनी थी कि वह अनेको शत्रुओ को तलवार के घाट उतार कर ही सुखनीद सोता।"[१०८] पूरे ग्यारह वर्ष बाद रतनसिंह ने पिता की इस विफलता को क्षिप्रा के तीर पर अपने रुधिर से धोकर उसे एक भूली हुई बात बना दिया।

---

[१०८] पाद०, २, पृ० ६३५।

खण्ड–२

रतलाम राज्य की स्थापना

एवं

उसका अन्त

(१६४७-१६९४ ई०)

रतनसिंह

अध्याय ४

रतनसिंह[1]

(१६४७-१६५८ ई०)

१. रतनसिंह का जालोर पाना; बल्ख की चढ़ाई और कन्धार का प्रथम घेरा; १६४७-१६४६ ई०

मार्च, सन् १६४७ ई० मे जब लाहौर में महेशदास की मृत्यु हुई तब उसका ज्येष्ठ पुत्र रतनसिह जालोर था। इस समय रतन-सिह का मनसब चार सदी जात-दो सौ सवारों का था। शाहजहाँ महेशदास से बहुत ही प्रसन्न था, एव वह रतनसिंह की वीरता से भी परिचित था। शाहजहाँ चाहता था कि महेशदास की सेना तितर-बितर न हो जावे, अतएव महेशदास की मृत्यु के साथ ही शाह-जहाँ ने जालोर का परगना रतनसिह को दे दिया और रतनसिंह का मनसब बढाकर डेढ हजारी जात-डेढ हजार सवार का कर दिया गया।[2] शाहजहाँ ने रतनसिह को यह भी हुक्म भेजा कि महेशदास की

---

[1] पाद०, वारिस०, कम्बू०, आदि फ़ारसी ग्रन्थों में उसका नाम सिर्फ 'रतन राठौड़' या 'रतन वल्द महेशदास राठौड़' ही लिखा मिलता है। ख्यात०, १, पृ०, १०६, २०७ पर भी इसका नाम सिर्फ 'रतन' दिया है। इससे अनुमान यही होता है कि नाम के साथ 'सिंह' बाद में ही जोड़ा गया।

[2] पाद०, २, पृ० ६३५।

मृत्यु से सम्बद्ध धार्मिक क्रिया-कर्म से निपटने पर अपनी सेना के साथ वह शाही सेना मे सम्मिलित हो जावे।[3]

सन् १६४६ ई० मे बल्ख-विजय एव नजर महम्मद के भाग जाने से ही मध्य एशिया का मामला सुलझा नही। अतएव शाहजहॉ ने अपने पुत्र औरगजेब को गुजरात से बुला कर जनवरी २१, १६४७ ई० को उसे बल्ख और बदक्शॉ का सूबेदार नियुक्त किया। फरवरी १० को औरगजेब लाहौर से अपने सूबो के लिए रवाना हुआ, और औरंगजेब की सहायता करने और युद्ध-क्षेत्र के निकट रहने के लिए मार्च १५, १६४७ ई० को शाहजहॉ भी लाहौर से रवाना हुआ और अप्रैल २५ को काबुल जा पहुॅचा।[4]

अपने पिता महेशदास के क्रिया-कर्म से निपटने पर जालोर मे रतनसिह का राजतिलक हुआ, और तदुपरान्त शीघ्र ही उसे बादशाही सेना मे सम्मिलित होने को रवाना होना पडा। रतनसिह का ज्येष्ठ पुत्र रामसिह इस समय लगभग ९ वर्ष का था, रतनसिंह ने उसे जालोर ही छोडा, और वह अपने काका जसवतसिह को लेकर अपनी सेना के साथ शाहजहाँ की सेवा मे पहुँचने को चला। शाहजहाँ काबुल मे था एव रतनसिह भी जालोर से सीधा काबुल गया और मई मास (१६४७ ई०) मे वही शाही दरबार मे वह जा पहुँचा।[5]

उधर औरगजेब शाही सेना के साथ अप्रैल ७, १६४७ ई० को

---

[3] रासो०, पृ० ७७।

[4] पाद०, २, पृ० ६२५, ६३२, ६३८, ६७०, ६७८; औरंग०, १-२, पृ० ८५।

[5] रासो०, पृ० ७६-७६; पाद०, २, पृ० ६८४।

काबुल से रवाना होकर कहमर्द होता हुआ मई २५ को बल्ख़ पहुँचा। राह मे उजबेगो ने शाही सेना पर कई बार हमले किए। मई २९ को औरगजेब बल्ख से अकच्या की ओर बढा। नजर महम्मद का बडा लडका अब्दुल अजीज खाँ बुख़ारा का शाह था, उसने मुगलो का सामना करने के लिए एक बडी सेना एकत्रित की। अकच्या की ओर बढती हुई मुगल सेना को प्रति दिन दुश्मनो की सेना का सामना करना पडता था। पशाई पहुँचने पर औरगज़ेब को बुखारा की एक बडी सेना के बल्ख़ की ओर बढने की सूचना मिली, एव औरगजेब बल्ख के लिए लौट पडा। जून ९ तक प्रति दिन दुश्मनो के साथ युद्ध होता रहा किन्तु वे मुगल सेना को विशेष हानि न पहुँचा सके। अन्त मे जून ९ को अब्दुल अजीज ने सन्धि की बातचीत प्रारभ करने का सदेशा भेजा। जून ११ को औरगजेब भी शाही सेना के साथ बल्ख को लौट आया, और सन्धि की शर्तो के बारे मे बातचीत प्रारम्भ हुई।[१]

इस चढाई के समय प्रारम्भ से ही औरगजेब सैनिको की कमी अनुभव कर रहा था, क्योकि उसकी सेना का एक बहुत बडा भाग तलीकान, कुन्दुज, रुस्तुक, तिरमिज, आदि स्थानो पर मुगलो का अधिकार बनाए रखने को उन स्थानो पर नियुक्त था। काबुल पहुँच कर शाहजहाँ ने औरगजेब की सहायता के लिए भेजने को सेना एकत्रित की। मिर्जा राजा जयसिह के सेनापतित्व मे यह सेना जून ४, १६४७ ई० को शाहजहाँ ने काबुल से रवाना की और उसके साथ बीस लाख रुपया भी औरगजेब को भेजा गया। इस सेना के साथ रतनसिह को भी भेजा गया, और रवाना होने से पहिले उसके मनसब के अनुरूप एक ख़िलअत और घोड़ा उसे प्रदान किया। रतनसिह का

---

[१] पाद०, २, ६७१-६९४, ७०४; औरंग०, १-२, पृ० ८६-९४।

मृत्यु से सम्बद्ध धार्मिक क्रिया-कर्म से निपटने पर अपनी सेना के साथ वह शाही सेना में सम्मिलित हो जावे।[३]

सन् १६४६ ई० मे बल्ख-विजय एव नजर महम्मद के भाग जाने से ही मध्य एशिया का मामला सुलझा नही। अतएव शाहजहाँ ने अपने पुत्र औरगजेब को गुजरात से बुला कर जनवरी २१, १६४७ ई० को उसे बल्ख और बदक्शाँ का सूबेदार नियुक्त किया। फरवरी १० को औरगजेब लाहौर से अपने सूबो के लिए रवाना हुआ; और औरंगजेब की सहायता करने और युद्ध-क्षेत्र के निकट रहने के लिए मार्च १५, १६४७ ई० को शाहजहाँ भी लाहौर से रवाना हुआ और अप्रैल २५ को काबुल जा पहुँचा।[४]

अपने पिता महेशदास के क्रिया-कर्म से निपटने पर जालोर में रतनसिंह का राजतिलक हुआ, और तदुपरान्त शीघ्र ही उसे बादशाही सेना मे सम्मिलित होने को रवाना होना पडा। रतनसिह का ज्येष्ठ पुत्र रामसिह इस समय लगभग ९ वर्ष का था; रतनसिह ने उसे जालोर ही छोडा, और वह अपने काका जसवतसिह को लेकर अपनी सेना के साथ शाहजहाँ की सेवा मे पहुँचने को चला। शाहजहाँ काबुल मे था एव रतनसिह भी जालोर से सीधा काबुल गया और मई मास (१६४७ ई०) मे वही शाही दरबार मे वह जा पहुँचा।[५]

उधर औरगजेब शाही सेना के साथ अप्रैल ७, १६४७ ई० को

---

[३] रासो०, पृ० ७७।

[४] पाद०, २, पृ० ६२५, ६३२, ६३८, ६७०, ६७८; औरंग०, १-२, पृ० ८५।

[५] रासो०, पृ० ७६-७९; पाद०, २, पृ० ६८४।

काबुल से रवाना होकर कहमर्द होता हुआ मई २५ को बल्ख पहुँचा। राह मे उजबेगो ने शाही सेना पर कई बार हमले किए। मई २९ को औरगजेब बल्ख से अकच्या की ओर बढा। नजर महम्मद का बडा लडका अब्दुल अजीज खॉ बुखारा का शाह था, उसने मुगलों का सामना करने के लिए एक बडी सेना एकत्रित की। अकच्या की ओर बढती हुई मुगल सेना को प्रति दिन दुश्मनों की सेना का सामना करना पड़ता था। पशाई पहुँचने पर औरगजेब को बुखारा की एक बडी सेना के बल्ख की ओर बढने की सूचना मिली, एव औरगज़ेब बल्ख के लिए लौट पड़ा। जून ९ तक प्रति दिन दुश्मनो के साथ युद्ध होता रहा किन्तु वे मुगल सेना को विशेष हानि न पहुँचा सके। अन्त मे जून ९ को अब्दुल अजीज़ ने सन्धि की बातचीत प्रारभ करने का सदेशा भेजा। जून ११ को औरगजेब भी शाही सेना के साथ बल्ख को लौट आया, और सन्धि की शर्तो के बारे में बातचीत प्रारम्भ हुई।[१]

इस चढाई के समय प्रारम्भ से ही औरगजेब सैनिको की कमी अनुभव कर रहा था, क्योकि उसकी सेना का एक बहुत बडा भाग तलीकान, कुन्दुज, रुस्तुक, तिरमिज, आदि स्थानो पर मुगलो का अधिकार बनाए रखने को उन स्थानो पर नियुक्त था। काबुल पहुँच कर शाहजहॉ ने औरगजेब की सहायता के लिए भेजने को सेना एकत्रित की। मिर्जा राजा जयसिह के सेनापतित्व मे यह सेना जून ४, १६४७ ई० को शाहजहॉ ने काबुल से रवाना की और उसके साथ बीस लाख रुपया भी औरगजेब को भेजा गया। इस सेना के साथ रतनसिह को भी भेजा गया, और रवाना होने से पहिले उसके मनसब के अनुरूप एक खिलअत और घोडा उसे प्रदान किया। रतनसिह का

---

[१] पाद०, २, ६७१-६९४, ७०४; औरग०, १-२, पृ० ८६-९४।

काका जसवत सिंह भी इसी सेना के साथ भेजा गया और रवाना होते समय उसे भी एक घोडा मिला।[७] परन्तु जयसिह के साथ रतनसिह जब बल्ख पहुँचा, तब तक वहाँ युद्ध समाप्त हो चुका था, और सन्धि की बातचीत चल रही थी, एव तत्काल ही वहाँ उसे किसी युद्ध मे भाग न लेना पड़ा।

शाहजहाँ की आज्ञानुसार औरगजेब ने नजर महम्मद के साथ सन्धि कर ली, और कई माह की बातचीत के बाद नजर महम्मद ने सितम्बर २३ को अपने पोते को औरगजेब के पास भेजा और बीमारी का बहाना बनाकर वह स्वय नही आया। परन्तु सरदी का मौसम आ रहा था और औरगजेब स्वय भी बल्ख से लौट जाने को उत्सुक था, एव अपने अन्य शाही अफसरों की सलाह को मान कर उसने काबुल लौटने का निश्चय किया। बल्ख से उत्तर मे नियुक्त विभिन्न सैनिक नाको से शाही सेना को लौटाने के लिए प्रबन्ध किया गया, तिरमिज से सादत खाँ को ले आने के लिए जयसिह भेजा गया, बहुत करके रतनसिह भी जयसिह के साथ तिरमिज गया होगा।[८]

अक्तूबर १, १६४७ ई० को औरगजेब का पडाव बल्ख के पास ही मैदान मे स्थित जलगाए नामक स्थान मे था। उसी दिन औरग-जेब ने बल्ख का किला, वह सारा प्रदेश और वहाँ संग्रहीत समस्त धान्य आदि नजर महम्मद के पोतो आदि को सौप दिया। दूसरे दिन जयसिंह भी तिरमिज से लौट कर जलगाए मे शाही सेना मे

[७] औरंग०, १-२, पृ० ८६-८८; पाद०, २, पृ० ६८४।

[८] औरग०, १-२, पृ० ९४-९६; वारिस०, १, प० ७ ब।

तिरमिज बल्ख से कोई ३६ मील उत्तर-पूर्व में अक्षु (Oxus) नदी पर ३७° १५′ उत्तर, ६७° १५′ पूर्व में स्थित है।

सम्मिलित हो गया, तथा अक्तूबर ३ को औरगजेब सारी शाही सेना को लेकर जलगाए से काबुल के लिए लौट पडा। लौटती हुई इस शाही सेना के लिए औरेगजेब ने पूरा २ प्रबन्ध किया। दाहिने पहलू के बचाव के लिए उसने जयसिह और उसके राजपूत साथियो को नियुक्त किया, जिनमे रतनसिह भी था।[९]

काबुल लौटते समय की इस यात्रा मे शाही सेना को कई एक कठिनाइयो का सामना करना पडा। अलमानों के दल शाही सेना का पीछा कर निरन्तर लूट-खसोट और हमले कर रहे थे। गज़नियाक की सकडी घाटी मे से शाही सेना कठिनाई के साथ धीरे-धीरे गुजरी। अक्तूबर ८ को शाही सेना का पिछला हिस्सा जब घाटी से गुज़र रहा था, तब अलमानो की एक बहुत बडी फौज उस पर हमला करने को बढी। तब एक ओर से नजर बहादुर और रतनसिह ने, और दूसरी ओर से मोतमिद खाँ आदि अफसरो ने अलमानों पर हमला किया। इस युद्ध मे रतनसिह दिल खोल कर बडी मेहनत से लडा और साहस तथा वीरता का उसने पूर्ण परिचय दिया। अलमान रतनसिह और उसके साथियो का सामना न कर सके और भाग खडे हुए। कुछ दूर तक पीछा करने के बाद रतनसिह और उसके साथी लौट आए। अक्तूबर १४ को शाही सेना गजनी पहुँची।[१०]

---

[९] वारिस०, १, प० ७ ब-८ अ; औरग०, १,२, पृ० ६६-६७।

[१०] वारिस०, १, प० ८ अ; मा० उ०, ३, पृ० ४४६; ईलियट०, ७, पृ० ८०; औरग०, १-२, पृ० ६६-६७।

ईलियट० में गलती से अल्प-विराम 'केशजी' शब्द के बाद न छप कर 'केशजी' के पहिले छप गया है। रतलाम०, पृ० ५ पर फुटनोट न० २ में ईलियट के इस उल्लेख का उद्धरण देते हुए वहाँ की छापे की इस भूल को दुहरा कर "महेशदास का पुत्र, केशजी रतनसिंह" लिखा है। 'केशजी' शब्द असल में 'केशगी' होना

सरदी निरन्तर बढती जाती थी, बर्फ पडने लगी थी। हिन्दू-कुश पार करते समय तो शाही सेना को बर्फ से ढकी हुई चोटियो या घाटियो से गुजरना पडा था। अब हज़ारा के लोग भी उजबको से मिल कर शाही सेना का पीछा कर लूट-खसोट करने लगे। माल-असबाब ढोने वाले मनुष्य और जानवरो की भी सख्या पर्याप्त न थी, जिससे शाही सेना बहुत धीरे-धीरे लौट रही थी। अक्तूबर २४ को सेना हिन्दूकुश पहुँची। अपनी सेना को यही छोड कर औरगजेब स्वय तेजी से काबुल के लिए रवाना हुआ और तीन दिन मे वहाँ जा पहुँचा।[११]

किन्तु तब तक सारी शाही सेना हिन्दूकुश को भी पार न कर चुकी थी। जयसिह और उसके राजपूत साथी, जिनमे रतनसिह और उसके सैनिक भी थे, शाही खजाना एव उसके जिम्मेदार अफसर जुल्फिकार खाँ, शाही सामान-असबाब तथा बहादुर खॉ के नेतृत्व मे आने वाला शाही सेना का अन्तिम विभाग अभी कई मजिल पीछे रह गए थे। कडी सरदी और निरन्तर बरफ पडने के कारण शाही सेना के इन दलो को अनगिनित कठिनाइयाँ उठानी पडी। हज़ारा के लोग लूट की आशा से निरन्तर हमले कर रहे थे। रतनसिह और उसके सैनिकों को भी ये सारी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी और आवश्यकतानुसार दुश्मनो का भी सामना कर उनसे युद्ध करना पडा। नवम्बर १०, १६४७ ई० को ही सारी सेना काबुल पहुँच पाई।[१२]

चाहिए, जो अफग़ानो की एक जाति का नाम है। नजर बहादुर इसी केशगी जाति का अफग़ान था। मा० उ०, ३, पृ० ७७७; होड़ीवाला कृत 'स्टडीज इन इण्डो-मुस्लिम हिस्ट्री', पृ० ६३६।

[११] वारिस०, १, प० ८ ब; औरंग०, १-२, पृ० ६७-६८।

[१२] वारिस०, १, प० ८ ब-६ अ; औरंग०, १-२, पृ० ६७-६८।

शाहजहाँ तो औरगजेब को सन्धि कर काबुल लौट आने की आज्ञा देकरअगस्त २१,१६४७ ई० को ही काबुल से हिन्दुस्तान को लौट पडा था। अक्तूबर २४ को वह लाहौर पहुँचा और दो सप्ताह वहाँ ठहर कर वह दिल्ली होता हुआ जनवरी १, १६४८ ई० को आगरा जा पहुँचा। औरगजेब के काबुल लौटने तक काबुल मे ठहरने को शाहजहाँ अपने दूसरे बेटे शुजा को छोड आया था, औरग-जेब के काबुल पहुँच जाने पर शुजा काबुल से रवाना होकर फरवरी ७, १६४८ ई० को शाहजहाँ के पास आगरा लौट आया।[१३]

शाहजहाँ को आशका थी कि बल्ख़-बुखारा की ओर से कही काबुल पर आक्रमण न हो जावे एव उसने औरगजेब को मार्च, १६४८ ई० तक अटक पार ही रखा। और जब यह अदेशा न रहा तब मार्च १६, १६४८ ई० के बाद उसे मुलतान का सूबेदार नियुक्त कर वहाँ जाने की आज्ञा दी। परन्तु बल्ख़ और बदकशाँ पर चढाई करने के लिए जो सेना भेजी गई थी, काबुल पहुँचते ही वह भारत वापस बुला ली गई। जयसिह सीधा आम्बेर चला गया, और रतन-सिंह अपने सैनिको को लेकर जालोर को लौट गया।[१४]

महेशदास की मृत्यु के बाद तत्काल ही रतनसिह को शाही सेना

इसी घटना को लेकर बिहारी ने निम्नलिखित दोहा लिखा है:—

"यौ दल काढे बलक तैं तैं जयसिंह भुवाल।
उदर अघासुर कै परै ज्यो हरि गाई गुवाल॥"

और यह कठिन कार्य पूरा करने में रतनसिंह जयसिंह का प्रधान सहायक था।

[१३] वारिस०, १, प० ४ अ, ६ अ, ६ ब, १० अ; औरग०, १-२, पृ० १०१।

[१४] वारिस०, १, प० १२ अ; औरग०, १-२, पृ० १०१।

मे सम्मिलित होना पड़ा था, एव उसे तब समय नही मिला था कि जालोर की अपनी जागीर एव जमीदारी मे वह अपनी सत्ता पूर्णतया स्थापित कर सके। बल्ख की इस चढाई से लौटने पर उसे कुछ समय मिला। सैणा का इलाका भी जालोर के ही अन्तर्गत था, उस समय इसके ताल्लुक कोई १२ गॉव और छोटे-मोटे ३०० रहट थे, और आय भी कोई दस हजार रुपया सालाना की थी। यह इलाका नारायणदास बौडा चौहान के पुत्र कल्याणदास के अधिकार मे था। कल्याणदास ने महेशदास की तो आधीनता स्वीकार कर ली थी, और वह सैणा का भूमिया मान लिया गया था।

अब जब रतनसिह जालोर का अधिकारी हुआ तो उसने बौडा चौहानों का अधिकार सैणा से हटा सैणा को पूर्णतया जालोर के अन्तर्गत करने की सोची। वह सैणा गया, और कल्याण से कहा कि "हम आगे चलते है तुम जल्दी से आन पहुँचना।" कल्याण थोड़े से साथियों के साथ आया, तब रतनसिह ने बर्छा मार कर कल्याणदास बौड़ा को ठिकाने लगाया, और सैणा पर अपना अधिकार जमाया। दूसरे चौहान भाग कर सिरोही इलाके मे जा रहे।[१५] यो रतनसिह ने बौडा चौहानो को हटा कर सैणा पर अपना आधिपत्य स्थापित किया, परन्तु जिस प्रकार उसने यह कार्य किया वह सर्वथा अनुचित और रतनसिह के समान वीर योद्धा के अनुरूप न था।

परन्तु रतनसिह को अधिक समय तक जालोर रहने का अवसर न मिला। भारत की सीमा पर स्थित कन्धार के किले के लिए पिछले डेढ सौ वर्षो से मुगल सम्राटों और ईरान के शाहों मे निरन्तर खीचा-तानी होती रही थी। दोनो ही उस पर अपना आधिपत्य

---

[१५] नैणसी०, १, पृ० १८२-३।

स्थापित करने को उत्सुक थे। सन् १६३८ ई० के फरवरी मास में जब कन्धार के ईरानी किलेदार अलीमर्दान खाँ ने उसे मुगलो को सौप दिया था, तब से यह सुप्रसिद्ध किला शाहजहाँ के ही अधिकार मे रहा, और इस किले को सुदृढ बनाने, वहाँ आवश्यक खाद्य तथा युद्ध सामग्री एकत्रित करने, एव उसके आधीन बिस्त और जमीन दावर को अधिक सुसज्जित बनाने के लिए शाहजहाँ ने कोई कम्र छोड़ी न थी।[१६]

इधर ईरान का शाह अब्बास जिसकी उम्र इस समय १६-१७ बरस की ही थी, कन्धार पुन जीतने के लिए उत्सुक हो उठा, एव कन्धार पर चढाई के लिए तैयारियाँ होने लगी। सितम्बर ३०, १६४८ ई० को प्रथम बार शाहजहाँ के पास इन तैयारियो की सूचना पहुँची। शाहजहाँ तब दिल्ली मे था। एक बार तो उसने इरादा किया कि वह सीधा काबुल पहुँच जावे और कन्धार जाने वाली सेना काबुल मे ही एकत्रित की जावे. परन्तु शाहजहाँ के कई आराम-पसन्द सलाहकारो ने सरदी की मौसम की इस चढ़ाई को ठीक नही बताया, एव वह इरादा पलट गया। किन्तु शाही सेना के विभिन्न सेनानायकों को हुक्म भेजा गया कि वे अपने अपने सैनिको को लेकर जल्द ही शाही सेना मे सम्मिलित हो जावे।

---

[१६] औरंग०, १-२, पृ० ११४-६।

"बिस्त" का किला हेलमन्द और अरग़न्दाब नदियो के संगम पर क़न्धार से ८० मील पूर्व में ३१° ३०′ उत्तर एवं ६४° २०′ पूर्व में स्थित है। दारा०, एवं मोहम्मद अली कृत "गाइड टू अफ़ग़ानिस्तान" में इस स्थान का नाम "बुस्त" लिखा है। किन्तु सर यदुनाथ ने नक़्शे में दिए गये "बिस्त" नाम का ही प्रयोग किया एव यहाँ भी इसी नाम को स्वीकार किया है।

ऐसा हुक्म मिलने पर रतनसिह भी अपने सैनिको को लेकर जालोर से चल पड़ा ।[१७]

कन्धार जाने वाली इस सेना का प्रधान सेनापति औरगजेब नियुक्त किया गया, और वजीर सादुल्ला खॉ को भी हुक्म हुआ कि वह भी साथ जावे । सैनिक तैयारियॉ होने लगी । नवम्बर ९ को शाहजहॉ दिल्ली से लाहौर के लिए चल पडा, और दिसम्बर १८ को लाहौर पहुँचा । कन्धार जाने वाली सेना एकत्रित हो रही थी, कई ताईनाती सैनिक अमीर अभी तक शाही सेना मे सम्मिलित नही हुए थे, एव कन्धार यात्रा के लिए भी नित नए मनसूबे होते थे । अन्त मे जनवरी १६, १६४९ ई० को शाहजहॉ के पास कन्धार से एक खत पहुँचा, जिससे उसे ज्ञात हुआ कि दिसम्बर १६, १६४८ ई० को शाह अब्बास ने कन्धार पहुँच कर किले का घेरा डाल दिया। शाहजहॉ ने उसी दिन सेना को जल्द से जल्द कन्धार के लिए रवाना होने का हुक्म दिया । अन्य राजपूत सेनापतियो के साथ ही रतनसिह भी इस चढाई पर जाने के लिए नियुक्त हुआ, और उसका काका जसवंतसिह भी कन्धार भेजा गया । जनवरी २२ को सादुल्ला खॉ अपने इन सेनापतियो को लेकर लाहौर से रवाना हुआ । रवाना होते समय रतनसिह को उसके मनसब के अनुरूप खिलअत और चॉदी की जीन के साथ एक घोडा दिया गया, जसवन्तसिह राठौड को भी उसके उपयुक्त खिलअत मिली ।[१८]

औरगजेब तब मुलतान मे था, उसे हुक्म हुआ कि वह वहॉ से

---

[१७] वारिस०, १, प० २० ब-२१ अ; औरंग०, १-२, पृ० ११६-११७, १२२ ।

[१८] वारिस०, १, प० २२ अ, २३ अ-२३ ब; कम्बू, ३, पृ० ७२; औरंग०, १-२, पृ० १२२-३ ।

सीधा ही क़न्धार के लिए रवाना हो जावे। वह सादुल्ला ख़ाँ से भेरा में आ मिला। वहाँ से बंगष, कोहाट, जमरूद और जलालाबाद की राह वह मार्च २५ को काबुल पहुँचा। सादुल्ला ख़ाँ सारी शाही सेना को लेकर पेशावर की राह काबुल गया; और रतनसिंह भी उसी के साथ रहा। घास-दाने की कमी और बरफ़ पड़ने के कारण राह में शाही सेना को कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं। काबुल पहुँचते-पहुँचते यह ज्ञात हो गया कि ईरान के शाह ने फ़रवरी ११ को क़न्धार के क़िले पर अधिकार कर लिया। शाहजहाँ स्वयं भी मार्च ५ को लाहौर से काबुल के लिए चल पड़ा और ताकीद करने लगा कि औरंगज़ेब जल्द ही जाकर क़न्धार के क़िले का घेरा लगावे और उसे पुनः जीत ले।[१९]

अप्रैल १८ को शाही सेना ग़ज़नी पहुँची; घास-दाने की कमी के कारण आगे बढ़ना संभव न था। परन्तु शाहजहाँ ताकीद कर रहा था एवं कोई पन्द्रह दिन ग़ज़नी ठहरने के बाद शाही सेना क़न्धार के लिए रवाना हुई। अब दुश्मन दूर न थे अतएव शाही सेना सात हिस्सों में संगठित की गई; राजपूत राजा विट्ठलदास के नेतृत्व में रखे गए और अन्य राजपूत सवारों के साथ रतन राठौड़ भी शाही सेना के हरोल में रहा। शाही सेना मई १४ को क़न्धार के सामने जा पहुँची; सेना के पीछे रहे हिस्से को लेकर औरंगज़ेब भी मई १६ को क़न्धार आ मिला।[२०]

इस प्रकार मई १६ को क़न्धार का पहला घेरा प्रारम्भ हुआ।

---

[१९] वारिस०, १, प० २४ अ, २६ अ, २७ ब; औरंग०, १-२, पृ० १२०, १२३।

[२०] वारिस०, १, प० २७ ब, २८ ब; औरंग०, १-२, पृ० १२२।

यह सेना प्रधानतया कन्धार के किले मे घिरे हुए मुगल दल की सहायता के लिए भेजी गई थी, एव घेरा लगाने और किले को तोडने योग्य बडी-बडी तोपे आदि सेना के साथ न थी। पुन तुर्कों का निरन्तर सामना करते-करते किलो का घेरा लगाने और घेरे का सामना करने मे ईरानी पूर्णतया चतुर हो गए थे। अतएव मुगल सेना को कन्धार के किले के विरुद्ध कोई विशेष सफलता न मिली। रतनसिह भी शाही सेना के साथ ही कन्धार के सामने ही बना रहा।[२१]

उधर जून मास मे कलीच खाँ को शाही सेना के एक दल के साथ बिस्त के किले के पास नियुक्त किया था। अगस्त ९ को कलीच खॉ को सूचना मिली कि ईरानियो की सेनाएँ कन्धार की मदद के लिए उधर बढ रही थी, एव वह बिस्त से पीछे हट आया। यह सूचना पाने पर औरगजेब ने अगस्त ११ को रुस्तम खॉ के नेतृत्व मे राठौड सैनिको का एक बडा दल और अन्य सेना कलीच खॉ की सहायता के लिए भेजी। रतनसिह और उसके सैनिक भी इस दल मे भेजे गए। कलीच खॉ और रुस्तम खॉ ने मिल कर शाहमीर नामक स्थान पर अगस्त २५ को ईरानियो का सामना किया। ईरानियो की सख्या कोई तीस हजार थी और यह सेना चार मील की दूरी में फैली हुई थी। मुगल सैनिको की सख्या बहुत ही कम थी, परन्तु ईरानियो का सामना करने के लिए उन्हे ठीक तौर पर सगठित किया था। रुस्तम खॉ ने रतनसिह और उसके अन्य राठौड साथियो तथा उन सबके सैनिकों को हरोल मे रखा। पीछे एक ओर रुस्तम खॉ स्वय रहा और दूसरी ओर कलीच खाँ को रखा। दोपहर के एक घण्टे बाद से लडाई शुरू हुई और पूरे तीन घण्टे तक भयकर मार-काट

---

[२१] वारिस०, १, प० २८ ब, ३४ ब; औरंग०, १-२, पृ० १२७-१२९।

होती रही। ईरानी सेनापति ने कसम खाई थी कि वह मुगल सेना को हरा कर ही पानी पिएगा। कई बार ईरानी सवारो ने बडे जोर-शोर से हमले किए, परन्तु उनकी कुछ न चली और अन्त मे उन्हे पीछे हटना ही पडा। इसी समय धूल की आँधी आई और उसकी आड मे ईरानी रणक्षेत्र छोडकर लौट गए। विजयी मुगल सेना ने दूसरे दिन ईरानियो का पीछा किया, परन्तु ईरानी कुष्क-इ-नख़ुद कस्बे को रात ही ख़ाली कर गए थे। बीस मील तक पीछा करने के बाद भी जब ईरानियो का पता न लगा तो मुगल सैनिक लौट आए और कन्धार मे औरगजेब की सेना मे सम्मिलित हो गए।[२२]

शाहमीर के इस युद्ध मे मुगल सेना की विजय का समाचार सुन कर शाहजहाँ बहुत ही प्रसन्न हुआ, काबुल मे खुशियाँ मनाई गईं और इस युद्ध मे वीरता दिखाने वाले सेनापति और योद्धा अगस्त ३१, १६४९ ई० को पुरस्कृत किए गए। रतनसिह का मनसब भी पाँच सदी जात और सौ सवारो से बढाया गया। अब रतनसिह का मनसब दो हजारी जात-सोलह सौ सवारो का हो गया।[२३]

परन्तु शाहमीर के युद्ध की इस विजय का कन्धार के घेरे पर कोई भी असर नही पडा। इस घेरे की पूर्ण विफलता स्पष्ट हो गई थी, एव अगस्त माह मे ही शाहजहाँ ने औरगजेब को हुक्म भेज दिया था कि वह घेरा उठा कर लौट आवे। औरगजेब के गजनी पहुँचने तक दारा को काबुल ठहरने की आज्ञा देकर अगस्त २८ को शाहजहाँ काबुल से भारत के लिए रवाना हो गया। शाहजहाँ की आज्ञा मिलते

---

[२२] वारिस०, १, प० ३५ ब, ३६ अ-३७ ब; औरग०, १-२, पृ० १२६-१३१।

[२३] वारिस०, १, प० ३८ अ।

ही सितम्बर ५, १६४९ ई० को औरंगजेब कन्धार का घेरा उठाकर भारत को लौट पडा। रतनसिह और उसके सैनिक भी औरगजेब के साथ भारत के लिए चल पडे। अपनी सारी सेना लेकर औरगजेब लाहौर पहुँचा और नवम्बर १० को शाहजहाॅ की सेवा मे उपस्थित हुआ, रतनसिह भी औरगजेब के साथ था। दिसम्बर ७ को शाहजहाॅ दिल्ली के लिए रवाना हो गया।[२४] औरगजेब मुलतान को लौट गया, और सारी शाही सेना जो कन्धार के लिए एकत्रित की गई थी लाहौर से ही बिखरने लग गई थी। रतनसिह और उसके सैनिक भी पुन: जालोर को लौट गए।

२. कन्धार के दूसरे और तीसरे घेरे, तथा चित्तौड़ पर चढ़ाई; १६५०-१६५४ ई०

शाहजहाॅ जनवरी ४, १६५० ई० को दिल्ली पहुच गया और एक वर्ष के लगभग वही रहा। फरवरी ११, १६५१ ई० को वह काश्मीर जाने के लिए दिल्ली से रवाना हुआ। राह मे लाहौर डेढ महीना ठहर कर जून ३ को वह काश्मीर जा पहुँचा; किन्तु इस बार शाहजहाॅ का दिल काश्मीर मे न लगा और अगस्त ८ को वहाॅ से लौट पड़ा और सितम्बर १६, १६५१ ई० को वह लाहौर आ गया।[२५] इस अरसे मे रतनसिह कहाॅ था और क्या कर रहा था, इसका कोई विवरण नही मिलता है; अनुमान यही होता है कि कन्धार के पहिले घेरे से लौटने के बाद वह जालोर मे ही अपना निजी कार्य

---

[२४] वारिस०, १, प० ३४ अ, ३७ ब-३८ अ, ३९अ-३९ब; औरंग०, १, पृ० १२९, १३१-२।

[२५] वारिस०, १, प० ४० अ, ४९ अ, ४९ ब, ५१ अ, ५२ अ, ५३अ, ५४ अ।

करता रहा होगा। मार्च १२, १६५० ई० के दिन रतनसिह ने अपने पिता द्वारा नियुक्त राजव्यास रघुनाथ को एक नई सनद दी और जालोर परगने मे उसकी निजी आय का प्रबन्ध किया।[२६] सन् १६५१ ई० के बरसात के दिनो मे रतनसिह ने माधो भारती नामक सन्यासी को खारा नामक गॉव दिया।[२७] इसी के कुछ माह बाद सितम्बर १६५१ ई० मे शाहजहॉ के लाहौर पहुंचने पर रतनसिंह भी जालोर से वहॉ चला गया। जनवरी २०, १६५२ ई० को शाहजहॉ की साल-गिरह थी, जिसके उपलक्ष मे तुलादान हुआ और इनाम दिए गए, रतनसिह को भी इस दिन एक झडा मिला।[२८]

शाहजहॉ को कन्धार के पहिले घेरे में मुगल सेना की विफलता बहुत खटकी, एव शाही सेना के वहॉ से लौटते ही शाहजहॉ ने औरगजेब को दूसरा घेरा लगाने की तैयारी करने का हुक्म दिया। इन दो बरसो मे इस चढाई के लिए पूरा-पूरा प्रबन्ध किया गया, बडी-बडी तोपे ढाली गई, लड़ाई का सामान एकत्रित किया गया, और मुलतान से कन्धार जाने वाली राह के बलूची खानो से मैत्री की गई। कोई ५० या ६० हजार सैनिको की सेना इस चढाई के लिए एकत्रित

[२६] राजव्यास०। जालोर परगने में वसूल की जाने वाली किसी चुगी की सारी आमदनी रघुनाथ व्यास को दी गई। यह सनद "रेसीरी घाटी" के मुकाम पर लिखी गई।

[२७] फेहरिस्त०। इस गाँव की सनद बाद में अगस्त २०, १६५४ ई० को लिखी गई थी। सन् १६५६ ई० में बदला-बदली के समय जब जालोर परगना खालसा हुआ तब यह गॉव भी जब्त हो गया था। सन् १६५७-५८ ई० में जालोर परगना जोधपुर के महराजा जसवन्तसिह के अधिकार में आया, तब उन्होंने यह गॉव पुनः उसी सन्यासी को दे दिया।

[२८] वारिस०, १, प० ५८ अ।

की गई, इनम से कोई १० या १२ हजार गोलन्दाज और बरकन्दाज (तोडेदार बन्दूको वाले) थे। अनेकानेक उच्च मनसबदारों और सेनानायको के साथ ही रतनसिह को भी इस चढाई पर जाने के लिए नियुक्त किया गया।[२९]

औरगजेब सन् १६५२ ई० के प्रारम्भ मे मुलतान मे ही था। उसे हुक्म हुआ कि इस चढाई पर रवाना होने के लिये फरवरी १६, १६५२ ई० का शुभ मूहूर्त निकला है, एव उसी दिन वह मुलतान से ही सीधा कन्धार के लिए रवाना हो जावे। प्रधान शाही सेना भी सादुल्ला खॉ के सेनापतित्त्व मे लाहौर से फरवरी १६ को रवाना की गई। रतनसिह को मिर्जा राजा जयसिह के नेतृत्त्व मे हरोल मे रखा गया। लाहौर से रवाना होते समय अन्य सेनानायको के साथ ही रतनसिह को भी उसके मनसब के अनुरूप खिलअत और चॉदी की जीन के साथ एक घोडा भी मिला।[३०]

शाही सेना को लेकर सादुल्ला खॉ लाहौर से रवाना हो कर खैबर के दर्रे मे होता हुआ काबुल पहुँचा और वहॉ से गजनी की राह कन्धार की ओर बढा। रतनसिह और उसके सैनिक भी सादुल्ला खॉ के साथ ही थे। औरगजेब मुलतान से चोटियाली और पिशिन होता हुआ, कन्धार के पास ही मई २, १६५२ ई० को शाही सेना मे

---

[२९] आदाब०, १, प० ३ अ, ४ अ, ५अ, ७ अ, १० अ, ११ अ, ६६ ब; वारिस०, १, प० ६१ ब; औरंग०, १-२, पृ० १३३-५।

[३०] वारिस०, १, प० ६०अ-ब, ६४अ; आदाब०, १, प० ६अ; औरंग०, १-२, पृ० १३४। कम्बू०, ३, पृ० १४० के अनुसार इस अवसर पर रतनसिंह को घोडे के साथ सोने की जीन मिली, परन्तु वारिस०, १, प० ६०ब पर चॉदी की जीन का ही उल्लेख मिलता है।

जा मिला। उसी दिन शाही सेना ने कन्धार के किले का घेरा डाला।[३१]

शाहजहाँ भी फरवरी १६, १६५२ ई० को लाहौर से रवाना होकर शाही सेना के पीछे-पीछे अप्रैल ३ को काबुल आ पहुँचा, और यहाँ से कन्धार के घेरे की कार्यवाही का वह स्वयं ही सचालन करने लगा। सवा तीन माह तक औरगजेब एव सादुल्ला खाँ कन्धार के किले का घेरा लगाए रहे। मुगल गोलन्दाज न तो अपने कार्य मे कुशल ही थे और न अच्छे निशानेबाज ही, एव ईरानी गोलन्दाजों के सामने उनकी कुछ न चली। ईरानी गोलन्दाज बहुत कुशल तोपची ही न थे परन्तु बहुत ठीक निशाना भी लगाते थे। शाहजहाँ का हुक्म था कि जहाँ तक किले का परकोटा न टूटे किले पर कोई भी हमला न किया जावे, और परकोटे को तोडना मुगल गोलन्दाजो के बस की बात न थी। इस घेरे के समय रतनसिह और उसके सैनिक किस स्थान पर नियुक्त थे, किस किस युद्ध या हमले मे उन्होने भाग लिया, आदि का कोई विशेष विवरण नही मिलता है।[३२]

अन्त मे शाहजहाँ की आज्ञानुसार जुलाई ९, १६५२ ई० को

---

[३१] वारिस०, १, प० ६४ अ; आदाब०, १, ६अ-११ब; औरग०, १-२, पृ० १३४-१३५।

[३२] वारिस०, १, प० ५६ब, ६३ब, ६५ब, आदाब०, १, प० १३ब, १८अ-ब, १६अ, १७ब; औरंग०, १,-२, पृ० १३६-१४८।

रासो० में रतनसिंह के कन्धार के प्रथम दो घेरो में सम्मिलित होने का उल्लेख है परन्तु वहाँ इन युद्धो और घेरो का केवल कवित्वपूर्ण विवरण ही दिया है, किन्हीं ऐतिहासिक तथ्यो का उल्लेख उसमें नहीं मिलता है। रासो०, पृ० ८०-८१; रतन०, पृ० २५-२७।

बडी ही अनिच्छापूर्वक घेरा उठा कर औरगजेब कन्धार से चल पडा, और रतनसिह तथा उसके सैनिक भी शाही सेना के साथ वापस लौट पडे। सारी शाही सेना को लेकर सादुल्ला खॉ आदि काबुल के लिए रवाना हुए और जुलाई ३० को वहॉ पहुँच गए। औरगजेब का इरादा पिशिन, चोटियाली और मुलतान की राह लौटने का था, परन्तु जब उसे ज्ञात हुआ कि राह की बलूची जातियॉ मुगलो का विरोध करने को उतारू है, पिशिन और दुकी के स्थानो के सैनिको को साथ लेकर अन्त मे वह भी काबुल को ही लौटा और अगस्त ७ को शाहजहॉ के दरबार में समुपस्थित हुआ। जुलाई १४,१६५२ ई० को ही औरगजेब को दक्षिणी सूबो की सूबेदारी मिल चुकी थी, एव वह अगस्त १६ को दक्षिण के लिए वह रवाना हुआ।[३३]

शाहजहॉ ने औरगजेब को लौट आने का हुक्म दिया, परन्तु दो बार की इन विफलताओ का उसे बहुत ही खेद था, एव शाहजादा दारा शिकोह ने, जो उस समय काबुल था, आगामी वर्ष पुन कन्धार को जीतने के लिए चढाई करने का प्रस्ताव किया। शाहजहॉ ने दारा शिकोह के प्रस्ताव को स्वीकार कर उसे ही आगामी चढाई का प्रधान सेनापति नियुक्त किया और जुलाई १४,१६५२ ई० को मुलतान तथा काबुल के सूबे दारा को दिए गए एव आगामी चढाई के लिए तैयारियॉ करने की उसे आज्ञा हुई। अगस्त ६ को शाहजहॉ काबुल से दिल्ली के लिए रवाना हुआ, किन्तु दारा शिकोह को वह काबुल मे ही छोड गया, एवं कन्धार के दूसरे घेरे से लौटी हुई शाही

---

[३३] वारिस०, १, प० ६६अ, ६६ब; आदाब०, १, प०, १८ब; औरग०, १-२, पृ० १४४-५, १५१।

सेना भी दारा के पास काबुल मे ही रहने दी । यो रतनसिंह और उसके सैनिक भी कन्धार से लौटने पर दारा के साथ हो गए ।[३४]

कुछ समय बाद सर्दी का मौसम आने लगा तो दारा सारी शाही सेना को लेकर काबुल से लाहौर चला आया और कन्धार की अगली चढाई के लिए तैयारियाँ करने लगा । रतनसिंह और उसके सैनिक भी दारा के साथ ही लाहौर आए । अन्त मे जब दारा के साथ इस चढाई पर जाने वाले सेनानायको और मनसबदारो की नियुक्ति होने लगी तो रतनसिंह और उसके सैनिक भी तीसरी बार क़न्धार पर घेरा डालने के लिए नियुक्त किए गए और फरवरी ११, १६५३ ई० को शुभ मुहूर्त के समय दारा शिकोह के साथ ही लाहौर से कन्धार के लिए रवाना हुए ।[३५]

दारा और शाही सेना मुलतान, दुकी और पिशिन होते हुए अप्रेल २३ को पजमुन्द्रा के दर्रे मे से गुजरे । घेरा डालने का मुहूर्त अप्रेल २५ का निश्चित था एव दारा ने रुस्तम खाँ को कुछ सेना लेकर मुहूर्त के शुभ दिन ही घेरा प्रारम्भ करने को आगे भेजा । दारा स्वय शाही सेना के साथ जब कन्धार पहुँचा तो दूसरा मुहूर्त देख कर अप्रेल २८ को ही ठीक तौर पर घेरा डाला गया । रतनसिंह शाही सेना के साथ ही कन्धार पहुँचा, और प्रारम्भ मे किसी कार्य विशेष के लिए उसकी नियुक्ति नही की गई ।[३६]

---

[३४] वारिस०, १, प० ६६अ-ब, ६७अ, ६७ब, ६९ब; लताइफ०, प० ७अ; दारा०, १, पृ० ३४-७ ।

[३५] वारिस०, १, प० ७०ब, ७४ब; लताइफ०, प० ८ब, ९ब; दारा०, १, पृ० ३७-४१ ।

[३६] वारिस०, २, प० ७४अ-७४ब; लताइफ०, प० ९ब-१३अ; दारा०, १, पृ० ४१-४४ ।

कन्धार का घेरा प्रारम्भ हुआ, विभिन्न सेनानायको ने आज्ञानुसार अपने-अपने स्थानो पर खाइयाँ खोद कर सैनिक नियुक्त किए, किला लेने के लिए प्रयत्न होने लगे और यदा-कदा दोनो सेनाओ के सैनिकों मे मुठभेड भी होने लगी। इस समय यह आवश्यक जान पडा कि कन्धार के आधीन बिस्त और अन्य किलो को भी जीत लिया जावे, जिससे कन्धार को जीतने मे बहुत कुछ मदद मिले। एव मई १३, १६५३ ई० को दारा ने रुस्तम ख़ाँ को १५,००० सैनिको के साथ बिस्त की ओर रवाना किया, रतनसिह और उसके सैनिक भी रुस्तम ख़ाँ के साथ भेजे गए। मई २१ को यह सेना बिस्त पहुँची और मई ३१ को बिस्त के किलेदार मेहदी क़ुली ने आत्मसमर्पण कर दिया। मेहदी कुली की सहायता से रुस्तम खाँ ने गिरिशक का किला भी अधिकार मे कर लिया। आगामी दो माह मे रुस्तम ख़ाँ ने जमीन दावर के प्रदेश पर भी कई एक हमले किए। किन्तु अगस्त के अन्त मे रुस्तम ख़ाँ और उसके सैनिको को कन्धार बुलाना आवश्यक जान पडा। सितम्बर २ को रुस्तम ख़ाँ गिरिशक से बिस्त लौट आया। परन्तु सितम्वर ८ को पुन. दारा का हुक्म रुस्तम ख़ाँ को पहुँचा कि वहँ बिस्त मे ही ठहरा रहे। अन्त मे सितम्बर २५ को रुस्तम ख़ाँ को लौट आने का हुक्म मिला, तब दारा की आज्ञानुसार बिस्त के किले को तोड-फोड कर रुस्तम खाँ कन्धार लौट आया। रतनसिह और उसके सैनिक भी रुस्तम ख़ाँ के साथ ही लौटे। इस प्रकार कन्धार के इस घेरे के अवसर पर रतनसिह और उसके सैनिक कन्धार से दूर रुस्तम खाँ के साथ ही रहे और क़न्धार के घेरे मे भाग लेने का उन्हे अवसर नही मिला। बिस्त के किले को जीतने या जमीन दावर के प्रदेश की चढाइयों मे रतनसिह

ने क्या भाग लिया था, इसका कोई विशेष विवरण नही मिलता है ।[३७]

परन्तु रुस्तम खाँ जब कन्धार पहुँचा, तब तक कन्धार का यह तीसरा घेरा भी पूर्णतया विफल हो चुका था। दारा का इरादा था कि घेरे को कुछ दिन और डाले रहे, परन्तु शाहजहाँ की आज्ञानुसार दारा को घेरा उठाने का निश्चय करना ही पडा। रुस्तम ख़ाँ के पहुँचने के दूसरे दिन ही दारा शाही सेना को लेकर पिशिन, दुकी की राह मुलतान को लौटा। रतनसिह और उसके सैनिक भी दारा के साथ लौट पडे। मुलतान होता हुआ दारा नवम्बर २२, १६५३ ई० को लाहौर और दिसम्बर २५ को दिल्ली पहुँचा। कन्धार के घेरे की इस विफलता के होते हुए भी शाहजहाँ ने अगले दिन दारा और उसकी सेना का बडे आदर, सम्मान एव प्यार के साथ स्वागत किया। दारा की सिफारिश के अनुसार अपनी अगली सालगिरह के सुअवसर पर शाहजहाँ ने कन्धार की इस चढाई पर गए हुए कई सेनानायको को मनसब आदि प्राप्त हुए, किन्तु इन सूचियो मे रतनसिह का नाम नही था।[३८]

इन पिछले दो बरसो मे रतनसिह कन्धार की इन दो चढाइयो मे ही लगा रहा था, एव अब थोडा अवसर पाकर कुछ माह के लिए

---

[३७] वारिस०, २, प० ७५अ, ७६अ-७६ब, ७९अ; लताइफ़०, प० २३ब, २५ब, ३०अ, ३५ब, ४०ब, १४१अ-ब, १४२ब, १४३ब, १४५ब, १७०अ; दारा०, १, पृ० ४६-४९, ५८-६१, ९३-९४ फु० नो०।

[३८] वारिस०, २, प० ७९अ, ८१अ, ८२ब; लताइफ०, प० १६८ब-१७०ब; दारा०, १, पृ० ९१-९७।

रतनसिंह के तीसरी बार कन्धार जाने का उल्लेख रासो० में नहीं है।

वह जालोर को लौट गया, परन्तु सन् १६५४ ई० की बरसात शुरू होते-होते उसे पीछे दिल्ली चले आना पड़ा।

इधर कुछ बरसो से उदयपुर के महाराणा ने अपनी पिछली सन्धि की शर्तो के विरुद्ध चित्तौड के किले की दीवालो की मरम्मत करवाना प्रारम्भ कर दिया था, और अक्तूबर, १६५२ ई० मे गद्दी पर बैठने के बाद उदयपुर का नया महाराणा राजसिह तो इस ओर बहुत ही प्रयत्नशील हुआ। कन्धार के मामले मे उलझे रहने के कारण शाहजहाँ ने तब इस ओर विशेष ध्यान नही दिया था, किन्तु अब अवसर मिलने पर शाहजहाँ ने इस मामले को उठाया। सितम्बर ४, १६५४ ई० को वज़ीर सादुल्ला ख़ाँ एक बडी सेना के साथ चित्तौड भेजा गया, रतनसिह और उसके सैनिक भी सादुल्ला ख़ाँ के साथ चित्तौड के विरुद्ध भेजे गए। सादुल्ला ख़ाँ को हुक्म हुआ कि चित्तौड के किले की दीवालों की मरम्मत करने के काम को वह रोक दे और यदि महाराणा सामना करे तो युद्ध भी किया जावे। शाहजहाँ स्वय भी सितम्बर २४ को दिल्ली से अजमेर के लिए रवाना हुआ, दारा शिकोह भी शाहजहाँ के साथ था।[१९]

महाराणा ने इस बार लडाई करना उचित न समझा। उसने अपने वकील भेज कर दारा शिकोह के द्वारा शाहजहाँ से क्षमा चाही। बादशाह ने उदयपुर के युवराज को शाही दरबार मे भेजने और पुरानी शर्तो की पाबन्दी पर जोर देकर मुंशी चन्द्रभाण को महाराणा के पास भेजा। महाराणा ने अपने राजपूतों को भी चित्तौड़ से हटा लिया, एव जब अक्तूबर २७ को सादुल्ला ख़ाँ शाही सेना के साथ

---

[१९] वारिस०, २, प० ६०ब, ६१अ; वीर०, २, पृ० ४०१-४०२; उदय०, २,पृ० ५२५, ५३२-५३३; दारा०, १, पृ० १६७-८।

चित्तौड पहुँचा उसने किले को खाली पाया। वह पन्द्रह दिन तक चित्तौड ठहरा रहा और वहाँ किले के कगूरो और बुरजों को तोड-फोड डाला। तब उसे शाहजहाँ का हुक्म मिला कि चित्तौड का किला नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जा चुका था, महाराणा ने माफी भी माँग ली थी एव उसका अपराध क्षमा कर दिया गया। अतएव आज्ञानुसार किले को खाली कर सादुल्ला खाँ शाही सेना को लेकर नवम्बर १० के लगभग चित्तौड से लौट पडा, और रतनसिह तथा उसके सैनिक भी शाही सेना के साथ ही चित्तौड से रवाना हुए।[४०]

शाहजहाँ भी अक्तूबर २७ को अजमेर पहुँचा था। नवम्बर १४ को वह अजमेर से आगरा के लिए लौट पडा और आठ दिन बाद चित्तौड से लौट कर सादुल्ला खाँ शाहजहाँ की सेवा मे आ उपस्थित हुआ। रतनसिह और उसके सैनिक अब शाहजहाँ के साथ ही उत्तरी भारत को चले और दिसम्बर १७, १६५४ ई० को आगरा पहुँचे। राह मे शिकार खेलता हुआ शाहजहाँ अगले माह दिल्ली पहुँचा। आगामी डेढ वर्ष तक शाहजहाँ ने दिल्ली मे ही निवास किया।[४१]

३. रतलाम राज्य की स्थापना (१६५६ ई०); रतलाम परगने का पूर्व-वृत्तान्त एवं मध्य मालवा की तत्कालीन परिस्थिति

जनवरी, १६५५ ई० मे रतनसिह और उसके सैनिक शाहजहाँ के साथ दिल्ली पहुँचे। अपने पिता महेशदास की मृत्यु के बाद सन्

---

[४०] वारिस०, २, प० ९३अ; वीर०, २, पृ० ४०२-४१३; उदय०, २, पृ० ५३३-४; दारा०, १, पृ० १६९-१७१।

[४१] वारिस०, २, प० ९२अ, ९२ब, ९३ब, ९४अ, ९४ब; दारा०, १, पृ० १७१।

१६५० ई० और १६५१ ई० को छोडते हुए कोई भी बरस ऐसा न बीता, जिसमे रतनसिह को अधिकतर बाहर ही रहना न पडा हो। अतएव अब कुछ अवसर पाकर सन् १६५५ ई० के प्रारम्भ मे रतनसिह जालोर गया। इन पिछले आठ वर्षो मे रतनसिह और उसके सैनिकों को निरन्तर शाही सेना के साथ रहना ही पडा, जिससे उसे काफ़ी खर्चा उठाना पडा। पुन: जालोर से बाहर रहने के कारण रतनसिंह को अपनी जागीर के परगने की ओर पूरा-पूरा ध्यान देने का अवसर ही नही मिला। जालोर की पूरी-पूरी आमदनी भी वसूल नही हो रही थी। यदा-कदा जब कभी रतनसिह जालोर पहुँच पाता था, वह नए गॉव बसा कर उन्हे आबाद करने का प्रयत्न करता था,[४२] परन्तु इन थोडे से प्रयत्नो से जालोर परगने की आमदनी जैसी चाहिए वैसी नही बढ रही थी। उस परगने की जमीन प्रधानतया मैदान होते हुए भी रेतीली ही है। वहॉ उन्हालू और सियालू दोनों ही फसले हो सकती है, किन्तु उन्हालू (रबी) फसल विशेषतया कुओ की मदद से ही हो पाती है। अतएव निजी देख-रेख और पर्याप्त प्रयत्नो के अभाव मे इस परगने की आमदनी बहुत ही घट गई थी। उधर व्यय बहुत बढ गया था, एव रतनसिह की माली हालत बहुत अच्छी न थी। इसलिए इस बार रतनसिह ने स्वयं जालोर जाकर बाकी रही वसूली करने और आमदनी को बढ़ाने

---

[४२] फेहरिस्त० में रतनसिह द्वारा नए बसाए गये निम्नलिखित गांवों का उल्लेख मिलता है:–

(१) रतनपुरा–सं० १७०८ वि० (१६५१-२ ई०);
(२) ऊण;
(३) जोगणी–सं० १७१० वि० (१६५३-४ई०);
(४) गोधण।

के लिए अनेक प्रयत्न किये, किन्तु उसे विशेष सफलता नही मिली

सन् १६५५ ई० के अन्तिम महीनो मे रतनसिह वापस दिल्ली शाहजहाँ की सेवा मे उपस्थित हो गया। जनवरी ११, १६५६ ई० को शाहजहाँ की सालगिरह के उपलक्ष मे तुलादान हुआ, इस अवसर पर रतनसिह को बहुत ही अच्छी खिलअत दी गई।[८३]

परन्तु इस प्रकार की खिलअतो से ही रतनसिह की आर्थिक कठिनाइयाँ हल नही हो सकती थी। अवसर पाकर उसने जालोर परगने की आमदनी का ठीक-ठीक ब्यौरा और अपनी सारी आर्थिक कठिनाइयो का सच्चा-सच्चा विवरण शाहजहाँ की सेवा मे निवेदन करवाया। दारा शिकोह रतनसिह से प्रसन्न था एव रतनसिहने उसके सामने भी अपनी आर्थिक परिस्थिति व्यक्त कर दी। दारा शिकोह ने भी शाहजहाँ की सेवा मे रतनसिह के पक्ष मे बहुत कुछ निवेदन किया। अन्त मे शाहजहाँ ने यही उचित समझा कि रतनसिह को जालोर परगने के बदले मे दूसरे कोई परगने दे दिए जावे, जिनकी आमदनी से रतनसिह का खर्चा चल सके और उसकी आर्थिक परिस्थिति भी सुधर जावे।

यह बातचीत चल ही रही थी, उसी समय मार्च या अप्रेल, १६५६ ई० मे पृथ्वीराज राठौड की मृत्यु हो जाने से मालवा सूबे मे उसकी जागीर के अन्य परगनो के साथ ही रतलाम परगना भी खालसा हो गया था। रतलाम परगने का राठौड वीरो से पर्याप्त सम्बन्ध रहा था, एव शाहजहाँ ने रतनसिह को यही रतलाम परगना, जिसकी आय बावन लाख दाम की थी, वतन के रूप मे वशपरम्परागत दे दिया, और मनसब के अनुरूप आमदनी पूरी करने को मालवा मे

---

[८३] वारिस०, २, प० १०३ब।

ही बदनावर, तीतरोद, आगर, कोठडी-पड़ावा, बडोद, आलोट, आदि परगने एव गडगुचा, रामगढ, नहारगढ आदि के आसपास जागीर दी, जो व्यक्तिगतरूपेण ही रतनसिह के अधिकार मे आई ।

परगनो की इस बदला-बदली का शाही हुक्म होते ही रतनसिह शाहजहाँ से छुट्टी लेकर दिल्ली से रवाना हुआ। मार्च या अप्रेल, १६५६ ई० मे ही रतनसिह को जालोर के बदले मे मालवा के ये नए परगने प्राप्त हुए थे, अतएव स० १७१२ वि० (सन् १६५५-५६ ई०) की उन्हालू (रबी) फसल का लगान आदि एकत्रित करवा कर मई, १६५६ ई० मे जालोर छोड कर रतनसिह रतलाम चला गया, और अपने नए परगनो तथा जागीर पर अधिकार कर वहाँ के शासन को सुव्यवस्थित करने मे लग गया। रतनसिह अपने युवा पुत्रो और कई एक साथियो आदि को लेकर रतलाम चला आया था। अपने इस नए वतन मे पूर्ण व्यवस्था होने तक अपनी स्त्रियो तथा अन्य कुटुम्बियो आदि को उसने जालोर ही रहने दिया। सन् १६५८ ई० के प्रारम्भ मे ही उन्हे रतलाम बुलवाया गया।[४४]

रतनसिह को वशपरम्परागत जागीर मे प्राप्त रतलाम परगना अकबर के समय से ही मालवा सूबे की उज्जैन सरकार के अन्तर्गत रहा था। अकबर के समय मे भी यह परगना राजपूतों के ही अधिकार

---

[४४] जोधपुर राज्य की ख्यात (जोधपुर राज्य के संग्रह में प्राप्य) पृ० ८६; रासो०, पृ० ८२; गुरुजी० ।

रतलाम परगने की प्राप्ति, परगनों की इस बदला-बदली का कारण, इस घटना के सन्-संवत्, नई जागीर की आय, आदि का जो विवरण यहाँ दिया गया है वह प्रचलित कथाओ, ख्यातों या विश्वासो से बहुत ही भिन्न है। किन आधारो एवं किन कारणों से उपर्युक्त निर्णय किया गया है, इसके लिए आगे देखो–"परिशिष्ट १–रतलाम आदि परगने मिलने सम्बन्धी प्रश्नो की विवेचना"।

मे था, एव यहाँ प्रधानतया सोढिये राजपूतो की ही बस्ती थी। जहाँगीर के शासनकाल मे यह परगना कई बरस तक जोधपुर के महाराजा सूरसिह की जागीर मे रहा।[४५] सन् १६१९ ई० मे सूरसिह की मृत्यु होने पर यह परगना खालसा हो गया और बारह-तेरह वर्ष तक खालसा ही रहा। ख्यातो के अनुसार सन् १६३१ ई० के बाद यह परगना पृथ्वीराज राठौड के अधिकार मे आया और उसकी मृत्यु तक उसीके अधिकार मे रहा। कहा जाता है कि सन् १६३५ ई० के लगभग पृथ्वीराज ने रतलाम शहर का वर्तमान सूरजपोल दरवाजा बनवाया था। दिसम्बर, १६५५ ई० मे पृथ्वीराज राठौड शायस्ता ख़ॉ के साथ ही गोलकुण्डा पर चढाई करने मे औरगजेब की मदद के लिए मालवा से दक्षिण भेजा गया। फरवरी, १६५६ ई० मे गोलकुण्डा पहुँचने के कुछ ही समय बाद पृथ्वीराज वही मर गया। पृथ्वीराज की मृत्यु होने पर अन्य परगनो के साथ रतलाम परगना भी खालसा हो गया, और मार्च या अप्रेल, १६५६ ई० मे यही परगना रतनसिह को वशपरम्परागत जागीर के रूप मे मिल गया। पृथ्वीराज राठौड का ज्येष्ठ पुत्र जगतसिह अब शाही मनसबदार बना और उसे जागीर मे मालवा सूबा के अन्तर्गत नौलाई (वड़नगर) का परगना दिया गया, किन्तु जगतसिह तो रतलाम

---

[४५] आईन०, २, पृ० १९८; ख्यात०, १, पृ० १२३,१४६।

ख्यातो और दन्तकथाओ के आधार पर ही रतन० (पृ० २७-२८) एव कई एक अन्य ग्रथो मे लिखा है कि रतनसिह ने ही रतलाम शहर बसाया, एव उक्त शहर की स्थापना की अनेकानेक कपोल-कल्पित तिथियाँ भी बताई जाती है। किन्तु ये सारे कथन अनैतिहासिक तथा पूर्णतया अविश्वसनीय है। रतलाम नगर अकबर के समय भी विद्यमान था, यह आईन० (२, पृ० १९८) से साबित है।

परगना चाहता था, एव रतनसिह को रतलाम परगना मिलने पर वह बहुत ही असन्तुष्ट हुआ। शाही सत्ता के सामने उसकी कुछ भी चलना सभव न था, किन्तु इन भारमलोत राठौडो के विरोध से रतनसिह को मालवा मे अपनी सत्ता स्थापित करने में पर्याप्त कठिनाई उठानी पडी होगी।[४६]

---

[४६] गुरूजी०; वारिस०, २, प० १०६ ब, १११ ब।

पृथ्वीराज राठौड़ की सक्षिप्त जीवनी के लिए देखो—मा० उ०, १, पृ० ४२६-४३१। यह जीवनी परिशिष्ट २ में उद्धृत की गई है।

ख्यातो के अनुसार रतलाम, नौलाई (बड़नगर), बेतमा, आदि पाँच परगने पृथ्वीराज राठौड़ के अधिकार में थे, इनमें से कोई भी परगना उसे वंशपरम्परागत रूपेण नहीं मिला था, यह अनुमान होता है। पृथ्वीराज की मृत्यु की सूचना आने पर पृथ्वीराज की दो स्त्रियाँ नौलाई (बडनगर) में सती हुईं। गुरूजी०।

सन् १६५८ ई० में जगतसिह राठौड़ का मनसब सात सदी जात-तीन सौ सवारों का था (वारिस०, २, प० १२७ ब)। उसके बाद के जीवन का कोई विवरण नही मिलता है। ख्यातो के अनुसार जगतसिंह का दूसरा लडका मानसिंह श्यामूगढ़ के युद्ध मे दाराशिकोह की ओर से लड़ता हुआ मई २६, १६५८ ई० को मारा गया।

पृथ्वीराज राठौड़ के छोटे भाई रामसिंह का मनसब पाँच सदी जात-दो सौ सवारो का था (वारिस०, २, प० १२६ ब)। उसका पुत्र उदयसिंह धरमत (फतेहाबाद) के युद्ध में औरंगजेब के विरुद्ध लड़ता हुआ अप्रेल १५, १६५८ ई० को मारा गया (ख्यात०, १, पृ० २०८)। पृथ्वीराज के छोटे लड़के केसरीसिंह का मनसब छः सदी जात-दो सौ सवारो का था (वारिस०, २, प० १२८ ब)।

ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत बड़नगर के पास खण्डवा और बड़गारा ठिकाने तथा बागली के पास बरखेड़ा ठिकाना, धार राज्य में बदनावर के पास मॉगलिया ठिकाना, एवं वर्तमान रतलाम राज्य के अन्तर्गत इशरथुणी तथा बेड़छाँ ठिकाने आज भी पृथ्वीराज राठौड़ के वशंजो के अधिकार में है। गुरूजी०; तारीख जागीरदारान (ग्वालियर), २, पृ० ४१५-६, ४४६-४९।

रतनसिह को मालवा मे जब यह नई जागीर प्राप्त हुई, उस समय इतिहास-प्रसिद्ध शायस्ता खॉ मालवा का सूबेदार था, फरवरी ५, १६५५ ई० को वह इस पद पर नियुक्त किया गया था। मालवा निरन्तर अधिकाधिक समृद्ध होता जा रहा था, अकबर के समय से तब तक मालवा की आमदनी ६५ प्रतिशत से भी अधिक बढ गई थी। खानजहॉ लोदी के विद्रोह के बाद मालवा मे कोई बड़ा विद्रोह नही हुआ, जिससे कि प्रान्त की शान्ति भग हो। सन् १६३०-३१ ई० के दुर्भिक्ष के बाद इस प्रकार की किसी भी दुर्घटना ने मालवा की आर्थिक समृद्धि को धक्का नही पहुँचाया।[४७]

रतनसिह द्वारा स्थापित इस नए रतलाम राज्य के आसपास मालवा मे और भी कई एक राजपूत राज्य थे। उत्तर मे रतलाम की सीमा से लगा हुआ देवलिया का राज्य था, जहॉ रावत हरीसिह शासन करता था।[४८] देवलिया से पश्चिम मे बॉसवाड़ा का गुहिल राज्य था, रावल समरसी इस समय वहॉ का शासक था। ये दोनो ही राज्य मेवाड के साथ निरन्तर होने वाली कशमकश मे ही लगे हुये थे। बासवाडा और रतलाम की सीमा पर रामावत राठौड़ अपना आधिपत्य स्थापित करनेका बहुत कुछ प्रयत्न कर रहे थे। जोधपुरके सस्थापक राव जोधा के पुत्र वरसिह के छोटे बेटे तेजसिह के इन वशजो ने अन्त मे वर्तमान कुशलगढ ठिकाने की स्थापना की। किन्तु इस समय तक उनको विशेष सफलता नही प्राप्त हो सकी थी।[४९]

---

[४७] वारिस०, २, प० ९६ अ; मा० उ०, २, पृ० ६९३-६९४; मोरलेण्ड कृत 'फ़ाम अकबर टू औरगजेब', पृ० २६३, ३२३।

[४८] नैणसी०, १, पृ० १९३।

[४९] उक्त तेजसिह के प्रपौत्र रामसिह के वशज ही रामावत राठौड़ कहलाए। कुशलगढ़ घराने के जो विवरण गेजेटियरो तथा बॉसवाड़ा राज्य के इतिहास

रतलाम से दक्षिण-पश्चिम मे झाबुआ का राठौड राज्य था। ख्यातो के अनुसार इस राज्य के संस्थापक केशवदास का पौत्र महासिह इस समय झाबुआ मे शासन कर रहा था। केशवदास को प्राप्त सारे परगने पहिले ही ज़ब्त हो चुके थे। महासिह को सन् १६४९ ई० के बाद ही झाबुआ आदि कुछ परगने पुन प्राप्त होने का उल्लेख मिलता है।[५०]

तीतरोद, कोठडी-पड़ावा, आदि, रतनसिह के उत्तरी परगनो से लगा हुआ गगधार का झाला राज्य था। कोठडी-पड़ावा सरकार के अन्तर्गत यह परगना जहाँगीर के शासन काल मे ही नरहरदास झाला को प्राप्त हुआ होगा। सन् १६३० ई० मे बीड मे खानजहाँ

में अब तक प्रकाशित हुए है, वे इतने असम्बद्ध और परस्पर विरोधी है कि उनके ही आधार पर किसी भी बात को ऐतिहासिक सत्य मानना सम्भव नहीं। प्रधानतया ख्यातो के ही आधार पर दिए गए इन विवरणों में कई अनैतिहासिक बातें भर दी गई है। उनमें दिए गये सन्-सवतो की भी ठीक-ठीक जॉच की जाना आवश्यक है।

कुशलगढ घराने को रतलाम राज्य की ओर से खेड़ा की जागीर दी गई थी। सन् १६५६ ई० में रतनसिह को रतलाम परगना मिलने के बाद ही रामावतो को खेड़ा की यह जागीर दी गई होगी। पृथ्वीराज राठौड़ द्वारा दी गई किसी भी जागीर को निभाना रतनसिह या उसके उत्तराधिकारियो के लिए अनिवार्य नहीं था, अतएव सम्भव नही जान पड़ता है।

कुशलगढ के ठाकुर को रतलाम राज्य की ओर से खेड़ा की जागीर कब दी गई, इस प्रश्न की विवेचना रामसिह राठौड़ के शासन-विवरण के अन्तर्गत आगे की गई है।

[५०] गुरूजी०। झाबुआ स्टेट गज़ेटियर (पृ० ३) के अनुसार झाबुआ आदि परगने महासिह को सन् १६३४ ई० में प्राप्त हुए, एव सन् १६४८ ई० में उसने झाबुआ को अपनी राजधानी बनाया।

लोदी का सामना करते समय नरहरदास वीरतापूर्वक लडता हुआ मारा गया। तब नरहरदास के पुत्र रावत दयालदास झाला को शाही मनसब और गगधार का परगना मिला। दयालदास रतनसिंह के साथ ही कई एक चढाइयो और युद्धों में भाग ले चुका था। सन् १६५६ ई० में दयालदास का मनसब नौ सदी जात-पाँच सौ सवार का था। दयालदास के साथ ही उसका छोटा भाई राघोदास भी शाही मनसबदार था।[५१]

इस प्रकार मालवा मे आकर रतनसिंह ने स्वय को अपने ही भाई-बन्धों, सगे-सम्बन्धियो तथा पुराने परिचित साथियो के बीच पाया।

४. बीजापुर पर चढ़ाई और वहाँ से लौटना; १६५६-५७ ई०

मई, १६५६ ई० के लगभग रतनसिह जालोर छोड़ कर मालवा चला आया, और वहाँ अपने नए वतन रतलाम परगने और मालवा मे प्राप्त अन्य नई जागीर पर उसने अपना अधिकार स्थापित कर वहाँ का शासन-प्रबन्ध संगठित करने मे लग गया। रतनसिह स्वय जालोर छोड कर चला आया था, किन्तु रतलाम मे पूरा-पूरा प्रबन्ध न हो जावे वहाँ तक उसने अपने छोटे-छोटे बाल-बच्चो, स्त्रियो तथा अन्य कुटुम्बियो को जालोर मे ही रहने दिया। रतनसिह के साथ

---

[५१] आईन०, २, पृ० २०६; नैणसी०, २, पृ० ४७२-३; पाद०, १, पृ० ३२३-४; १ (खण्ड २), पृ० ३२३, ३२५; २, पृ० ७४२; वारिस०, २, प० १२६ ब।

वर्तमान झालावाड़ राज्य के आधीन इसी गंगधार परगने के अन्तर्गत कूँडला ठिकाने पर आज भी दयालदास झाला के वशजो का अधिकार है।

उसके नवयुवा उत्तराधिकारी रामसिह एव द्वितीय पुत्र रायसिह भी रतलाम चले आए थे। रतनसिह का छोटा भाई फतेहसिह, एवं उसके काका राजसिह के तीनों पुत्र भी रतनसिह के साथ ही थे। सांचोरा चौहान वीर शार्दूल के पुत्र, अमरदास और भगवानदास, तथा उन्ही के अन्य सांचोरा भाई-भतीजे भी रतनसिह के साथ रतलाम चले आए। रतनसिह के राजपुरोहित, राजव्यास, वीरवर ओझा एव चारण-बारहठों ने रतनसिह के साथ ही रतलाम आना उचित समझा।[५२] शासन-सगठन के इस कार्य में रतनसिह आगामी ७-८ माह तक उलझा रहा। यह कार्य वह पूरा भी नही कर पाया था कि सन् १६५६ ई० के दिसम्बर माह मे उसे अपनी सेना लेकर दक्षिण जाने का हुक्म मिला।

गोलकुण्डा का भूतपूर्व वजीर, मीर जुमला, इस समय दिल्ली मे शाहजहाँ का प्रधान मत्री और दक्षिणी भारत के मामलो मे उसका एकमात्र सलाहकार था। दक्षिणी भारत की राजनैतिक तथा सामरिक परिस्थिति से पूर्णतया परिचित यह व्यक्ति, दक्षिण मे औरगजेब की आक्रमणपूर्ण नीति का पक्षपाती था। ऐसे समय लगभग तीस वर्ष के शान्ति एव समृद्धिपूर्ण शासन के बाद नवम्बर ४, १६५६ ई० को बीजापुर के शासक मुहम्मद आदिल शाह की मृत्यु हो गई और उसका एकमात्र अठारह-वर्षीय पुत्र अली आदिलशाह बीजापुर के सिहासन पर बैठा। इस अवसर से लाभ उठाकर मुगल सत्ता बढ़ाने के उद्‌देश्य से नवम्बर २६, १६५६ ई० के दिन शाहजहाँ ने औरगजेब को आज्ञा दी कि वह बीजापुर पर चढाई कर वहाँ के शासन-सम्बन्धी मामले को ठीक तरह तय कर दे। औरगजेब इस समय दक्षिणी सूबो का

---

[५२] गुरूजी०; रासो०, पृ० १०२-३।

सूबेदार था। शाहजहाँ ने उसकी सहायता के लिए मीर जुमला एव कई एक सेनापतियो को एक बड़ी सेना लेकर दक्षिण भेजा। रतनसिह राठौड़ का नाम भी इस सेना के साथ जाने वाले सेनानायको मे लिखा गया, परन्तु अन्य कई सेनानायको के समान वह भी इस समय शाही दरबार मे उपस्थित न था। अतएव उसके पास रतलाम हुक्म पहुँचा कि वह अपने सैनिकों को लेकर दक्षिण के लिए रवाना हो।[५३]

बहुत कुछ शाही सेना और कई एक सेनानायकों को लेकर मीर जुमला जनवरी १८, १६५७ ई० को औरगाबाद जा पहुँचा। किन्तु शाहजहाँ का हुक्म मिलने तथा लगातार ताकीद किए जाने पर भी कई एक शाही सेनानायक अब तक अपनी जागीरो मे ही ठहरे हुए थे और फरवरी १९, १६५७ ई० से पहिले उनका औरगाबाद पहुँचना सम्भव नही था, अतएव औरगजेब इन पिछड़े हुए शाही सेनानायको की राह न देखकर जनवरी १८ को ही औरगाबाद से चल पड़ा और मार्च २ को उसने बीदर के किले को जा घेरा।[५४] रतनसिह औरगजेब की सेना मे कब सम्मिलित हुआ था यह कहा नही जा सकता है, परन्तु बीदर के घेरे के समय उसका शाही सेना मे आ सम्मिलित होना निश्चित ही है।

सत्ताईस दिन के घेरे के बाद मार्च २९ को बीदर किले के सर-

---

[५३] वारिस०, २, प० ११८ ब; आदाब०, १, प० ६० ब, ९० ब, ९२ ब, ११८ अ; औरग०, १-२, पृ० २१७, २३४-२३७।

कम्बू० (३, पृ० २३६) में इस शाही फरमान की तारीख़ १८ रबी-उल्-अव्वल (दिसम्बर २५, १६५६ ई०) दी है, जो ठीक नहीं।

[५४] आदाब०, १, प० ६२ अ, ९२ अ, १०९ ब, ११० अ, ११८ ब; २, प० १४५ ब, १४६ अ, १९६ ब; औरग०, १-२, पृ० २३८।

क्षको ने आत्मसमर्पण कर दिया। किन्तु इन्ही दिनों आदिल शाह के सेनानायक गुलबर्गा के पास ही एक बहुत बड़ी बीजापुरी सेना एकत्रित और सुसज्जित कर रहे थे। अप्रेल, १६५७ ई० के प्रारम्भिक दिनो मे एक बार तो इसी सेना का कोई दो हजार सवारों का एक दल बीदर से छ मील की दूरी पर आ पहुँचा और वहाँ से शाही बजारो के बैल हाँक ले गया। इस घटना की सूचना मिलते ही इन सवारो के दल के विरुद्ध मुअज्जम खाँ, दिलेर खाँ, रतनसिह, आदि सेनानायक भेजे गए। उन्होंने बीजापुरी सवारों को मार भगाया और वे बैलो को छुड़ा लाए[५५]।

किन्तु बीजापुरी सेना पर हमला कर उसे भी तितर-बितर कर देना आवश्यक था, एव औरंगजेब ने महाबत खाँ के सेनापतित्व में कई एक अनुभवी सेनानायको और कोई १५,००० अच्छे सवारो का एक दल बीदर से रवाना किया कि वे कल्याणी से लेकर गुलबर्गा तक का सारा बीजापुरी प्रदेश पूर्णतया उजाड कर बरबाद कर दे। रतनसिह और उसके सैनिक भी इस सेना के साथ भेजे गए। बीदर से कल्याणी होती हुई यह सेना दक्षिण की ओर बढी। राह मे अप्रेल १२, १६५७ ई० को बीजापुर के सुप्रसिद्ध सेनापति खान मुहम्मद, अफजल खाँ, दिलेर खाँ के पुत्र, आदि के नेतृत्व मे कोई २०,००० बीजापुरी सैनिको के दल से इस सेना की मुठभेड हो गई। अपने हरोल को लेकर महाबत खाँ बीजापुरी सेना की ओर बढा। बीजापुरी सैनिक मुगल सेना पर दूर-दूर से ही तीर चलाते रहे और प्रधानतया मुगल सेना के दाहिने भाग पर आक्रमण किया। अपने इन साथियों की सहायता करने के उद्देश्य से रतनसिह राठौड़ और भोजराज

---

[५५] कम्बू०, ३, पृ० २५२; औरंग०, १-२, पृ० २४२-३।

महाबत खाँ की आज्ञा लिए बिना ही अपने सैनिकों को लेकर बीजापुरी सेना के मध्य भाग पर टूट पड़े और वीरतापूर्वक लड़ने लगे। किन्तु इस हमले से भी विशेष लाभ नहीं हुआ। ऐसे युद्धों मे अतीव कुशल बीजापुरी सैनिक रतनसिह के इस हमले से चतुरतापूर्वक अलग होकर जिधर विशेष युद्ध हो रहा था, मुगल सेना के उसी दाहिने भाग की ओर जा पहुँचे। महाबत खाँ चतुर सेनानी था, सारी परिस्थिति को समझ कर अन्त मे अपने सैनिकों को लेकर उसने स्वय बीजापुरी सेना पर बड़े जोरो से हमला किया। बीजापुरी सेना इस हमले का सामना न कर सकी, वह भाग खड़ी हुई। इस भागती हुई सेना का महाबत खाँ ने कोई चार मील तक पीछा किया।[५६]

किन्तु महाबत खाँ ने अब अधिक आगे बढना ठीक न समझा; अपनी सारी सेना को लेकर अप्रेल १४ के दिन वह लौट कर भाल्की चला आया। कल्याणी और बीदर के बीच कोई विशेष बाधा नही रह गई थी, एव अप्रेल २७ को औरगजेब सेना लेकर कल्याणी की ओर बढा और एक सप्ताह मे उस किले को जा घेरा। यह घेरा महीनो चलता रहा, बीजापुरी सेना ने घेरा डालने वाली मुगल सेना की कठिनाइयाँ बढाने का भरसक प्रयत्न किया, दो घमासान लडाइयाँ भी हुईं, परन्तु इनमे रतनसिह के भाग लेने का कोई उल्लेख नही मिलता है। अन्त में अगस्त १, १६५७ ई० को कल्याणी के किलेदार ने आत्मसमर्पण कर दिया और यो कोई बारह सप्ताह के घेरे के बाद यह किला औरगजेब के अधिकार में आया।[५७] बीजापुर के इन

[५६]कम्बू०, ३, पृ० २५२-३; औरंग०, १-२, पृ० २४३-४।

[५७]कम्बू०, ३, पृ० २५४-२६१; आदाब०, १, प० ११३ अ, १३९ अ; २, प० १४९ ब, १५६ ब; औरंग० १-२, पृ० २४४-२५०।

किलो की जीत का विवरण जब शाहजहाँ को ज्ञात हुआ तो उसने अपने विजयी सेनापतियो को इनाम दिए। आदिलखानियो के साथ इन युद्धो मे अच्छा परिश्रम करने के उपलक्ष मे रतनसिह के मनसब मे चार सौ सवार बढा कर उसका मनसब दो हजारी जात-दो हजार सवारो का कर दिया।[५८]

परन्तु कल्याणी का घेरा समाप्त भी नही हुआ था कि औरगजेब को शाहजहाँ का हुक्म मिला कि वह आदिलशाह के साथ सधि कर ले। औरगजेब ने कल्याणी का किला लिए बिना सन्धि की बातचीत करना उचित नही समझा, किन्तु एक बार कल्याणी का किला हस्तगत हो जाने के बाद उसके लिए दूसरा कोई चारा नही रह गया था। बीदर और कल्याणी किले जीतने के बाद बीजापुर पर अधिकार कर लेना कुछ ही सप्ताहों का काम था, परन्तु उसी समय औरगजेब को विवश होकर सन्धि की बात प्रारम्भ करनी पडी। इसी समय महाबत खाँ, राव शत्रुसाल हाडा एव अन्य शाही सेनानायको के पास दिल्ली से शाही फरमान पहुँचे कि बीजापुर की चढाई मे औरगजेब की सहायतार्थ भेजी गई सारी सेना को साथ लेकर वे शाही दरबार मे लौट आवे। इन फ़रमानो के पहुँचते ही महाबत ख़ाँ, राव शत्रुसाल, आदि सेनानायक यह सेना लेकर सितम्बर, १६५७ ई० के तीसरे सप्ताह के लगभग औरगजेब की आज्ञा लिए बिना ही दक्षिण से उत्तरी भारत के लिए रवाना हो गए। शाही आज्ञानुसार रतनसिह को भी अपने सैनिक लेकर उनके साथ दक्षिण से चल देना पड़ा। महाबत ख़ाँ और राव शत्रुसाल दिसम्बर २०, १६५७ ई० को आगरा पहुँच कर शाही दरबार मे उपस्थित हुए। रतनसिह राठौड़

---

[५८] कम्बू०, ३, पृ० २६२; मा० उ०, ३, पृ० ४४७।

भी उन्हीं के साथ आगरा पहुच कर शाही दरबार मे हाज़िर हुआ ।[५९]

५. धरमत (फ़तेहाबाद) का युद्ध एवं रतनसिंह की मृत्यु (अप्रेल १५, १६५८ ई०); उसकी रानियों का सती होना

इधर कुछ महीनो से मुगल साम्राज्य के भाग्याकाश मे विद्रोह और गृह-कलह के घने बादल घिरने लगे थे। बूढे मुगल सम्राट् शाहजहाँ का स्वास्थ्य सन् १६५७ ई० के गरमी के दिनो से ही गिरने लगा था, सितम्बर ६, १६५७ ई० को वह दिल्ली मे सख्त बीमार पड गया और एक सप्ताह तक दारा और कुछ उच्च पदाधिकारियो के अतिरिक्त किसी ने भी शाहजहाँ को नही देखा, एव शाहजहाॅ की मृत्यु की झूठी खबर सब दूर फैल गई, और सुदूर प्रान्तो तक यह समाचार अधिकाधिक विकृत रूप मे पहुॅचा। इधर शाहजहाॅ की बीमारी जब घटी और उसका स्वास्थ्य कुछ सुधरने लगा तब उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र दारा को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर शासन-सम्बन्धी अपने सारे अधिकार उसे सौप दिए।[६०]

दारा अपनी सत्ता को सुदृढ एव सुसगठित बनाने के लिए बहुत ही उत्सुक एवं प्रयत्नशील हुआ, अतएव उसने दरबार मे रहने वाले अन्य शाहजादो के वकीलो एव दूसरे खबर-नवीसो पर कड़ी

---

[५९]कम्बू०, ३, पृ० २६२-३, २६६, २७०; आदाब०, २, प० १४६ ब, १५७ ब; आ० ना०, पृ० २६; ज़फर०, पृ० १७-१८; औरंग०, १-२, पृ० २५०-२५२, २८१-२८२, ३१८-३१६; रासो०, पृ० १०१-२।

[६०]आ० ना०, पृ० ८०-८१; कम्बू०, ३, पृ० २६४-२६५, २७५; औरंग०, १-२, पृ० २७७-२८१।

देख-रेख और बाहर जाने वाले समाचारों पर पूरी पाबन्दियाँ लगा दी। किन्तु उन सब प्रयत्नों का परिणाम पूर्णतया विपरीत ही हुआ। शाही दरबार से आने वाले सच्चे समाचारो पर भी अब कोई विश्वास नही करता था, सुदूर प्रान्तो मे कोई भी यह मानने को तैयार न था कि बीमार शाहजहाँ पुन: स्वस्थ हो गया। सच्चे विश्वस्त समाचारों के अभाव मे अनहोनी झूठी-झूठी खबरे और भी अधिक फैलने लगी। शाहजहाँ को सचमुच मरा जान कर मुगल साम्राज्य के राज्य-सिहासन के लिए निकट भविष्य मे होने वाले गृह-युद्ध की अनिवार्य सम्भावना के कारण सर्वत्र भय, आशका और अस्थिरता की भावना उत्पन्न हो गई, एवं सारे साम्राज्य मे अशान्ति और अराजकता उभडने लगी।[११]

सूदूर प्रान्तों मे अन्य शाहजादों ने विद्रोह का झंडा खडा किया, और मुगल सिहासन के लिए युद्ध की पूरी-पूरी तैयारियाँ करने लगे। शाहजादा मुराद इस समय गुजरात मे था, नवम्बर २०, १६५७ ई० को वह अहमदाबाद मे शाही तख्त पर बैठा और स्वयं को सम्राट् घोषित किया। कुछ ही सप्ताह बाद बगाल मे शाहजादा शुजा भी सिंहासनारूढ़ हुआ और अपनी सुसज्जित सेना लेकर बिहार की ओर बढा। उधर सुदूर दक्षिण में औरंगजेब भी कुछ समय से इस अवश्यम्भावी गृह-युद्ध की तैयारी कर रहा था। दारा ने ये सारी बाते शाहजहाँ को व्यक्त की, और शाहजहाँ ने विवश होकर अपने छोटे शाहजादो का सामना करने के लिए शाही सेनाएँ भेजने की आज्ञा दी। दारा ने शायस्ता खाँ को मालवा की सूबेदारी से अलग कर

---

[११] ईश्वर०, प० ६ अ; आ० ना०, पृ० २८; कम्बू०, ३, पृ० २७५; रासो०, पृ० ८७; औरंग०, १-२, पृ० २८७-८।

उसे दिल्ली बुला भेजा और जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिह को मालवा का सूबेदार नियुक्त किया। एक बडी सेना लेकर जसवन्तसिह दिसम्बर १८, १६५७ ई० को आगरा से मालवा के लिये रवाना हुआ। आठ दिन बाद शाहजादा मुराद के स्थान पर कासिमखाँ गुजरात का सुबेदार नियुक्त किया गया, और दिसम्बर २६ को कासिम खाँ भी एक बडी सेना लेकर मालवा की राह गुजरात के लिए आगरा से चल पडा।[६२]

रतनसिह दिसम्बर २० को बीजापुर की चढाई से वापस आगरा लौटा तो उसे राह मे मालवा के लिए रवाना होती हुई शाही सेना मिली। रतनसिह एक अनुभवी वीर योद्धा था, वह महाराजा जसवन्त-सिह का चचेरा भाई होता था, उसे मालवा मे जागीर भी थी, एव जसवन्तसिह ने इस बात का विशेष आग्रह किया कि रतनसिह और उसके सैनिक भी मालवा जाने वाली शाही सेना मे नियुक्त किए जावे। शाही दरबार मे इस प्रस्ताव के स्वीकृत होने मे कोई देरी न लगी। दिसम्बर २०, १६५७ ई० को जब रतनसिह आगरा पहुँच कर शाही दरबार मे उपस्थित हुआ, तब उसे तत्काल ही जसवन्तसिह की सेना मे सम्मिलित होने के लिए बिदा कर दिया गया। आगरा से रवाना होते समय उसके मनसब के उपयुक्त कीमती खिलअत और अन्य पुरस्कार दिए गए। अन्य शाही राजपूत मनसबदारों के साथ ही रतनसिंह भी जसवन्तसिह की सेना मे नियुक्त किया

---

[६२] ईश्वर०, प० १०अ, ११ ब, १८ अ-ब; आ० ना०, पृ०२९, ३२-३३; कम्बू०, ३, पृ० २७६, २८४-५; औरंग०, १-२, पृ० २८३-२८५, २८९।

गया, एव रतनसिंह अपने सैनिको को लेकर जल्द ही आगरा से चल पडा ।[६३]

जसवन्तसिह के साथ भेजी गई शाही सेना धीरे-धीरे मालवा की ओर बढ रही थी, किन्तु वह स्वय कोई दो तीन हजार सवारो को साथ लेकर जनवरी २७, १६५८ ई० को तेजी से सीधा उज्जैन जा पहुँचा ।[६४] रतनसिह को स्पष्टरूपेण यह देख पड रहा था कि शीघ्र ही भयकर गृह-युद्ध प्रारम्भ होगा, और कुछ काल के लिये ही क्यो न हो, असीम अराजकता सर्वत्र फैलेगी । इस मारकाट मे से कौन जीवित बच निकलेगा और इस गृह-कलह का परिणाम क्या होगा, यह कौन जानता था ? एव शाही सेना मे सम्मिलित होने से पहिले वह आगरा से सीधा रतलाम गया । रतनसिह ने अपनी जागीर एव राज्य का शासन-प्रबन्ध और तत्सम्बन्धी सारा कार्य अपने ज्येष्ठ पुत्र रामसिह को, जिसकी वय इस समय १९ वर्ष से अधिक की ही थी, सौप दिया । रासो-कार के अनुसार रतनसिह ने शुभ मुहूर्त देख कर रामसिह का राज्य-तिलक भी कर दिया । रतलाम के शासन-प्रबन्ध की इस प्रकार ठीक व्यवस्था कर रतनसिह पूर्णतया निश्चिन्त हो गया । शुभ मुहूर्त पर रतलाम से उज्जैन के लिए रवाना होने का उसने निश्चय किया । रतनसिंह चाहता था कि वीर साचोरा चौहान शार्दूल के पुत्र, उसके पुराने साथी, अमरदास और भगवानदास, रतलाम रह

---

[६३] रासो०, पृ० १०१ ।

रासो० (पृ० १०१) के आधार पर रतन० (पृ० ३७) में लिखा है कि आगरा से रवाना होते समय जिस प्रकार के ख़िलअ़त और इनाम जसवन्तसिंह को दिए गए वैसे ही ख़िलअ़त और इनाम रतनसिंह को भी मिले । परन्तु यह किसी भी प्रकार सम्भव नही जान पड़ता है; कवि की अत्युक्ति मात्र है ।

[६४] आ० ना०, पृ० ३३; ख्यात०, १, पृ० २०६; औरग०, १-२, पृ० ३१० ।

कर ही रामसिह की सेवा तथा सहायता करे। किन्तु दोनों चौहान वीरो ने समर-यात्रा पर जाते हुए अपने सुप्रसिद्ध नेता एव स्वामी का साथ छोडना उचित नही समझा, वे दोनो रतनसिह के साथ हो गए। रतनसिह का दूसरा पुत्र रायसिह भी, जिसकी वय इस समय १६-१७ वर्ष से अधिक की न थी, हठ करके रतनसिह के साथ ही उज्जैन के लिए रवाना हुआ।[६५]

उज्जैन पहुँच कर जसवन्तसिह शाहजादो की गतिविधि का पता लगाने का कुछ-कुछ प्रयत्न करता रहा। ओरगजेव स्वय तो फरवरी ५, १६५८ ई० तक औरगाबाद से रवाना नही हुआ, किन्तु उसने जनवरी २५ को ही अपने ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद सुल्तान को सेना लेकर बुरहानपुर भेजा। मुहम्मद सुलतान ने बुरहानपुर जाकर ऐसा प्रबन्ध किया कि औरगजेब एव उसकी सेना सम्बन्धी कोई भी समाचार नर्मदा पार न पहुँचने पावे। फरवरी १८ को औरगजेब स्वय बुरहानपुर जा पहुँचा और एक माह तक वही टिका रहा।[६६]

---

[६५] रासो०, पृ० १०२, १०४, १०७-११२, ११३।

रासो० (पृ० ११०) के अनुसार यह राज्य-तिलक बसन्त के शुभ मुहूर्त पर किया गया है। यहाँ 'बसन्त' का क्या अर्थ लिया जाना चाहिए। यह एक विचारणीय बात है। बसन्त पचमी, जनवरी २८, १६५८ ई० के दिन थी। उस दिन यह हो सकना सम्भव नहीं जान पड़ता है। यहाँ 'बसन्त' से बसन्त ऋतु का ही अर्थ लेना चाहिए।

यदि यह राज्य-तिलक किया गया हो तो वह रतनसिह का अपना निजी प्रबन्ध ही था; उसका मुगल साम्राज्य या मुगल सूबेदार से कोई भी सम्बन्ध नहीं हो सकता था।

[६६] आ० ना०, पृ० ४२-४६; जफर०, पृ० १७-२२; औरंग०, १-२, पृ० ३४४-३४५।

उधर औरगजेब ने मुराद को सलाह दी थी कि वह गुजरात से मालवा की ओर बढे । फरवरी २५ को अहमदाबाद से मुराद ससैन्य मोडासा की राह मालवा की ओर रवाना हुआ । गुजरात की सरहद पार कर मार्च १४ को मुराद मालवा मे मन्दसौर शहर तक जा पहुँचा । मुराद के मालवा की ओर बढने की सूचना पाकर जसवन्तसिह उज्जैन से सेना लेकर उत्तर मे बॉसवाडा की राह की ओर बढा और खाचरोद से ६ मील की दूरी पर जाकर मुराद की राह रोकने के लिए तैयारी करने लगा । मुराद जब जसवन्तसिह से कोई ३६ मील दूर था, उसे ज्ञात हुआ कि जसवन्तसिह की सेना अधिक शक्तिशाली थी, एव उसने जसवन्तसिह का सामना करना उचित न समझा और वह जल्द ही वापस गुजरात की ओर लौट पडा, और औरगजेब के उत्तर की ओर बढने के समाचार की बाट देखता रहा । अप्रेल ४ को मुराद दोहद मे टिका हुआ था । जसवन्तसिह को औरगजेब के बारे मे अब तक कोई भी खबर न मिली थी । मुराद के पीछे हटने का ठीक-ठीक कारण भी जसवन्तसिह की समझ मे नही आ पाया । अप्रेल ३ तक वह खाचरोद ही ठहरा रहा और तब वहाँ से रवाना हो कर अप्रेल ५ के लगभग वह वापस उज्जैन पहुँचा । इसी समय रतनसिह ससैन्य रतलाम से रवाना होकर उज्जैन मे जसवन्त-सिह की सेना मे आ मिला । जसवन्तसिह ने पूरे सम्मान के साथ रतनसिंह का स्वागत किया ।[६७]

मुराद भी दोहद से दक्षिण-पूर्व की ओर बढा । वह चाहता था कि उत्तर की ओर बढती हुई औरगजेब की सेना की राह से वह बहुत

---

[६७] आ० ना०, पृ० ५६-५७; जफर०, पृ० २२-३; फ़ैयाज़०, पृ० ५८५, ५८६-५८६; ईश्वर०, प० १७ अ, १६ अ, ख्यात०, १, पृ० २०६; रासो०, पृ० १२०; वचनिका०, पृ० ८; औरंग०, १-२, पृ० ३१०-३११, ३४८ ।

अधिक दूरी पर न पड़ जावे। दोहद से झाबुआ की घाटी पार करता हुआ वह मण्डलपुर पहुँचा।[९८] यही मुराद को अप्रेल १३ के दिन औरगजेब का दूत मिला। औरगज़ेब मार्च २० को बुरहानपुर से रवाना होकर १९ मील उत्तर-पूर्व मे माण्डवा नामक स्थान पर पहुँचा। वहाँ से उत्तरी भारत जाने वाली दो विभिन्न राहे फटती थी। एक राह तो उत्तर-पूर्व की ओर मुड कर हण्डिया के पास नर्मदा पार करती थी। किन्तु औरगजेब ने इसे छोड़ कर उत्तर-पश्चिमी राह ली। सात पडाव के बाद वह अकबरपुर के पास नर्मदा के तीर पर पहुँचा। अप्रेल ३ को औरगजेब ने बिना किसी विशेष विरोध का सामना किए ही नर्मदा को पारकर मालवा मे प्रवेश किया। वहाँ से माण्डू के किले के पास वाली घाटी की राह वह मालवा के पठार पर चढा और धार होता हुआ देपालपुर की ओर बढा। औरगज़ेब को अब ज्ञात हुआ कि मुराद ससैन्य देपालपुर से अधिक दूर नही था, एव उसने मुराद को लाने के लिये दूत भेजा जो मण्डलपुर मे मुराद के पास पहुँचा था। अप्रैल १४ को देपालपुर के तालाब के पास ही औरगजेब और मुराद की सेनाएँ सम्मिलित हो गईं और तत्काल ही पूर्ण उत्साह के साथ दोनो उज्जैन की ओर बढी।[९९]

---

[९८] ईश्वर०, प० १७ अ।

नक़्शे में मण्डलपुर नामक कोई गाँव नहीं मिलता है। इससे मिलते-जुलते नाम के दो स्थान 'बरमण्डल' और 'मुण्डला' अवश्य नक़्शे में पाए जाते हैं। ये स्थान देपालपुर से क्रमशः २९ मील और ७ मील पश्चिम में हैं। सर यदुनाथ सरकार के मतानुसार मण्डलपुर बहुत करके 'बरमण्डल' ही होगा। औरग०, १-२, पृ० ३११।

[९९] आ० ना०, पृ०, ५०, ५२, ५५-६; कम्बू०, ३, पृ० २८५-६; ईश्वर०, प० १७ ब; जफर०, पृ० २६-२७; औरंग०, १-२, पृ० ३४५-६, ३११-१२।

औरगज़ेब मालवा की ओर बढ रहा था। परन्तु जब तक वह मालवा मे न आ घुसा, जसवन्तसिह को उसकी सेना सम्बन्धी कोई भी समाचार नही प्राप्त हो पाए। खाचरोद से लौट कर अप्रैल ५ के लगभग जब वह उज्जैन पहुँचा, तब तक औरगजेब की सेना की गति-विधि से वह पूरी तरह अनभिज्ञ था। किन्तु एकाध दिन के बाद तो लगातार समाचारो का ताँता बँध गया। अप्रेल ६ या ७ को माण्डू के किलेदार का पत्र जसवन्तसिह के पास पहुँचा, जिसमे उसने औरगजेब के नर्मदा पार कर माण्डू की घाटी की राह आगे बढने के समाचार लिखे थे। औरगजेब की आगे बढने वाली सेना के डर के मारे धार से भाग खडे होने वाले सैनिकों ने भी उज्जैन पहुँच कर इन्ही समाचारों की पुष्टि की।

इसी समय औरगजेब का ब्राह्मण दूत, कविराय, भी उज्जैन आ पहुँचा, उसने जसवन्तसिह को औरगजेब का सन्देश कह सुनाया। औरगजेब ने जसवन्तसिह को शान्तिपूर्वक जोधपुर लौट जाने की सलाह दी थी और यह आग्रह किया था कि वह उसकी राह न रोके। औरगजेब ने यह भी कहलाया था कि वह केवल शाहजहाँ से मिलने जा रहा था, एव युद्ध का कोई प्रश्न ही नही उठता था। परन्तु जसवन्तसिह ने औरंगजेब की सलाह नही मानी और वापस कहला भेजा—"मुझे शाहजहाँ की आज्ञाओ का पालन करना चाहिए। इस समय वापस लौट जाना मेरे लिए अपमानजनक एवं कलक-कारक होगा।" जसवन्तसिहने इस प्रकार औरगजेब के प्रस्ताव को ठुकरा दिया।[७०]

---

[७०] आ० ना०, पृ० ५६-५८, ६०; ज़फ़र०, पृ० २७; ईश्वर०, प० १६ अ;

अन्त में अप्रेल १२ को जसवन्तसिह सारी शाही सेना लेकर उत्तर की ओर बढते हुए औरगजेब की राह रोकने और आवश्यकता पडने पर उससे युद्ध भी करने को तत्पर हो कर उज्जैन से निकला। गुजरात का नया सूबेदार, कासिम खाँ भी अपनी शाही सेना लेकर जसवन्तसिह के साथ चला। जसवन्तसिह की सेना मे अनेकानेक उच्च पदाधिकारी राजपूत शाही मनसवदार थे, जो अपनी-अपनी सेना लेकर जसवतसिह के साथ उज्जैन से चले। कोटा का महाराव मुकुन्दसिह हाडा, शाहपुरा का सुजानसिह सिसोदिया, रणथभोर का अर्जुन गौड, राजा रायसिह सिसोदिया और राजा देवीसिह बुन्देला विशेषरूपेण उल्लेखनीय थे। रतनसिह, उसके वीर साथी और सैनिक भी जसवन्तसिह की सेना के साथ बढे। जसवन्तसिह शाही सेना के साथ दक्षिण-पश्चिमी दिशा मे चला और उज्जैन से कोई १४ मील दूर गम्भीर नदी के पूर्वी तट पर स्थित धरमत गाँव के सामने ही जाकर उसने अपना पडाव डाला।[७१] यही अप्रेल १४ को जसवन्त-

---

आ० ना० के अनुसार कविराय केवल औरंगजेब का ही सन्देश लेकर जसवन्तसिह से उज्जैन में मिला था। परन्तु वचनिका० (पृ० १३-१८), रासो० (पृ० १२१-२) एवं ख्यात० (१, पृ० २०६) के अनुसार उक्त सन्देश औरगजेब और मुराद दोनो ने भिजवाए थे। वचनिका० और ख्यात० के अनुसार तो यह सन्देश युद्ध से एक ही रात पहिले धरमत के युद्धक्षेत्र में भेजा गया था। इन सब कथनो में आ० ना० का कथन ही अधिक ठीक और विश्वसनीय है।

[७१] धरमत (फतेहाबाद) २५° उत्तर, ७५° ४३′ पूर्व में स्थित है। यह गाँव देपालपुर से १२ मील उत्तर में, उज्जैन से १४ मील दक्षिण-पश्चिम में और फ़तेहाबाद-चन्द्रावतीगज रेलवे स्टेशन से कोई एक मील उत्तर में है।

ख्यात० (१, पृ २०६) में लिखा है—"उज्जैन से चार या पाँच कोस आगे गाँव चौर नारायण है; वहाँ महाराज (जसवन्तसिह) ने डेरा किया।

सिह ने सुना कि औरगजेब और मुराद की सेनाएँ सम्मिलित हो गईं, तथा यह सम्मिलित सेना धरमत से केवल एक ही पडाव की दूरी पर थी। उसी दिन सन्ध्या होते-होते तो शत्रु-सेनाएँ भी धरमत आ पहुँची और उन्होने भी गम्भीर नदी के पूर्वी तट पर धरमत के पास ही डेरा डाला। औरगजेब ने अगले दिन जसवन्तसिह के साथ युद्ध करने का निश्चय किया।[७२]

इस समय रतनसिह के साथ उसका दूसरा पुत्र रायसिह भी था। उसकी वय १६-१७ वर्ष से अधिक की न थी, किन्तु जब रतनसिह रतलाम से उज्जैन के लिए ससैन्य रवाना हुआ, वह हठ कर रतनसिह के साथ ही उज्जैन आया। रतनसिह ने बहुत प्रयत्न किया कि क्षिप्रा-स्नान के बाद रायसिह को रतलाम वापिस भेज दे, किन्तु रायसिह लौट कर नही गया, तथा बहुत कुछ कह-सुनने के बाद भी वह शाही सेना के साथ धरमत आया एव रतनसिह के अन्य सेनानायको के साथ

उस ही गाँव में शाहज़ादो (औरंगज़ेब और मुरादबख्श) का भी डेरा हुआ।" सम्भव है धरमत के पास ही चौर नारायणा नाम का दूसरा गाँव हो, जिससे जसवन्तसिंह का पड़ाव अधिक पास होने से उस गाँव के नाम का ख्यात० में उल्लेख किया गया। परन्तु इस गाँव का नाम नक़्शे में नही मिलता है।

[७२] आ० ना०, पृ० ५६-५७, ६०; कम्बू०, ३, पृ० २८६; ईश्वर०, प० १६; औरग०, १-२, पृ ३४६, ३४७।

धरमत के युद्ध का यह विवरण लिखने में रासो० एवं वचनिका० से ज्ञात महत्त्वपूर्ण घटनाओं तथा ऐतिहासिक तथ्यों का यथास्थान समावेश किया गया है। रासो० एवं वचनिका० के ऐतिहासिक महत्त्व आदि की विवेचना के लिए देखो "परिशिष्ट ३—धरमत (फतेहाबाद) के युद्ध के विवरण सम्बन्धी दो हिन्दी आधारग्रन्थ और उनका ऐतिहासिक महत्त्व"।

युद्ध मे भाग लेने को तत्पर हुआ ।[७३] रतनसिह का छोटा भाई फतेहसिह भी इस समय रतनसिह के साथ था। फतेहसिह शाही मनसबदार था और रतनसिह के साथ धरमत आने से पहिले बरसों वह महाबत खाँ के साथ दक्षिण मे शाही सेना के संग रह चुका था। इस बार फतेहसिह शाही सेना के साथ धरमत आया, और युद्ध में अपने वीर भ्राता रतनसिह के साथ बना रहा।[७४] रतनसिह के अन्य सेनानायक एव योद्धा साथियो मे प्रधानतया उल्लेखनीय थे— साचोरा वीर अमरदास और भगवानदास चौहान, बारहठ जसराज और ब्राह्मण परशुराम ओझा। अमरदास और भगवानदास, साचोरा वीर शार्दूल के पुत्र, और रतनसिह राठौड के पितामह दलपत के मामा साचोरा मेहकरण के प्रपौत्र थे।[७५] ये दोनो भाई रतनसिह के बहुत विश्वासपात्र थे, और इसी कारण रतलाम से रवाना होते समय

---

[७३] रासो०, पृ० ११२-११३, ११८-१२०; वचनिका०, पृ० २६।

[७४] गुरूजी०; ख्यात०, १, पृ० २०७।

[७५] अमरदास और भगवानदास, दोनो भाइयो में कौन बडा और कौन छोटा था, इस प्रश्न को लेकर प्राय: विवाद होता है (पचेड ठिकाने का इतिहास, पृ० ६४)। ये वाद-विवाद ईसा की १८वी शताब्दी के बाद ही प्रारम्भ हुए। इन भ्राताओ के समकालीन कवि कुम्भकर्ण कृत 'रतनरासो' के आधार पर इस प्रश्न का निश्चितरूपेण उत्तर दिया जा सकता है। रासो० में लिखा है —

"तिहि समय अमर भगवान वृंद,
अग्रज अनुज सादूल नन्द।" (पृ ७०),

और "तत सुभट अमर बट चहुवान,
तत अनुज उग्र भगवान ठाँन।" (पृ० ११७)।

इन वीरो की मृत्यु के कोई बीस ही वर्ष बाद लिखे गए काव्य के इन उद्धरणो से यह बात निर्विवादरूपेण साबित है कि अमरदास बड़ा और भगवानदास छोटा भाई था।

रतनसिह ने अपने पुत्र रामसिह की सहायतार्थ इन दोनो भाइयो को रतलाम ही छोडना चाहा था, किन्तु वे दोनो रतनसिह को छोड कर पीछे न रहे। इस युद्ध मे भी वे अन्त तक बराबर रतनसिह के ही साथ बने रहे। जसराज बारहठ, रोडिया खॉप का चारण, रतनसिह के दरबार का राजकवि एव उसका विश्वस्त सलाहकार था। परशु-राम ओझा, श्रीमाली ब्राह्मण होते भी एक वीर योद्धा था, युद्ध के समय रतनसिह का निजी झण्डा लेकर उसी की सेना के आगे नेतृत्व करता था। धरमत के युद्ध मे सम्मिलित होकर उसने वीरगति प्राप्त की। रतनसिंह के दरबार का राजकवि खडिया जगा भी इस समय सेना के साथ धरमत के युद्ध-क्षेत्र में आ पहुँचा था।[७६] इस युद्ध में रतनसिंह की निजी सेना कितनी थी, इसका ब्यौरा कही भी नही मिलता है।

अप्रेल १४ को जब शत्रु-सेनाओ ने आकर शाही सेना के सामने ही डेरा डाला, तब तो जसवन्तसिह पुन किंकर्तव्य-विमूढ होने लगा। आगरा से रवाना होते समय शाहजहॉ ने जसवन्तसिह को आज्ञा दी थी कि जहॉ तक हो सके शाहजादो को किसी भी प्रकार की हानि न पहुंचे, और जब दूसरा चारा रह ही न जावे तभी वह उनके साथ युद्ध करे।[७७] अतएव उसी दिन सन्ध्या समय जसवन्तसिह ने अपने सारे राजपूत सेनानियो को एकत्रित कर उनकी सलाह पूछी। शाहजादो के साथ युद्ध करने के पक्ष मे ही सब की राय हुई। रतनसिह ने जसवन्तसिह के सम्मुख यह प्रस्ताव भी रखा कि शाही सेना का

---

[७६] रासो०, पृ० १०३, १३२; वचनिका०, इण्ट्रोडक्शन, पृ० ३-४; गुरूजी०।

[७७] कम्बू०, ३, पृ २८४; मासूम०, प० ४६ ब; मनुची०, १, पृ० २५८; बरनियर०, पृ० ३७, ३८।

सेनापतित्व रतनसिंह को सौंप दे जिससे जसवन्तसिंह को इस युद्ध में भाग न लेना पड़े, किन्तु जसवन्तसिंह ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया।[७८] इसी समय आसकरण नींबावत ने प्रस्ताव किया कि वह ४,००० सवारों को लेकर आधी रात के समय शत्रु की सेना पर हमला करे और तोपचियों को मारकर शत्रु की सारी तोपें छीन ले, जिससे आगामी दिन युद्ध के समय दुश्मन को हराना कठिन न हो। किन्तु क्षत्रिय-सुलभ सरलता के साथ जसवन्तसिंह ने यह कह कर इन्कार कर दिया कि रात्रि के समय आक्रमण करना या ऐसी ही तदबीरों से लाभ उठाना राजपूतों की नीति से विरुद्ध एवं क्षत्रियों की वीरता को बट्टा लगाने वाला कार्य है।[७९]

उसी रात को रतनसिंह के डेरे पर राजपूतों का सहभोज हुआ, एवं उसके बाद रतनसिंह का दरबार जुड़ा, जिसमें उसने अपने सेना-नायकों, प्रधान सरदारों तथा अन्य वीर साथियों को युद्ध के लिए उत्साहित किया। राजपूत और चारण वीरों ने रतनसिंह के निश्चय को सराहा, तथा आगामी दिन युद्ध में रतनसिंह के साथ ही मर मिटने को वे उतारू हो गये।[८०]

अप्रेल १५, १६५८ ई० का प्रातःकाल हुआ। दोनों तरफ़ से सेनाएँ तैयार होने लगीं। किन्तु दोनों ओर के सेनानायकों ने एक बार पुनः समझौते के लिए प्रयत्न किया। औरंगज़ेब ने आज़म शिकोह को भेजा, और जसवन्तसिंह ने अपने वकील को प्रेरित किया, किन्तु कोई नतीजा नहीं निकला। जसवन्तसिंह को विश्वास था कि

---

[७८] वचनिका०, पृ० १४-१६।

[७९] ईश्वर०, प० २० अ; औरंग०, १-२, पृ० ३५४-३५५।

[८०] वचनिका०, पृ० १६-२८।

शाहज़ादे शाही सेना का सामना न कर लौट जावेंगे, किन्तु अब उसने जाना कि उसे शत्रुओं का सामना करना ही होगा, वे किसी भी प्रकार पीछे हटने वाले न थे।[८१]

अन्त मे सूर्योदय के कोई दो घण्टे बाद युद्ध प्रारम्भ हो गया।[८२] जसवन्तसिह ने जिस स्थान पर शाही सेना को युद्ध के लिए खडा किया था, वह स्थल मैदान होते हुए भी युद्ध-विद्या की दृष्टि से सर्वथा अनुपयुक्त था। मैदान काफी चौड़ा न था, सारी धरती ऊँची-नीची थी, दोनों ओर खाइयाँ थी और कही कही कुछ दलदल भी। "ऐसा प्रतीत होता था कि जसवन्तसिंह की सेना एक टापू पर स्थित घेरे का सामना करने को तत्पर थी।"[८३]

अपनी सेना की व्यूह-रचना करने मे जसवन्तसिह को कई एक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सारे मुसलमान सवार और सैनिक प्रधानतया क़ासिम ख़ाँ की कमान मे थे। हिन्दुओ मे भी अलग-अलग राजपूत घरानों के सैनिक प्राय अपने वंश-नायक की ही

---

[८१] आ० ना०, पृ० ५८, ६४; जफर०, पृ० २७-२८; कम्बू०, ३, पृ० २८६; ईश्वर०, प० १६ अ, २० अ, मासूम०, प० ४६ ब-४७ ब; औरंग०, १-२, पृ० ३५०-३५१।

[८२] आ० ना०, पृ० ६४; औरंग०, १-२, पृ० ३५६। रासो० (पृ० १२५) के अनुसार युद्ध दिन के मध्याह्न में प्रारम्भ हुआ, किन्तु यह ठीक नहीं है। आ० ना० का कथन अधिक विश्वसनीय है।

[८३] कम्बू०, ३, पृ० २८६; फैयाज० पृ० ५६०।

जफर० (पृ० २८, ३०) के अनुसार जसवन्तसिह ने अपनी सेना के सामने कोई २०० गज तक ख़ूब पानी छिड़कवाया था, जिससे वहाँ सब दूर कीचड़ हो गया। जसवन्तसिह का ख़याल था कि इस कीचड़ के कारण शत्रुओ के आक्रमण का वेग कम हो जावेगा। औरंग०, १-२, पृ० ३५६-३५७।

अधीनता मे लडते थे, एव राजपूत सैनिकों के विभिन्न दलो को जमाने मे इस बात का भी पूरा-पूरा विचार रखना पड़ता था । अतएव जसवन्तसिह ने हरोल मे एक ओर कासिम ख़ॉ को मुसलमान सैनिको के साथ नियुक्त किया । हरोल मे ही दूसरी ओर मुकुन्दसिह हाडा के नेतृत्व मे सारे हाडा सैनिक तथा कोटा की सेना नियुक्त की गई । दयालदास झाला, सुजानसिह सिसोदिया और अर्जुनसिह गौड भी अपने सैनिकों को लेकर मुकुन्दसिह हाडा के साथ ही थे । सुजानसिह बुन्देला और अमरसिह चन्द्रावत भी अपने-अपने सैनिकों के साथ इसी हरोल मे थे । इफ्तिख़ार ख़ॉ और उसके मुसलमान सैनिक हरोल के बाएँ तरफ थे, तथा रायसिह सिसोदिया अपने सैनिको के साथ हरोल की दाहिनी ओर डटा हुआ था । हरोल के पीछे बीच मे जसवन्त सिह ने रतनसिह और उसके सैनिको को रखा और उसके बाद वह स्वय अपने राठौड वीरो के साथ खडा था । शाही डेरो और सामान की रक्षा का भार देवीसिह बुन्देला, मालोजी एव परसोजी को सौपा गया था ।[८४]

तोपो की गडगडाहट और बन्दूको के चलने के साथ ही युद्ध प्रारम्भ हुआ । दोनो ओर से सेनाएँ धीरे धीरे बढने लगी । फिर तो एकबारगी नक़्कारे बजने लगे और दोनो सेनाएँ भिड गईं । राजपूत सवार एक ही स्थान पर एकत्रित थे एव शत्रु की इस गोलाबारी से उनमे से बहुत से मारे जाने लगे । युद्ध-क्षेत्र का स्थान खुला हुआ न होने के कारण उन्हे पूरी-पूरी स्वच्छन्दता न प्राप्त थी । इस तरह शत्रुओं की गोलियो का शिकार होते रहना राजपूत सेनानायको को

---

[८४] आ० ना०, पृ० ६४; ज़फर०, पृ० २८; ईश्वर०, प० २० अ; रासो०, पृ० १२२; औरंग०, १-२, पृ० ३५२-३, ३५८-३५९ ।

रुचिकर न हुआ, एव उन्होने शत्रु की तोपों पर हमला करने का निश्चय किया। "राम! राम!" की जयध्वनि करते हुए मुकुन्दसिह हाडा ने अपने भाइयो और हाडा वीरो को लेकर शत्रुओं की ओर घोडे दौड़ा दिए। दयालदास झाला, अर्जुन गौड, सुजानसिह सिसोदिया एव उनके साथी कई एक राजपूत सेनानायको ने भी अपने सवारो के साथ मुकुन्दसिह का साथ दिया। किन्तु इस समय रतनसिह इस हमले मे न था, वह जसवन्तसिह के साथ ही बना रहा और वही शत्रुओ से लडता रहा।[५]

शत्रुओ की तोपे चल रही थी, किन्तु मुकुन्दसिह हाडा और उसके साथियो ने उनका कुछ भी विचार नही किया। राजपूत सवार तोप के गोलो की मार से निरन्तर मरते जा रहे थे, फिर भी वे बढते ही गए। शाहजादो की सेना मे तोपखाने का सरदार मुर्शिद कुली खॉ मारा गया, तोपचियो के छक्के छूट गए, और उन्हे हरा कर तोपो की पक्ति मे होते हुए राजपूत सवार शत्रुओ की सेना मे हरोल के सामने के दल पर टूट पडे। इस हमले को रोकने के प्रयत्न मे इस दल का सेनानायक जुल्फिकार खॉ मारा गया, किन्तु राजपूतो का आक्रमण किसी भी प्रकार नही रोका जा सका। आगे बढते हुए वे हरोल मे ही जा घुसे। यहॉ औरगजेब के चुने हुए योद्धा एकत्रित थे। बडी घमासान लड़ाई हुई। तलवारे चलने लगी, योद्धाओं के रुधिर से सारी ही धरती लाल चुनडी सी रग गई। औरगजेब ने देखा कि इस हमले की सफलता या विफलता पर ही युद्ध का नतीजा

---

[५] आ० ना० (पृ० ६४) के अनुसार इस हमले में रतनसिंह भी गया था; किन्तु रासो० (पृ० १२६) में उसके जाने का कहीं भी उल्लेख नहीं है। इस प्रश्न पर रासो० का कथन अधिक विश्वसनीय है।

निर्भर है, एव वह अपने चुने हुए साथियों को लेकर इन आक्रमण-कारियो के दल के पीछे जा पहुँचा। जसवन्तसिंह ने अपने इन विजयी सफल राजपूत सवारो की सहायता करने का कोई प्रयत्न नही किया था। औरगजेब ने तो अब उस सम्भावना को ही निर्मूल कर दिया। ये राजपूत वीर चारो ओर से घिर गए। उनकी सख्या निरन्तर घटती जा रही थी, और उन पर चारो ओर से हमले हो रहे थे। राजपूत सवारो के हमले का जोर कम हो गया, और ये घिरे हुए राजपूत योद्धा अब घायल शेर की तरह दुश्मनो पर टूट पडे। मुकुन्दसिह हाड़ा की आँख में तीर लगा, जिससे वह मर कर गिर पडा। उसका भाई किशोरसिह हाड़ा बुरी तरह घायल होकर गिरा। सुजानसिह सिसोदिया, अर्जुनसिह गौड, दयालदास झाला और अन्य सारे राजपूत सेनानायक लडते हुए एक-एक कर मारे गए।[८६] इस प्रकार राजपूतो के इस प्रलयकारी आक्रमण का अन्त हुआ।

अब तक दोनो सेनाएँ सब दूर उलझ चुकी थी और चारो ओर मारकाट मची हुई थी। औरगजेब के तोपची पुन अपनी तोपो पर आ डटे थे और शत्रु की तोपे फिर जसवन्तसिह एव उनके सैनिको पर गोले उगल रही थी। रतनसिह और उसके सेनानायक

---

[८६] आ० ना०, पृ० ६४; ईश्वर०, प० २० अ; जफर०, पृ० ३०-३१; कम्बू०, ३, पृ० २८६-७; औरंग०, १-२, पृ० ३६०-३६३; रासो०, पृ० १२६-१२७।

आ० ना० के अनुसार रतनसिंह भी मुकुन्दसिंह हाड़ा आदि अन्य आक्रमण-कारी सेनानायकों के साथ ही इसी समय मारा गया। रासो० एव वचनिका० (पृ० ४६-४७) के अनुसार रतनसिंह युद्ध के अन्त में ही मारा गया था। इस प्रश्न पर वचनिका० एवं रासो० के कथन अधिक विश्वसनीय हैं।

भी वीरता के साथ लड़ रहे थे। परन्तु मुकुन्दसिह हाडा आदि आक्रमणकारियो के मारे जाने के बाद जब औरगजेब की सेना का विजयी हरोल शाही सेना की ओर बढा, तब तो शाही सेना मे यत्र-तत्र भगदड मचने लगी। रायसिंह सिसोदिया, सुजानसिंह बुन्देला और अमरसिह चन्द्रावत अपने सैनिको के साथ युद्ध-क्षेत्र छोड़ कर भाग खड़े हुए, जिससे शाही सेना के दाहिने पक्ष पर शत्रुओ का सामना करनेवाला कोई भी न रहा। उधर मुराद ने बहुत से सैनिको के साथ शाही सेना के पड़ाव पर हमला किया। देवीसिंह बुन्देला तो मुराद के साथ हो गया और दोनो मरहठे सेनानायक भाग खडे हुए। वहाँ से मुराद सीधा युद्ध-क्षेत्र को लौटा, और शाही सेना के बाएँ पहलू पर टूट पडा। इस पहलू पर इफ़्तिख़ार खाँ शाही सेनानायक था। मुराद के इस हमले का उसने साहसपूर्वक सामना किया, किन्तु अन्त मे वह लडता हुआ मारा गया और शाही सेना का यह पहलू भी सुरक्षित नही रहा।[८७]

युद्ध-क्षेत्र के मध्य मे जसवन्तसिह अपने वीर राठौड़ योद्धाओ के साथ डटा हुआ पूर्ण उत्साह के साथ लड रहा था। उसके सामने कुछ ही आगे रतनसिह राठौड भी अपने सेनानायको तथा वीर साथियों के साथ शत्रुओं का सहार कर उन्हे पीछे हटा रहा था। जसवन्तसिह को इस युद्ध मे दो घाव भी लगे, उसका एक पैर तीर लगने से काफी जख्मी हो गया, फिर भी वह पूरे उत्साह के साथ अपने सैनिकों को लडने के लिए प्रेरित कर रहा था। किन्तु अब युद्ध की परिस्थिति बदलने लगी थी। शाही सेना के हरोल वाले सारे

---

[८७] आ० ना०, पृ० ६४; ईश्वर०, प० २० अ; रासो०, पृ० १२६; औरग०, १-२, पृ० ३६४।

राजपूत मर मिटे थे। हरोल के दूसरे भाग ने, जो कासिम खॉ के सेनापतित्व मे था, अब तक युद्ध मे विशेष भाग नही लिया था, और अब औरगजेब को ससैन्य आक्रमण के लिए अपनी ओर आगे बढते देख कर कासिम खॉ अपने सैनिको के साथ युद्ध-क्षेत्र से भागने के लिए उतारू हो रहा था। सारी शाही सेना मे घबराहट फैलने लगी, जिससे खलबली मची हुई थी।

ऐसी परिस्थिति मे एक राजपूत सेनापति के लिए यही रास्ता खुला था कि वह प्राणो का मोह छोड कर शत्रुओं के घने समूह पर टूट पड़े और वीरतापूर्वक लडता हुआ लाशो के ढेर पर कट मरे। और जसवन्तसिह यही करना भी चाहता था। शाही सेना की हार अब स्पष्टतया देख पडने लगी थी। और जसवन्तसिह एव उसके वीर साहसी सैनिको पर आक्रमण करने के लिए सामने से औरगजेब, वॉई तरफ से मुराद और दाहिनी ओर से सफशिकन ससैन्य तेजी के साथ आगे बढ रहे थे। इस युद्ध का अब एक ही परिणाम हो सकता था, जसवन्तसिह के लिए विजयी होना अब असम्भव था, किन्तु अब भी वह वीरो को प्रिय रण-क्षेत्र पर एक योद्धा की मृत्यु को अपना सकता था। जसवन्तसिह चाहता था कि वह अपने साथी सवारो के साथ घोडे दौड़ा कर आगे बढते हुए शत्रु-दलो से भिड जावे और लडता हुआ खेत रहे। किन्तु उसके राठौड वीर साथी और सेनानायक सोच रहे थे कि 'मुगल शाहजादे एक दूसरे के रुधिर के प्यासे होकर आपस मे भले ही कट मरे, किन्तु राठौड वश का सिरमौर तथा जोधपुर राज्य की सारी आशाओ का एकमात्र केन्द्र उन शाहजादो के इसी आपसी कलह मे क्यो व्यर्थ जान गँवाए'। राठौड़ वीर रिणमल जोधा ने इन राजपूत सेनानायको को पुकार कहा—"किसी भी प्रकार से हो राजा (जसवन्तसिह) को बचाना चाहिए। हम तो युद्ध

में शत्रु का सामना करते हुए कट मरे, किन्तु 'ओछी वाढो, जसराज काढो'। जसवन्तसिह को युद्ध-क्षेत्र से ले जाओ।" इस समय रतनसिह ने भी जसवन्तसिह को कहा सुना, एव अन्त मे राठौड वीर आसकरण और महेशदास सूरजमलोत ने जसवन्तसिह के घोडे की बागे पकड लीं और उसे खीच कर युद्ध-क्षेत्र से बाहर ले चले। इस प्रकार युद्ध-क्षेत्र छोडते समय जसवन्तसिह ने युद्ध-क्षेत्र मे लडती हुई बाकी रही शाही सेना का सेनापतित्व रतनसिह को सौपा।[८८]

अपने इने-गिने साथियो तथा कुछ सैनिको के साथ जसवन्तसिह तो जोधपुर की ओर चला, और यहाँ धरमत के युद्ध-क्षेत्र मे रतनसिह राठौड बाकी बची शाही सेना के साथ अपने जीवन का अन्तिम युद्ध करने को शाहजादो की आगे बढ़ती हुई शत्रु-सेनाओ की ओर बढा। शाही सेना बहुत कुछ कट-मरी थी, कुछ युद्ध-क्षेत्र छोड कर भाग गई थी। अब रतनसिह के साथ रह गए थे मुट्ठी भर सेनानायक और कुछ सैनिक। उसके निजी सेनानायको और सैनिको के अतिरिक्त जोधपुर की सेना के भी कुछ वीर सेनानियों ने इस समय रतनसिह का साथ दिया। जसवन्तसिह से प्राप्त शाही सेनापति के सारे सम्मान चिह्नो को साथ लेकर रतनसिह ने शत्रुओ का सामना किया।[८९]

---

[८८] आ० ना०, पृ० ६४; जफर०, पृ० ३०-३१; ईश्वर०, प० २०-अ; फ़ैयाज०, पृ० ५६०; कम्बू०, ३, पृ० २८७; बरनियर०, पृ० ३६; मनुची०, १, पृ० २५६; वचनिका०, पृ० ४६-४७; रासो०, पृ० १३३; ख्यात०, १, पृ० २०७; औरंग०, १-२, पृ० ३६४-३६६; मारवाड़०, १, पृ० २२२-३।

[८९] रासो०, पृ० १३३; वचनिका०, पृ० ४७; गुरूजी०।

फ़ारसी आधार-ग्रन्थो एवं प्रधानतया उन्हीं के आधार पर लिखित औरंग०, (१-२) में इस घटना का कोई भी उल्लेख नहीं है।

युद्ध समाप्त-प्राय था, और रतनसिह का यह युद्ध बुझते हुए दीपक की अन्तिम ज्योति थी। रतनसिह का भाई फतेहसिह, रतनसिह का द्वितीय पुत्र रायसिह एव साचोरा चौहान वीर अमरदास तथा भगवानदास रतनसिह के साथ ही लगे हुए थे। जसराज बारहठ अब भी राठौड़ सेनानायक एव उसके राजपूत सैनिको को लड मरने के लिए उत्साहित कर रहा था। प्राणो का मोह छोड़ कर रतनसिह अलौकिक वीरता तथा अद्वितीय साहस के साथ शत्रुओ पर टूट पडा। रतनसिह के कई घोडे बारी-बारी से घायल हो कर गिरे, परन्तु हर बार वह किसी दूसरे घोडे पर सवार होकर पुनः युद्ध मे जुट गया। अब एक-एक कर उसके वीर साथी कट-कट कर गिरने लगे। फतेहसिह मारा गया, भगवानदास और अमरदास घायल होकर गिर पडे। रायसिह भी घायल होकर गिरा, किन्तु उसे ज्यादा घाव नही लगे थे एव उसे तत्काल ही रण-क्षेत्र से उठाकर ले गए। जसराज बारहठ भी कट मरा। फिर भी रतनसिह लड़ता ही रहा। अन्त मे घावो से जर्जरित होकर रतनसिह भी गिर पडा। युद्ध का अन्त हो गया। शाही सेना पहिले ही तितर-बितर हो चुकी थी। रतनसिह और उसके साथियो के मरते ही कोई विरोध नही रह गया। औरगजेब और मुराद ने विजय के नक़्क़ारे बजाए, एवं औरगजेब ने आज्ञा दी कि इस विजय के स्मारक-स्वरूप इस युद्ध-क्षेत्र पर फतेहाबाद नाम का एक नया कसबा बसाया जावे, तथा वहॉ एक मसजिद और एक सराय बना कर उनके आसपास बाग लगाया जावे। इस प्रकार धरमत गॉव के पास ही वर्तमान फतेहाबाद कसबे की नीव पडी।[१०]

---

[१०] वचनिका०, पृ० ४८-७४; रासो०, पृ० १३४-१३६। इन दोनों में वचनिका० में दिया हुआ विवरण अधिक प्रामाणिक है।

यो धरमत के युद्ध मे वीरतापूर्वक लडता हुआ रतनसिह खेत रहा। इस युद्ध मे उसे छब्बीस तीर लगे थे और सारे शरीर पर तलवार के अस्सी घाव भी। इन्ही से जर्जरित और लोहूलुहान होकर वह अचेत धरती पर गिरा। कहा जाता है कि साचोरा चौहान वीर अमरदास और भगवानदास भी रतनसिह के पास ही घायल पडे थे। तीनो के शरीर से बहुत रुधिर बह रहा था, ये रुधिर धाराएँ बह कर एक ही ओर जा रही थी जहाँ उनके आपस मे मिल जाने की पूरी पूरी-सम्भावना थी। विभिन्न वशीय होने के कारण ये दोनो चौहान वीर चाहते थे कि उनका रुधिर रतनसिह के रक्त के साथ न मिलने पावे, एव घायल पडे-पडे दोनो चौहान वीर उन रुधिर धाराओं के बीच धूलि की पालि बनाने लगे। कुछ होश आने पर मरणासन्न रतनसिह ने उनके इस प्रयत्न को देखा और कहा—"क्यों पालि बाँधते हो ? अपना रुधिर मिलने दो। आज इस युद्ध-क्षेत्र पर तुम्हारा और मेरा रुधिर मिल कर एक हो गया। भविष्य मे तुम्हारे और मेरे वशज भाई-भाई के समान रहेंगे तथा उनके आपस मे कभी भी शादी-सम्बन्ध नही होगे। और जो कोई इस रूढि का उल्लघन करेंगे, उनका वश कभी भी नही चलेगा।" मृत्यु-शय्या पर पडे हुए रतनसिह के उक्त वचनों का पालन आज भी उसके तथा दोनो चौहान वीरो के वशज करते है।

फारसी आधार-ग्रन्थो में रतनसिंह के इस अन्तिम युद्ध का कोई स्पष्ट विवरण नही मिलता है। आ० ना०, पृ० ६४; जफर०, पृ० ३१-३२; ईश्वर०, प० २४ अ; कम्बू०, ३, पृ० २८७। इन्ही अस्पष्ट उल्लेखो के ही आधार पर औरंग० (१-२, पृ० ३६६) में जसवन्तसिंह के युद्ध-क्षेत्र छोड़ते समय शाही सेना के कुछ बचे-खुचे सैनिक दलो के विरोध का उल्लेख है। सम्भव है ये अस्पष्ट उल्लेख रतनसिंह के इसी युद्ध के प्रति उपेक्षापूर्ण संकेत हो। औरंग०, १-२, पृ० ३६९-३७०।

उस वीर के वे अन्तिम शब्द अब तक मिथ्या प्रमाणित नही हुए ।[११]

शाही सेना के हजारो वीर मारे गए और उनसे भी अधिक घायल हुए । रतनसिह के प्राय सारे महत्वपूर्ण सेनानायक खेत रहे और उसका दूसरा पुत्र रायसिह घायल हुआ । सेनानायको के अतिरिक्त रतनसिह के दल मे से कोई पचास राजपूत और चारण भी मारे गए ।[१२] रतनसिह का निजी झण्डा लेकर उसके सैनिक दल का नेतृत्व करनेवाला वीर परशुराम ओझा भी इसी युद्ध मे खेत रहा ।[१३] रतनसिह के दल के कुल कितने व्यक्ति घायल हुए इसका कोई ब्यौरा प्राप्त नही

---

[११] गुरूजी०; रतन०, पृ० ४८-४९; रतलाम०, पृ० ७; प्राचीन०, ३, पृ० ३९३-४ ।

अमरदास के वशज रतनसिह के ज्येष्ठ पुत्र रामसिह के वशजो के साथ रहे, और केशवदास के साथ ही वे भी रतलाम छोड़कर सीतामऊ चले आए । सीतामऊ राज्य के अन्तर्गत दोपाखेड़ा, महुवा, आदि ठिकाने आज भी अमरदास के ही वंशजो के अधिकार में है ।

भगवानदास के वंशज भी पहिले तो रामसिह और उसके पुत्रो के साथ रहे, किन्तु रतलाम का परगना केशवदास से छूटने पर, उन्होने केशवदास को छोड़ दिया, और वे रतनसिह के पाँचवें पुत्र छत्रसाल के साथ हो गए । ईसा की १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब छत्रसाल को रतलाम का परगना नए सिरे से मिला और इस प्रकार वर्तमान द्वितीय रतलाम राज्य की स्थापना हुई, तब छत्रसाल ने भगवानदास के इस वशज को नई जागीर दी । रतलाम राज्य के अन्तर्गत पचेड़ ठिकाना आज भी भगवानदास के इन्ही वशजो के अधिकार में है ।

[१२] रतनसिह के दल में से मारे गए वीरो की सूचियाँ ख्यात० (१, पृ० २०७, २२३) में दी हुई है जो आगे 'परिशिष्ट ४' में उद्धृत की गई है ।

[१३] रासो०, पृ० १०३, १३२; गुरूजी० । इस परशुराम ओझा के वशज आज भी सीतामऊ राजघराने के पूज्य नेगी है, और राजकीय जुलूस के अवसर पर सीतामऊ राज्य का झंडा लेकर जुलूस का नेतृत्व करते है ।

है। केवल रतनसिंह के निजी नक्कारा बजाने वाले के घायल होने का उल्लेख मिलता है। इस युद्ध मे उसका दाहिना हाथ कट गया था, तथापि वह अपने बाएँ हाथ से बाईं तरफ का नक़्कारा लगातार बजाता ही रहा। उसी दिन से रतनसिह के वशजो द्वारा स्थापित राज्यो मे केवल बायाँ नक्कारा ही बजाया जाता है।[९४]

युद्ध समाप्त होने के कुछ समय बाद रणक्षेत्र मे ही रतनसिह की मृत्यु हो गई। यत्र-तत्र बिखरे हुए तीर और भालो को एकत्रित कर वीरोचित चिता रची जाकर युद्ध-क्षेत्र मे जहाँ रतनसिह धरती पर गिरा था, वही उसकी दाह-क्रिया की गई। उसकी अस्थियो और भस्म को उज्जैन के पुण्य तीर्थ पर क्षिप्रा मे बहा दिया, एव रतनसिह के इस अपूर्व आत्मत्याग की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए रतनसिह के उत्तराधिकारी रामसिह ने रतनसिह के दाहस्थान पर एक पूजनीय स्मारक—एक चौतरा बनवा दिया। समय, आँधी और पानी की मार ने इस स्मारक को बहुत कुछ तोड-फोड डाला था, एव रतनसिह की मृत्यु के पूरे ढाई सौ वर्ष बाद रतनसिह के वशजो ने उसी चौतरे के स्थान पर श्वेत सगमरमर की एक नई सुन्दर भव्य छतरी बनवाई।[९५]

---

[९४] राणी०। अन्य ख्यातो और पुरानी पोथियों में भी यही विवरण मिलता है।

'पंचेड़ ठिकाने के इतिहास' में इसी बात का दूसरा ही कारण बताया है। रतनसिंह के 'ख़ास नक्कारे की मादा (दाहिनी तरफ का नक़्क़ारा) गिर गई और नक़्कारा निकाम हो गया, जिससे अब तक मादा नही बजाते, केवल नर मात्र (बाएँ तरफ का नक़्कारा) ही बजाया जाता है।' (पृ० ७२)। किस आधार पर यह उल्लेख किया गया है, यह ज्ञात नहीं; किन्तु कोई विश्वसनीय ज्ञात ऐतिहासिक आधार-ग्रंथ इस कथन का समर्थन नहीं करते हैं।

[९५] यह नई छतरी बनवाने के आयोजन में सैलाना का स्वर्गीय राजा

तनसिंह की छत्री – धरमत के युद्ध-क्षेत्र में

इस युद्ध मे मारे जाने वाले अन्य सेनानायको के समान रतनसिह के भाई फतेहसिह[९९] तथा उसके दूसरे वीर साथियो की भी दाह-क्रिया या

जसवन्तसिंह अग्रणी हुआ। उसी की देख-रेख में यह छतरी बनवाई गई और इसके निर्माण के व्यय का भार वर्तमान रतलाम, सीतामऊ एवं सैलाना राज्यों ने उठाया। इस छतरी की देख-रेख, उसकी सफाई तथा पूजा के लिए तीनो राज्यों की ओर से पूरा-पूरा प्रबन्ध है। रतलाम से फतेहाबाद जानेवाली रेलवे लाइन से यह छतरी देख पड़ती है। सर यदुनाथ के शब्दो में यह छतरी इस स्थान की सबसे महत्त्वपूर्ण तथा दर्शनीय वस्तु है। औरंग०, १-२, पृ० ३७१।

[९९]स्थानीय किम्वदन्ती के आधार पर गुरूजी० ने लिखा है कि फतेहसिंह की दाहक्रिया कोद में की गई थी, एवं उसी स्थान पर आज भी उसका स्मारक एक चौंतरा बना हुआ है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह कथन कहाँ तक सत्य हो सकता है, यह एक विचारणीय प्रश्न है।

बदनावर परगने के अन्तर्गत, बदनावर से १२ मील दक्षिण में, यह कोद कस्बा स्थित है। रतनसिंह की मृत्यु के कोई सौ वर्ष बाद ही फतेहसिंह के दूसरे पुत्र हरीसिंह के वंशज ने यहाँ वर्तमान कोद ठिकाने की स्थापना की थी। फतेहाबाद के इस युद्ध के समय बदनावर परगने के साथ ही यह स्थान भी रतनसिंह की व्यक्तिगत जागीर में था। उस समय कोद का फतेहसिंह के साथ निजी तौर पर कोई विशेष सम्बन्ध नही हो सकता था।

रतनसिंह, मुकुन्दसिंह हाडा, अर्जुनसिंह गौड़, आदि बड़े-बड़े शाही मनसबदारों की दाह-क्रिया फ़तेहाबाद में ही हुई। उस समय फतेहसिंह जैसे डेढ़ सदी के मनसबदार के शव को दाह-क्रिया के लिए फतेहाबाद से पूरे ३४ मील दूर कोद के समान एक अज्ञात एवं पूर्णतया असम्बद्ध स्थान पर ले गए होंगे, यह सर्वथा एक अनहोनी बात जान पडती है। एवं उक्त किम्वदन्ती तथा गुरूजी का तत्सम्बन्धी कथन पूर्णतया अविश्वसनीय है। फतेहसिंह की दाह-क्रिया भी फ़तेहाबाद में युद्धक्षेत्र पर हुई होगी। अतएव कोद का वह चौंतरा फ़तेहसिंह की दाह-क्रिया-स्थान का स्मारक नहीं हो सकता है।

फ़तेहसिंह की मृत्यु के पूरे सौ साल से भी अधिक बाद, कोद ठिकाने की

तो युद्ध-क्षेत्र मे ही की गई अथवा उन्हे पास ही गभीर नदी के किनारे जला दिया। इस युद्ध मे से बच-निकलने वाले सैनिक अपने-अपने घरो को लौट गए। घायल रायसिह को रतलाम ले गए, जहाँ कुछ दिनो बाद वह ठीक हो गया।

मार्च, १६५८ ई० मे उस दिन रतलाम से बिदा लेकर गया हुआ रतनसिह अपनी राजधानी को वापस नही लौटा। गम्भीर नदी के तट पर अवन्तिका-क्षेत्र मे वह खेत रहा। रतनसिह का भौतिक शरीर पुन. पचतत्वो मे जा मिला। उसकी यश काय सारे भारत मे व्याप्त हो गई। वहाँ से वापस आई केवल रतनसिह के सिर की रक्तरजित पाग। जालोर छोडकर मई, १६५६ ई० मे जब रतनसिह अपने नए वतन रतलाम चला आया था, तब कुछ काल के लिए उसने अपनी स्त्रियो और छोटे बच्चो को जालोर ही रहने दिया। सन् १६५८ ई० के प्रारम्भ मे रतनसिह ने उन्हे रतलाम बुलवा भेजा था। जालोर से रवाना होकर वे अब तक रतलाम नही पहुँच पाए थे। एव साडनी-सवार उस पाग को लेकर रतनसिह की रानियो के पास उसे पहुँचाने के लिए रवाना हुए।

रतनसिह की पहली रानी बेदला के चौहान सग्रामसिह की पौत्री हररूप दे कुँअर थी।[९७] रतनसिह के उत्तराधिकारी ज्येष्ठ

स्थापना के अनन्तर ही, फतेहसिंह के वशजो ने अपने उक्त वीर पूर्वज तथा उसके इस युद्ध मे मारे जाने की स्मृति में फ़तेहसिंह के स्मारक स्वरूप इस चौतरे को बनवाया होगा, ऐसा अनुमान होता है।

[९७] गुरूजी०; रतन०, पृ० ५२।

राणी० में इस रानी का नाम बदन कुँवर लिखा है। उन दिनो कितने ही राजपूत घरानो में यह प्रथा प्रचलित थी कि कभी-कभी विवाह के बाद ससुराल में वधू का नाम बदल दिया जाता था। यही कारण है कि पुरानी पोथियो और ख्यातो में दिये गए रानियो के नामो में कई बार ऐसी विभिन्नता पाई जाती है।

पुत्र रामसिह को इसी रानी ने जन्म दिया था। रतनसिह के दूसरे वीर पुत्र रायसिह की माता कछवाही राजावति गुणरूप दे कुँअर थी। आम्बेर के सुप्रसिद्ध राजा मानसिंह के छोटे भाई माधोसिह के पौत्र प्रेमसिह के दूसरे लडके मोहकमसिह की यह पुत्री थी।[९८] तीसरी रानी देवल्या की सिसोदनी मनोहर कुँअर, रतनसिह के तीसरे पुत्र नाहरसिह की माता थी।[९९] चौथी रानी कछवाही राजावति अतिरूप दे कुँअर थी। आम्बेर के राजा मानसिह के पौत्र पुरुषोत्तमसिह की यह पुत्री थी।[१००] इस रानी के कोई भी सन्तान नही हुई। रतनसिह की पाँचवी रानी कछवाही शेखावति सुखरूप दे कुँअर थी। रायसल शेखावत के पौत्र तोडरमल के लडके पुरुषोत्तम की यह पुत्री थी।[१०१] इस रानी से रतनसिह के पाँच

बड़वो की ख्यातो में इस रानी के पिता का नाम खेमकरण या खुमानसिंह दिया है।

[९८] राणी०; वचनिका०, पृ० ७६; नैणसी०, २, पृ० १६।

गुरूजी के आधार पर रतन० (पृ० ५२) में इस रानी को उणियारा की नरूकी होना बताया है, जो भ्रमपूर्ण है।

[९९] राणी०; गुरूजी०; रतन०, पृ० ५२।

[१००] वचनिका०, पृ० ७६; नैणसी०, २, पृ० १५। गुरूजी० के आधार पर रतन० (पृ० ५२) में इस रानी का नाम सुखरूप कुँवर लिखा है। उसी आधार पर रतन० में इस रानी के पिता का नाम मोहकमसिंह लिखा है, जो ठीक नही; दुर्जनसिंह के किसी भी पुत्र का नाम मोहकमसिंह नहीं था। नैणसी०, २, पृ० १५।

राणी० में इस रानी को उणियारा की नरूकी होना बताया है, जो भ्रमपूर्ण है।

[१०१] वचनिका०, पृ० ७६; नैणसी०, २, पृ० ३५-३६।

गुरूजी० के आधार पर रतन० (पृ० ५२) में इस रानी का नाम अतिरूप दे कुंवर दिया है। गुरूजी० इस रानी को अमरसर की होना बताते है, परन्तु राणी० में उसे मनोहरपुर की होना लिखा है।

पुत्र हुए—करण, छत्रसाल, अखेराज, पृथ्वीराज और जेतसिह। इसी रानी से रतनसिह के दो पुत्रिया, बने कुँअर और महा कुँअर भी हुईं।[१०२] छठवी रानी सिरोही की रैणसुख दे कुँअर थी। वह सिरोही के राव लाखा के वशज पृथ्वीराज देवडा के पुत्र चॉदा की लडकी थी।[१०३] उसके चार पुत्र हुए–किशनसिह, सूरसिह, धीरतसिह और सकतसिह।[१०४] कही २ इन छ रानियो के अतिरिक्त दो और रानियो का भी उल्लेख मिलता है।[१०५] रतनसिह की चार उपपत्नियाँ भी थी।[१०६] रतनसिह की पाग के साथ सती होने वाली चार रानियो के अतिरिक्त दूसरी कोई रानियाँ उस समय जीवित थी या नही, यह बात निश्चित रूपेण ज्ञात नही है।

रतनसिह के कई पुत्रियाँ भी थी। पहली पुत्री प्रताप कुँअर का विवाह जैसलमेर के रावल सबलसिह के ज्येष्ठ पुत्र अमरसिह के साथ हुआ

---

[१०२] गुरूजी०; राणी०; रतन०, पृ० ७२।

[१०३] वचनिका०, पृ० ७६; नैणसी०, १, पृ० १४५-६।

गुरूजी० के आधार पर रतन० (पृ० ५२) में इस रानी का नाम सुख दे कुँवर लिखा है। राणी० में इस रानी का नाम रतन कुँवर दिया है।

राणी० में इसे नोमाज की होना लिखा है।

[१०४] राणी०; गुरूजी०; रतन०, पृ० ५२।

[१०५] गुरूजी० के आधार पर रतन० (पृ० ५२) में भी रतनसिंह के सिर्फ़ छः रानियाँ होना लिखा है। राणी० में निम्नलिखित दो और रानियों के नाम दिए हैः—

(१) देवड़ी सुखरूप दे कुँवर, नाहर खाँ के गाँव मीसलपुर की;

(२) भट्याणी राजल दे कुँवर, गोपीनाथ की पुत्री।

[१०६] राणी०। गुरूजी० में इसका कोई उल्लेख नहीं है। परन्तु वचनिका० (पृ० ८०) में तीन उपपत्नियों के भी सती होने का लिखा है।

था। अपने पिता की मृत्यु के बाद यह अमरसिह जैसलमेर की गद्दी पर बैठा। दूसरी पुत्री कुशल कुँअर का विवाह बाँसवाडे के रावल अजबसिह के साथ हुआ था। तीसरी पुत्री मया कुँअर या महा कुँवर का विवाह शाहपुरे के राजा सुजानसिंह के ज्येष्ठ पुत्र राजा दौलतसिह के साथ हुआ था।[१०७]

रतनसिह की रुधिर से सनी हुई पाग एव उसकी वीर-मृत्यु के समाचार लेकर साडनी-सवार रतलाम से रवाना हुए। रतलाम से उत्तर-पश्चिमी दिशा मे कोई २५ मील ही वे गए थे कि जालोर से रतलाम की ओर आता हुआ, रतनसिह की रानियो तथा अन्य कुटुम्बियो का दल उन्हे सामने मिला। रानियो का यह दल नीनोर-कोठडी नामक स्थान में पडाव डाले हुए था।[१०८] रानियो ने ज्यो ही रतनसिह की मृत्यु का समाचार सुना, उन्होने वही सती होनेका निश्चय किया। नीनोर मे एक अच्छा तालाब है। उसी तालाब की पाल पर चिता रची गई और शनिवार, मई १५, १६५८ ई० (ज्येष्ठ विदि ९, १७१५ वि०) को नीनोर मे रतनसिह की चार रानियाँ और तीन उपपत्नियाँ सती हुईं। चार रानियाँ जो सती हुई वे थी—कछवाही राजावति गुणरूप दे कुँअर, कछवाही राजावति अतिरूप दे कुँअर, कछवाही शेखावति सुखरूप दे

---

[१०७] गुरुजी० और राणी० में यह विवरण पूरा-पूरा नहीं मिलता है। बड़वों की ख्यातो के आधार पर ही ये बातें लिखी गई हैं।

[१०८] रतलाम से पच्चीस मील उत्तर-पश्चिम में, एवं प्रतापगढ़ से कोई २४ मील दक्षिण में स्थित नीनोर नामक यह स्थान आजकल प्रतापगढ राज्य के अन्तर्गत है। बोलचाल में इसे प्रायः नीनोर-कोठड़ी भी कहते हैं। यह एक प्राचीन गाँव है। यहाँ पहिले बिसनगरे नागरो की अच्छी बस्ती थी।

प्रताप०, पृ० २६-२७।

कुंअर, और देवडी रैंणसुख दे।[१०९] इन सतियो का स्मारक एक चौतरा, आज भी नीनोर-कोठडी मे विद्यमान है। वह स्मारक रतनसिह के वशजो के लिए एक पूजनीय स्थान है, किन्तु उन्ही सतियो के आदेशानुसार रतनसिह का कोई वशज उस स्मारक एव उस गॉव के आसपास एक निश्चित परिधि के अन्दर न तो निवास कर सकता है और न वहॉ खा पी सकता है। उन सतियो की पूजा-अर्चा के अनन्तर तत्काल ही उनका वहा से चल देना एक अत्यावश्यक तथा अनिवार्य बात है।[११०]

रतनसिह युद्ध करता हुआ खेत रहा, तथा उसकी रानियॉ अपने प्रियतम के साथ दूसरे लोक मे जा मिलने को सहर्ष चिता पर चढकर

---

[१०९] रतन० (पृ० ४६, ५२) का विवरण प्रधानतया वचनिका के ही आधार पर लिखा गया है। वचनिका०, पृ० ७६-८०।

रासो० (पृ० १४६) में दिया हुआ सतियो का विवरण बहुत ही सक्षिप्त एवं अपूर्ण है। उसमें 'केवल दो रानियो, राजावति और देवड़ी के सती होने का लिखा है। रासो-कार ने यह भी खुलासा नहीं किया कि कौनसी राजावति रानी सती हुई।

नीनोर-कोठड़ी में जो सात सतियाँ हुईं, उनके नामों की सूची पूरी करते समय राणी० और गुरुजी० में रतनसिंह की सारी रानियों के नाम दे दिए गए हैं। इन्हीं के आधार पर सीतामऊ० (पृ० ३) और रतलाम० (पृ० ७) में भी सात रानियों के सती होने का उल्लेख किया गया है।

सात सतियाँ हुईं अवश्य, परन्तु एक समकालीन एवं पूर्णतया विश्वसनीय लेखक के कथन के आधार पर यह बात निश्चितरूपेण कही जा सकती है कि ये सातों सतियॉ रानियाँ न थीं; उन में केवल चार ही रानियाँ थीं और बाक़ी तीन उपपत्नियाँ थीं। वचनिका० (पृ० ७६-८०) का कथन ही पूर्णतया विश्वसनीय है, एव उसे ही स्वीकार किया गया।

[११०] गुरुजी०; राणी०।

सती हुई। इस प्रकार सिर्फ दो वर्ष के बाद ही सद्य स्थापित रतलाम राज्य के पहिले राजा का शासनकाल समाप्त हुआ। और रतनसिह ने मर कर अमरत्व प्राप्त किया। अपने जीवन की आखिरी लड़ाई हार कर भी अन्त मे वह जीत गया। उसके विजयी-विरोधी कट्टर औरगजेब ने भी रतनसिह की अद्वितीय वीरता, उसके अलौकिक साहस तथा अनन्य स्वामी-भक्ति के सामने नत-मस्तक होकर उसके वशजो को जीवन भर अपनाया। अपनी नश्वर भौतिक देह को दॉव मे हार कर भी रतनसिह ने बदले मे पाई अजर-अमर शाश्वत यश.काय। जीवन भर की अनन्य साधना और निरन्तर खोज के बाद भी उसी के सफल अनुभवी पिता को रतनसिंह की सी गौरवपूर्ण मृत्यु तथा वीरोचित चिता प्राप्त न हुई। राठौड घराने के सिरमौर एव रतनसिह के प्रधान सेनापति जसवन्तसिह को भी रतनसिह के सौभाग्य पर ईर्ष्या हुई। काम-धेनु को प्रसन्न करके भी प्रतापी राजा दिलीप को जो गौरव प्राप्त नही हुआ, अजर-अमर देवता तक जिसके लिए सदैव तरसते रहे, वही अधिकार मृत रतनसिह ने अनजाने पाया—उसके नाम से उसका वश सुप्रसिद्ध हुआ। रतनोत कुल का प्रारम्भ रतनसिह के बारह पुत्रो से हुआ।[१११]

---

[१११]रतनसिंह के इग्यारह छोटे पुत्रो की अलग-अलग क्रमबद्ध सक्षिप्त जीवनियो के लिए आगे देखो—'परिशिष्ट ५—रतनसिंह के अन्य इग्यारह पुत्रो का संक्षिप्त विवरण'।

परिशिष्ट—१

रतलाम आदि परगने मिलने सम्बन्धी प्रश्नों की विवेचना

रतनसिह को रतलाम आदि परगने कब मिले और क्यो मिले ? उसे कितने परगने मिले और उनकी आय कितनी थी ? इन बातो का जो विवरण अध्याय ४-§३ के अन्तर्गत दिया गया है, वह अब तक प्रचलित एव सर्वमान्य कथानक से बहुत कुछ भिन्न है। किन ऐतिहासिक आधारो पर किस प्रकार उपर्युक्त निर्णय किया गया, इसकी विस्तृत विवेचना आवश्यक है।

इन प्रश्नो को हल करने मे निम्नलिखित ऐतिहासिक सामग्री उपयोगी है।

(१) कवि कुभकर्ण कृत काव्य "रतन रासो"—रतनसिह की इस काव्यबद्ध जीवनी मे सन् सवतो का पूर्ण अभाव है, कई एक ऐतिहासिक घटनाओ का इसमे उल्लेख भी नही है। घटनाओं के विवरण मे भी कवित्व और कल्पना की मात्रा अधिक तथा ऐतिहासिक तथ्य कम पाये जाते है।

(२) मुहम्मद वारिस कृत "पादशाह-नामा"—शाही कागज़ात, अखबारात, वाकयानवीसो के पत्र आदि के आधार पर शाहजहाँ के शासन काल के पिछले साढे इग्यारह वर्षों का क्रम-बद्ध, प्रामाणिक तथा शाही इतिहास है। जून २४, १६४७ ई० के बाद की सब महत्त्वपूर्ण घटनाओ का क्रमबद्ध विवरण इस ग्रन्थ मे मिलता

है एव शाही दरबार सम्बन्धी घटनाओ के लिए यह ग्रन्थ प्रधान आधार है।

(३) राजगुरु की पोथियॉ—इन पोथियो मे प्राचीन कथानक, ख्यात या दत-कथाओं के ही आधार पर मालवा के राठौड घरानो की महत्वपूर्ण घटनाओ का विवरण लिखा है। ये पोथियाँ कब लिखी गईं यह कहना कठिन है, परन्तु प्राय ऐतिहासिक घटनाओ का विवरण बहुत कुछ ठीक ही मिलता है। रतन० मे रतलाम आदि परगने पाने का विवरण प्रधानतया इन्ही पोथियो के आधार पर लिखा गया है। मान्य ऐतिहासिक तथ्यो, प्रमाणित रीति-रिवाजों या ज्ञात घटनाओ के आधार पर इन पोथियो मे दिए गए विवरण या सवतो को यदा-कदा दुरुस्त करना आवश्यक होता है।

(४) जोधपुर राज्य की ख्याते—महेशदास, रतनसिह एव उसके उत्तराधिकारी शाही मनसबदार थे, अतएव उनका जोधपुर राज्य से कोई विशेष सम्बन्ध नही रह गया था, तथापि जालोर परगना जोधपुर राज्य की सीमा पर है, एव इस परगने का जोधपुर राज्य से अविच्छेद्य सम्बन्ध रहा है, अतएव जालोर परगने से सम्बद्ध इस प्रश्न पर जोधपुर की ख्यात से प्रकाश पड सकता है।

इस महत्वपूर्ण राज्य तथा वहाँ के राजघराने की अनेकानेक ख्याते लिखी गईं। एक ख्यात तो ईसा की १९ वी शताब्दी के प्रारम्भ मे महाराजा मानसिह के समय मे लिखी गई। इस ग्रन्थ की रचना मे इस ख्यात का यथाशक्य उपयोग किया गया है (देखो सकेत "ख्यात०")। परन्तु यह ख्यात इस प्रश्न पर पूर्णतया मौन है।

जोधपुर राज्य के सग्रह मे एक और ख्यात है जिसका उपयोग रेऊ ने अपने ग्रन्थ "मारवाड के इतिहास" मे किया है। यह ख्यात

इस प्रश्न पर पर्याप्त प्रकाश डालती है, एव इस मामले मे प्रधान ऐतिहासिक आधार है।

(५) तत्कालीन सनदे, फेहरिस्ते, आदि——रतनसिह द्वारा दी गईं केवल दो ही सनदे अब तक प्राप्त हुई है। एक सनद मार्च १२, १६५० ई० को रतनसिह ने जालोर मे अपने राजव्यास को दी थी। दूसरी खारा गाँव की सनद अगस्त २०, १६५४ ई० को रतनसिह ने सन्यासी माधो भारती को दी थी। जालोर छोडने का सवत् निश्चित करने मे ये सनदे सहायक हो सकती है।

पुन रतनसिह के छोडने पर जालोर परगना जोधपुर राज्य के अधिकार मे आया। सन् १६६२-६३ ई० (स० १७१९ वि०) मे जोधपुर राज्य की ओर से जालोर परगने के गाँवो की एक फेहरिस्त बनाई गई थी, जिसमे यथास्थान खास २ गाँवोका विशेष विवरण भी दिया गया है। जिस अरसे मे महेशदास और रतनसिह ने जालोर पर राज्य किया, तब उन्होने कौन-कौन से गाँव किसे दिए तथा कौन से गाँव उन्होने नए बसाए, इन बातो का उल्लेख उक्त फेहरिस्त मे है। इस फेहरिस्त की एक प्रति जोधपुर राज्य के सग्रह मे विद्यमान है। जालोर मे कुछ पुरानी बहियाँ भी मिलती है, जिनमे रतनसिह के जालोर पर शासन करने एव उसके वहाँ के शासनकाल की अवधि का उल्लेख मिलता है। इन फेहरिस्त एव बहियों से आवश्यक उद्धरण रेऊ की सहायता से प्राप्त हुए है। इन उद्धरणो से रतनसिह के जालोर मे शासनकाल सम्बन्धी सन्-सबतों पर कुछ प्रकाश पडता है। (देखो सकेत "फेहरिस्त०")।

इस सारे मामले को पाँच विभिन्न प्रश्नो मे विभक्त कर प्राप्य ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर प्रत्येक प्रश्न पर अब अलग-अलग विचार किया जावेगा।

(१) पहला प्रश्न---रतलाम आदि परगने कैसे मिले ?

इस प्रश्न के तीन ही उत्तर हो सकते है। या तो रतनसिह के मनसब मे वृद्धि पर ये नए परगने मिले हो, या विशेष कृपा कर शाहजहाँ ने ये परगने खास तौर पर उसे दिए हो, या जालोर आदि परगनो के बदले मे ये परगने रतनसिह के अधिकार मे आए।

रतनसिह का मनसब केवल दो बार बढा था, अगस्त ३१, १६४९ ई० और अगस्त १६, १६५७ ई० को। पहली बार मनसब बढने के बाद भी रतनसिह ने जालोर मे ही सनदे और जागीरे प्रदान की थी, और दूसरी बार मनसब बढने से पहले ही रतनसिह मालवा चला आया था, एव यह बात निश्चितरूपेण कही जा सकती है कि रतलाम आदि परगने मनसब वृद्धि के समय उसे प्राप्त नही हुए।

और उसी प्रकार यह बात भी निश्चितरूप से कह सकते है कि शाहजहाँ ने इन बरसो मे विशेष कृपा कर कोई परगने खास तौर पर रतनसिह को नही दिए। शाहजहाँ ने महेशदास को जब जालोर का परगना वतन (निवास-स्थान) के तौर पर दिया था तब पादशाहनामे मे खास तौर पर इस बात का उल्लेख किया गया था। इसके विपरीत वारिस० एव अन्य समकालीन ऐतिहासिक फारसी ग्रन्थों मे रतलाम आदि परगनो के मिलने का कोई भी उल्लेख नही मिलता है। यही कारण था कि रतनसिह की मृत्यु से कोई सौ वर्ष बाद जब "मासिर-उल्-उमरा" शीर्षक ग्रन्थ लिखा जाने लगा, तब उसमे भी रतनसिह के रतलाम आदि परगने पाने का कोई उल्लेख नही किया गया।

अतएव यही अनुमान होता है कि रतलाम आदि परगने रतनसिह को जालोर परगने के बदले मे ही मिले थे। यह मामला केवल परगनो की

बदला-बदली का ही था, एव शाही इतिहास-ग्रन्थ मे इसका उल्लेख किया जाना अनावश्यक समझा गया। वारिस० आदि ग्रन्थकारो की चुप्पी यो समझ मे आती है। रतनरासो मे भी केवल रतलाम आदि नए परगने मिलने का ही उल्लेख है, जालोर के प्रश्न पर कवि ने कोई भी प्रकाश नही डाला।

राजगुरू, राणीमगा आदि की पोथियो मे रतनसिह को रतलाम आदि नए परगने मिलने पर उसके जालोर छोडकर मालवा चले आने का विवरण मिलता है। रतनसिह को ये नए परगने क्यो मिले? रतनसिह ने जालोर परगना क्यो छोडा और उसके छोडने के बाद उस परगने का क्या हुआ? ये पोथियाँ इन प्रश्नो पर कोई भी प्रकाश नही डालती हैं। फेहरिस्त० की बहियों मे केवल यही लिखा है कि रतनसिह ने सितम्बर २३, १६५५ ई० तक जालोर पर राज्य किया। रतनसिंह ने जालोर क्यो छोड़ी, इस प्रश्न का उत्तर उक्त बहियो मे भी नही मिलता है।

जोधपुर राज्य की जिस ख्यात का उपयोग रेऊ ने किया है, उसमे इन सब प्रश्नो का पूरा २ उत्तर मिलता है। उस ख्यात मे पृ० ८६ पर लिखा है :—

"स० १७१२ वि० (चैत्रादि सवत के अनुसार १७१३ वि०) के जेठ-माह मे राव रतन महेशदासोत के जालोर की आमदनी से पूरा नही पडता था, वहाँ कुछ भी उपजता नही था और वहाँ उसे खाने को भी पूरा नही मिलता था, इसलिए वह जालोर छोड़कर रतलाम की ओर चला गया। पादशाह सारी बातें जानता था। उसने विचार कर देखा कि जिस किसी भी जागीरदार को जालोर का परगना दिया गया उसे हमेशा कमी ही रही, वहाँ की आमदनी पूरी नही पड़ी। इसलिए पादशाह ने महाराजा (जोधपुर नरेश) को कहा—

'जालोर लो और मलारणा का परगना वापिस भेट कर दो'। महाराजा ने अर्ज की—'वहा कुछ भी उपजता नही, वहाँ की प्रजा बहुत ही उपद्रवी है एवं वहाँ काफी सैनिक रखने पडते है और यहाँ शाही दरबार मे भी सैनिको के साथ उपस्थित रहना पडता है।' परन्तु फिर भी पादशाह ने जालोर महाराजा के नाम पर लिख ही दी। तब तो महाराज ने मुशी सुदरदास जयमलोत को, जो तब रेवाड़ी मे था, जालोर भेजा, और वहाँ मियाँ फरासत ने सुदरदास से भी पहले जाकर जालोर पर अधिकार स्थापित किया।"

अतएव जोधपुर की ख्यात के उद्धरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जालोर परगने की आमदनी मे रतनसिह का काम न चला एव उसने शाहजहाँ की सेवामे प्रार्थना कर अपने इस परगने को बदलवा लिया। जालोर वापस लेकर रतनसिह को।मालवा मे रतलाम आदि परगने दिए। यह बदला-बदली प्रधानतया आर्थिक कारणो से ही की गई थी।

(२) दूसरा प्रश्न—रतलाम आदि परगने कब मिले?

रतलाम आदि परगने मिलने के अब तक कई एक सन्-संवत् दिए गए है। ख्यातो या दन्तकथाओ के ही आधार पर इन सन्-संवतों का उल्लेख किया गया है। 'तवारीख़-इ-मालवा' मे रतलाम की स्थापना सोमवार, जनवरी ८, १६४९ ई० (माघ सुदी ५, स० १७०५ वि०) के दिन होना लिखा है। परन्तु उस दिन रतनसिह लाहौर मे कन्धार पर पहली चढाई मे जाने की तैयारी कर रहा था। पुन. राजव्यास की सनद एव फेहरिस्त० के उल्लेखो के आधार पर यह बात निश्चितरूपेण कही जा सकती है कि सन् १६५१-२ ई० तक रतनसिह ने जालोर परगना नहीं छोडा था।

गुरुजी की पोथी एव ख्यातो के अनुसार रतनसिह स० १७०९ वि० (सन् १६५२-३ ई०) मे मालवा मे आया, पहिले पहल धराड़ (रतलाम से ७ मील दक्षिण-पूर्व मे स्थित एक कस्बा) में रहा और बाद में माघ सुदी ५, स० १७११ वि० (फरवरी १, १६५५ ई०) को अपनी राजधानी रतलाम की स्थापना की। ख्यातो के अनुसार उक्त दिन शनिवार था, परन्तु फरवरी १, १६५५ ई० को गुरुवार आता है (यह गणना स्वामी कन्नू पिल्ले कृत 'इडियन एफीमरीज' के ही अनुसार है)।

किन्तु अन्य ऐतिहासिक ग्रथो के आधार पर यह पहिले ही बताया जा चुका है कि सन् १६५२ ई० के प्रारम्भ से लेकर सन् १६५४ ई० के प्रारम्भ तक रतनसिह लाहौर और कन्धार की ओर ही रहा। पुन. सन् १६५४ ई० मे भी सितम्बर ४ को वह शाही सेना के साथ चित्तौड भेजा गया था और जनवरी, १६५५ ई० के अन्त मे वहाँ से लौटकर शाही सेना के साथ ही वह भी दिल्ली पहुँचा था। ऐसी हालत में पोथियो और ख्यातो मे दिए गए उपर्युक्त विवरण, सन्-सवत् तथा तिथियाँ कहाँ तक विश्वसनीय है, यह बताना अनावश्यक प्रतीत होता है।

फेहरिस्त० की बहियो मे सिर्फ़ यही लिखा है कि रतनसिंह ने सितम्बर २३, १६५५ ई० तक जालोर पर राज्य किया। इस उद्धरण से यह बात निश्चितरूपेण कही जा सकती है कि उक्त तारीख से पहिले रतनसिह जालोर पर ही राज्य कर रहा था।

जोधपुर की ख्यात का जो उद्धरण ऊपर दिया गया है, उसके अनुसार रतनसिह स० १७१३ वि० (चैत्रादि संवत) के ज्येष्ठ मास (अप्रेल २९ से मई २७, १६५६ ई०) मे जालोर छोड़कर रतलाम चला गया। ख्यात के इस समय-निर्देश एव बहियो के उपर्युक्त उल्लेख मे कोई सात माह का फरक पडता है। मुगल काल

मे जागीरो पर अधिकार किसी निश्चित साल की एक या दूसरी फसल के प्रारम्भ से ही दिया जाता था, और उससे पहिले की फसल की आमदनी का पूरा २ हिसाब हो चुकने के बाद ही जागीरदारो की बदला-बदली हो पाती थी। एव सात माह का यह फरक केवल एक फसल का ही है। वहियो के अनुसार रतनसिह ने स० १७१२ वि० (सन् १६५५ ई०) की खरीफ (सियालू) फसल की, और ख्यात के अनुसार स० १७१२ वि० (सन् १६५५-६ ई०) की रबी (उन्हालू) फसल की वसूली के बाद ही रतनसिह जालोर से रवाना हुआ। अतएव अनुमान यही होता है कि रतनसिह ने सितम्बर, १६५५ ई० के बाद एव मई, १६५६ ई० से पहिले रतलाम आदि परगने मिलने पर ही जालोर छोडी थी। ख्यात मे दिए गए इस मास और सवत् के ठीक होने की पुष्टि एक और जरिये से भी होती है।

गुरुजी की पोथियो मे लिखा है कि 'रतनसिह को जागीर मे मिलने से पहिले रतलाम का परगना पृथ्वीराज राठौड नामक शाही मनसबदार के अधिकार मे था। यह पृथ्वीराज राठौड, बल्लू भारमलोत का पुत्र था, उसका मनसब तीन हजारी का था। सं० १७०३ वि० (सन् १६४६-७ ई०) मे वह शाही सेना के साथ दक्षिण की चढाई पर गया था, वही उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद शाहजहॉ ने रतलाम का परगना रतनसिह को जागीर मे दे दिया और पृथ्वीराज राठौड़ के पुत्र जगतसिह को नोलाई (बड-नगर) का परगना मिला, किन्तु जगतसिह तो रतलाम का परगना चाहता था, एव वह बहुत ही असन्तुष्ट हुआ।'

इस विवरण मे जिस पृथ्वीराज राठौड़ का उल्लेख है वह शाह-जहॉ का सुप्रसिद्ध साथी और विश्वासपात्र सरदार पृथ्वीराज राठौड़ ही है। (ख्यात०, १, पृ० १६६. नैणसी०, २, पृ० ४०८)। पाद०

और वारिस० मे यत्र-तत्र उसका उल्लेख मिलता है और मा० उ० में (१, पृ० ४२९-४३१) उसकी सक्षिप्त जीवनी दी है। पृथ्वीराज का मनसब दो हजारी जात–दो हजार सवार का था। मनसब सम्बन्धी इस त्रुटि एव मृत्यु के सवत् सम्बन्धी भूल को छोडते हुए गुरूजी० मे दिया गया बाकी विवरण ठीक और विश्वसनीय ही है। दिसम्बर १६५५ ई० मे पृथ्वीराज राठौड मालवा मे था और वही से शायस्ता खॉ के साथ गोलकुण्डा पर चढाई करने मे औरगजेब की मदद करने के लिए वह दक्षिण भेजा गया था (वारिस०, २, प० १०९ ब)। पृथ्वीराज राठौड इस चढाई मे लौटकर नही आया। औरगजेब ने फरवरी ६, १६५६ ई० को गोलकुण्डा के किले का घेरा डाला, और शायस्ता खॉ के साथ पृथ्वीराज राठौड भी फरवरी २१, १६५६ ई० को औरगजेब की इस सेना मे जा मिला (वारिस०, २, प० ११० अ, १११ व)। इसके बाद पृथ्वीराज का कोई भी उल्लेख इतिहास-ग्रथो मे नही मिलता है। वारिस० (२, प० १२४ ब) और मा० उ० (१, पृ०४३१) मे पृथ्वीराज की मृत्यु के दिन या माह का कोई उल्लेख नही हें, केवल यही लिखा है कि वह इसी वर्ष मर गया। पृथ्वीराज ने न तो मार्च १२, १६५६ ई० के युद्ध मे भाग लिया और न मई १, १६५६ ई० को ही शायस्ताखॉ के साथ वह मालवा को लौटा। अतएव अनुमान यही होता है कि गोलकुण्डा पहुँचने के कुछ ही दिन बाद पृथ्वीराज की मृत्यु हो गई, और मार्च या अप्रेल, १६५६ ई० मे पृथ्वीराज राठौड के अन्य परगनो के साथ रतलाम परगना भी पुन खालसा हो गया। पृथ्वीराज की मृत्यु के बाद ही इस प्रकार रतलाम परगना रतनसिह को मिला।

इन सब बातो को ध्यान मे रखते हुए रतनसिह को रतलाम

आदि परगने मिलने का विवरण यो लिखा जा सकता है। सन् १६५५ ई० मे चित्तौड की चढाई से वापस लौटने पर जब रतनसिह पुन जालोर पहुँचा तो उसने पूरी देख-भाल कर यह जान लिया कि जालोर परगने की जो आमदनी वह वसूल कर पाता है उससे किसी भी हालत मे उसका काम नही चल सकेगा। अतएव सन् १६५५ ई० के अन्तिम महीनो मे जब रतनसिह पुन शाही सेवा मे दिल्ली पहुँचा तो उसने अपनी आर्थिक कठिनाइयोको शाहजहॉ तक पहुँचाया। दारा शिकोह के सामने भी रतनसिह ने सारी परिस्थिति खोल कर रख दी। दाराशिकोह रतनसिह से बहुत ही प्रसन्न था। इन दिनो शासन सम्बन्धी मामलो मे शाहजहॉ उसी की राय के अनुसार चलता था। अतएव जब दारा ने बहुत आग्रह किया तो शाहजहॉ ने रतनसिह की वीरता तथा एकनिष्ठ स्वामी-भक्ति का खयाल कर हुक्म दिया कि जालोर का परगना खालसा कर उसके बदले मे रतनसिह को और कोई परगने दे दिए जावे। रतन-सिह के सौभाग्य से इसी समय पृथ्वीराज राठौड की मृत्यु की सूचना दिल्ली पहुँची, जिस पर अप्रेल, १६५६ ई० मे रतलाम और मालवा के अन्य परगने रतनसिह को प्रदान कर दिए गए। स० १७१२ वि० (१६५५-६ ई०) की रबी (उन्हालू) फसल तब तक आ चुकी थी। रतलाम आदि जागीर के नए परगनो की रबी फसल की आमदनी रतनसिह को प्राप्त हो सकना शक्य नही था। ऐसी परि-स्थिति मे खरीफ की वसूली के बाद ही रतनसिह ने जालोर छोड़ दी हो और एक सारी फसल भर वह बिना जागीर के ही रहा हो, यह एक अनहोनी बात जान पडती है। एव यह अधिक सभव है कि इस रबी फसल की वसूली करने के बाद ही मई, १६५६ ई० (ज्येष्ठ १७१३ वि०) मे रतनसिह जालोर छोडकर चला आया।

पूर्ण विचार के बाद ख्यात मे दिया गया विवरण एव माह और सवत् अधिक मान्य जान पडता है।

रतलाम चले आने के कोई डेढ वर्ष बाद ही रतनसिह ने अपनी स्त्रियो तथा अन्य कुटुम्बियो को जालोर से रतलाम बुलवाया।

(३) तीसरा प्रश्न—रतनसिंह को मालवा में कितने परगने मिले? उनकी आय क्या थी?

इस प्रश्न पर विचार करने से पहिले मुगल शासन काल मे प्रचलित मनसब, जागीरे आदि देने तथा तत्सम्बन्धी अधिकारो के बारे मे कुछ मोटी-मोटी बातो का उल्लेख किया जाना आवश्यक है। इनकी जानकारी होने पर कई एक गलतियो से बच सकते है।

मुगल जमाने मे जागीरे या जमीदारियाँ दी जाती थी तो उनकी आय का उल्लेख सर्वदा "दामो" मे ही किया जाता था, रुपयो मे नही। वेतन या जागीरो की आय को दामो से रुपयो मे बदलने की दर निश्चित थी, चालीस दाम के बराबर एक रुपया समझा जाता था (इर्विन०, पृ० ६)। पुन जो जागीरे दी जाती थी, वे दो प्रकार की होती थी—वशपरम्परागत या व्यक्तिगत। मनसब के साथ दी गई जागीरे व्यक्तिगत ही होती थी, और उन्हे प्राय निरतर बदलते रहते थे। किसी भी मनसबदार या अमीर के मरने पर उसके आधीन वशपरम्परागत जागीर एव जमीदारी को छोडकर बाकी सब व्यक्तिगत जागीर जब्त हो जाती थी, और उसके उत्तराधिकारी को मनसब मिलने पर उस मनसब के लिए आवश्यक नई जागीर दी जाती थी। (आईन०, १, पृ० २५२, २७०-१; इर्विन०, पृ० १२-१६)।

रतनसिह को रतलाम आदि परगनो की यह नई जागीर जालोर

की जागीरो के बदले मे ही मिली थी, अतएव यह नई जागीर उन्ही शर्तो एव लगभग उसी आय की होगी, जिन शर्तो एव जिस आय की जालोर वाली जागीर थी। रतनसिह की जालोर वाली जागीर का विशेष विवरण प्राप्य नही है, तथापि उस जागीर के सम्बन्ध में निम्नलिखित बाते निश्चयपूर्वक कही जा सकती है ––

(१) जालोर की जागीर महेशदास को वतन के रूप में मिली थी, एव इस नई जागीर का भी कुछ भाग उसे वशपरम्परागत रूप मे मिला होगा।

(२) इस बदला-बदली के समय रतनसिह का मनसब दो हजारी जात-सोलह सौ सवारो का था, एव उसकी सारी जागीर की आमदनी इस मनसब के अनुरूप ही होगी।

मनसब के अनुरूप रतनसिह की जागीर की आमदनी क्या हो सकती थी ? रतनसिह के सवारों की सख्या उसकी सवारी जात से कम थी, एव वह दो हजारी जात मे दूसरे दर्जे का मनसबदार था। उस हिसाब से उसे दो हजारी जात की तनख्वाह के ३७ लाख दाम या रु० ९२, ५००) मिलते थे। इस रकम मे उसे अपनी निजी सवारी, अपने कुटुम्ब का व्यय तथा निजी रक्षा के लिए कुछ सवारो का खर्चा चलाना पडता था। इन ३७ लाख दामो के अतिरिक्त उसके ताबीन सोलह सौ सवारो की तनख्वाह भी उसे मिलती थी। प्रति सवार की ८ हजार दाम या रु० २००) प्रति वर्ष के हिसाब से तनख्वाह मिलती थी। सारे ताबीन सवारो की तनख्वाह मनसबदार ही लेता था, और उस तनख्वाह का ५ प्रतिशत भाग मनसबदार अपने निजी व्यय के लिए रख कर बाकी तनख्वाह सिपाही या सवारो मे बॉट देता था। परन्तु ताबीन के सिपाहियो को सारे साल भर तनख्वाह नही मिलती थी, प्राय चार, पॉच या छ माह की ही तनख्वाह

उन्हे दी जाती थी। किस मनसब के लिए कितने माह की तनख्वाह दी जाने का हुक्म हुआ है इसका स्पष्ट उल्लेख कही भी नही मिलता है, एव रतनसिह के सवारो की तनख्वाह की रकम को पूरी तरह निश्चय करना सभव नही। यदि यह मान ले कि रतनसिह को उसके सवारो की छ माह की तनख्वाह मिलने का हुक्म था तो उसे कोई ६४ लाख दाम या रु० १, ६०,०००) मिलते थे। इनमे से कोई ३, २०,००० दाम या रु० ८, ०००) रतनसिह को मिलते थे और बाकी रतनसिह के सवारो या सिपाहियो मे बँट जाते थे। (इर्विन०, पृ० ६-१०)।

इस प्रकार रतनसिह की कुल आमदनी का व्यौरा दामो मे यो होता है —

(१) रतनसिह की निजी आमदनी—
दो हजारी जात की तनख्वाह— ३७,००,००० दाम

(२) सोलह सौ सवारो की तनख्वाह से—
(अ) रतनसिह का निजी विभाग—५%— ३,२०,००० दाम
(ब) सवारो या सिपाहियो की तनख्वाह— ६०,८०,००० दाम

कुल—१,०१,००,००० दाम

इस प्रकार सन् १६५६ ई० मे सब मिलाकर रतनसिह की आमदनी कोई एक करोड दाम या ढाई लाख रुपयों के लगभग होगी, यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है।

सन् १६३० ई० मे जालोर परगने की आमदनी १, १५, १०, ८७२ दाम या रु० २,८७, ७७१-१२ आने ९ पाई की थी (ख्यात० १, पृ० १५४)। पुन. इन पिछले २०-२५ वर्षो मे उक्त आमदनी में विशेष घटा-बढी होना सभव नही जान पडता है। अतएव यही

अनुमान होता है कि इस बदला-बदली के समय केवल जालोर परगना ही रतनसिंह के अधिकार मे रहा होगा।

अब प्रश्न यह उठता है कि उक्त जालोर परगने के बदले मे रतनसिंह को मालवा मे क्या प्राप्त हुआ ? यह ऊपर ही कहा जा चुका है कि फारसी ग्रन्थो मे इस बदला-बदली का कोई भी उल्लेख नही मिलता है। जोधपुर राज्य की ख्यात का जो उद्धरण ऊपर दिया गया है, उसमे रतनसिंह के रतलाम चले जाने के अतिरिक्त अन्य किसी बात का कोई खुलासा नही किया है। ऐतिहासिक आधार ग्रन्थो मे केवल दो ही स्थानों मे इस प्रश्न का विस्तृत उत्तर मिलता है।

(१) रतनरासो के अनुसार रतनसिंह को मालवा मे बावन लाख का परगना मिला, रतलाम उसके नए राज्य का केन्द्र था, और साथ ही बदनावर का प्रदेश भी उसे प्राप्त हुआ। (रासो०, पृ० ८२)।

(२) गुरूजी० के विवरण के अनुसार भी रतनसिंह को बावन लाख की जागीर प्राप्त हुई। उस जागीर के अन्तर्गत उसे निम्न-लिखित बारह परगने मिले।[१]

---

[१]इन बारह परगनो की भौगोलिक विवेचना एवं ऐतिहासिक विवरण:—

(१) धराड़:—वर्तमान रतलाम राज्य के अन्तर्गत रतलाम से ७ मील दक्षिण-पूर्व में स्थित कसबा। ख्यातो के अनुसार रतलाम शहर की स्थापना रतनसिंह ने की, एव उससे पहिले रतलाम परगना, धराड़ परगने के नाम से सुप्रसिद्ध था। परन्तु ख्यातो का यह कथन ठीक नहीं, अकबर के समय भी रतलाम परगने का उल्लेख मिलता है। (आईन०, २, पृ० १९८)।

(२) बदनावर—वर्तमान धार राज्य के अन्तर्गत, रतलाम से कोई २५ मील दक्षिण-पूर्व में स्थित शहर। अकबर के समय भी यह शहर उस परगने का प्रधान केन्द्र था। (आईन० २, पृ० १९८)।

१	धराड	२	बदनावर
३	तीतरोद	४	ददाल्या
५	पडावा	६	कोठडी
७	आगर	८	नाहरगढ
९	आलोट	१०	गडगुचा
११	रामगढ	१२	बडोद

---

(३) तीतरोद—वर्तमान सीतामऊ राज्य के अन्तर्गत सीतामऊ शहर से ४½ मील पूर्व में स्थित गाँव। अकबर के समय में भी यह स्थान उस परगने का केन्द्र था। (आईन०, २, पृ० २०८)।

(४) ददाल्या—नक्शे में इस नाम का कोई गाँव नहीं मिलता है। आईन० के अनुसार कोठडी-पड़ावा सरकार के अन्तर्गत एक महल "दक्‌दुधाल्या" नाम का था; सभव है ददाल्या इसी नाम का भ्रष्ट स्वरूप हो। (आईन०, २, पृ० २०६)।

कहीं कही ददाल्या के बजाय "पठालिया" (रतन०, पृ० २७) और कहीं "भीलार" (रतलाम०, पृ० ५; प्राचीन०, ३, पृ० ३६१) नाम लिखे मिलते है, परन्तु नक्शो में इन नामो के स्थानो का पता नहीं मिलता है।

(५) पड़ावा—वर्तमान टोक राज्य के अन्तर्गत पड़ावा परगने का प्रधान कस्बा; शामगढ़ रेलवे स्टेशन से २४ मील पूर्व में, २४°६′ उत्तर एव ७६° ३′ पूर्व पर स्थित है।

(६) कोठड़ी—वर्तमान इन्दौर राज्य के सुनेल परगने के अन्तर्गत, उपर्युक्त पड़ावा से कोई तीन मील पश्चिम में स्थित है। मुग़ल काल में कोठड़ी-पड़ावा सरकार के अन्तर्गत कोठड़ी-पड़ावा के दो संयुक्त महल थे एवं उक्त सरकार के प्रधान स्थान थे। (आईन०, २, पृ० २०६)।

(७) आगर—वर्तमान ग्वालियर राज्य में उज्जैन से ४० मील उत्तर-पूर्व में, २३° ४३′ उत्तर एवं ७६-° १′ पूर्व पर स्थित स्थान। मुग़ल काल में

ख्यातो मे यह भी लिखा है कि रतनसिह के धरमत के युद्ध मे मारे जाने के बाद इन परगनो मे से रतलाम का परगना तो रतनसिह के ज्येष्ठ पुत्र रामसिह के अधिकार मे रहा, कुछ परगने रतनसिह के छोटे पुत्रों को जागीर मे प्राप्त हुए तथा बाकी रहे कई परगने औरगजेब ने जब्त कर लिए। गुरूजी० के अनुसार रतनसिह के छोटे पुत्रो को निम्न-लिखित परगने जागीर मे मिले थे —

सरकार सारंगपुर में आगर नामक महल का यह केन्द्र था। (आईन०, २, पृ० २०३)।

(८) नाहरगढ़—वर्तमान ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत मन्दसौर सूबे में मन्दसौर से कोई १२ मील उत्तर-पूर्व में स्थित कसबा। अकबर के समय में इस नाम का कोई भी महल या परगना न था; संभव है तब यह कयामपुर परगने के अन्तर्गत हो। (आईन०, २, २०८)।

(९) आलोट—वर्तमान देवास राज्य के अन्तर्गत यह स्थान, नागदा-शामगढ के बीच, इसी नाम का रेलवे-स्टेशन है। मुगल काल में यह स्थान कोठड़ी-पड़ावा सरकार के अन्तर्गत एक परगने का केन्द्र था। आईन० में 'आलोट' नाम भूल मे 'आसोप' छप गया है। (आईन०, २, पृ० २०९)।

(१०) गड़गुचा—वर्तमान देवास राज्य में स्थित आलोट से कोई आध मील पश्चिम में स्थित कसबा। एक विभिन्न परगने के रूप में इसका कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता है।

(११) रामगढ़—वर्तमान इन्दौर राज्य के पेटलावद परगने में पेटलावद से चार मील उत्तर में यह स्थान है। ईसा की १७वीं शताब्दी के आरभ से ही और विशेषतया औरगजेब के शासन-काल में एक अलग परगने के रूप में रामगढ का उल्लेख मिलता है। (झाबुआ राजघराने की शाही सनदें; अख़० औरं०, २४, पृ० २६९)।

(१२) बड़ोद—वर्तमान ग्वालियर राज्य के आगर परगने में आलोट से १७ मील पूर्व में यह स्थान है। अकबर के समय में कोठडी-पडावा सरकार के अन्तर्गत बड़ोद नामक महल का केन्द्र-स्थान था। (आईन०, २, पृ० २०९)।

रायसिंह—दूसरा पुत्र—पहिले आगर—कानड का परगना मिला; बाद मे उसे बदनावर का परगना प्राप्त हुआ ।
करणसिह—चौथा पुत्र—तीतरोद परगना मिला, उसका प्रधान स्थान सीतामऊ कसबा था ।
छत्रसाल—पाँचवा पुत्र—पहले लदूना का कसबा प्राप्त हुआ, बाद मे तीतरोद और नाहरगढ के परगने प्राप्त हुए ।
अखेराज—छठवाँ पुत्र—डग-पड़ावा का परगना प्राप्त हुआ ।
जेतसिह—आठवाँ पुत्र—भगोर (सीतामऊ राज्य के अन्तर्गत चम्बल के उत्तर-पश्चिमी किनारे पर स्थित स्थान) और उसके आस पास के गाँव उसे प्राप्त हुए थे ।
सकतसिह—बारहवाँ पुत्र—उसको मुलथान (धार राज्य मे बदनावर परगने के अन्तर्गत स्थान) और उसके आसपास के गाँव प्राप्त हुए थे ।

बडवा भाटों की ख्यातो और राणीमगा की पोथी मे भी यही विवरण लिखा मिलता है । रतन०, पृ० ५३-५४ पर दिया गया सारा वृत्तान्त भी प्रधानतया इन्ही के आधार पर लिखा गया है । रतन० के लेखक ने न जाने किस आधार पर उक्त विवरण मे दो बाते बदल दी है । (पृ० ५४)। उसने रतनसिह की जागीर की आमदनी को बावन लाख के स्थान पर ५३ लाख होना बताया है, और जहाँ ख्यातकारो ने यह

कहीं कहीं बडोद के स्थान पर कानड़ परगने का उल्लेख मिलता है (रतन०, पृ० २७; रतलाम०, पृ० ५; प्राचीन०, ३, पृ० ३६१) । कानड़ वर्तमान ग्वालियर राज्य के आगर परगने में आगर से १० मील दक्षिण-पूर्व में स्थित एक कस्बा है । मुग़ल काल में यह स्थान सारगपुर सरकार के अन्तर्गत होगा; किसी महल या परगने के केन्द्र-स्थान के रूप में कानड का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता है ।

खुलासा नहीं किया है कि उक्त आमदनी दामों में थी या रुपयों में, रतन० के लेखक ने उक्त आमदनी को रुपयों में ही होना लिखा है। रतलाम० (पृ० ५) में भी रतन० के ही इस कथन को दुहराया गया है, एवं प्रधानतया रतलाम० के ही आधार पर रेऊ ने भी रतनसिंह की जागीर की आमदनी ५३ लाख रुपये होना बताया है (प्राचीन०, ३, पृ० ३९१)।

ख्यातों में दिया गया है उक्त विवरण कहाँ तक सत्य हो सकता है, एवं ऐतिहासिक तथा तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार वह विवरण किस हद तक ठीक है यह जाँच करना बहुत आवश्यक है।

सबसे पहिले यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि रेऊ और रतन० के लेखक का यह कथन कि रतनसिंह को ५३ लाख रुपयों की आमदनी की जागीर मिली थी, पूर्णतया गलत है। दामों के हिसाब से इस जागीर की आमदनी सवा इक्कीस करोड़ दाम के के लगभग होती है। जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह को सात हज़ारी ज़ात–७००० सवार का मनसब प्राप्त था, जिसमें से ५ हज़ार सवार दो अस्पा थे, तथापि उसकी जागीर की आमदनी भी कुल मिला कर इग्यारह करोड़ दामों से अधिक न थी (ख्यात०, १, पृ० १९२-३)।

ख्यातों का यह कथन कि रतनसिंह को बावन लाख का परगना मिला अपूर्ण होते हुए भी पूर्णतया असत्य नहीं कहा जा सकता। मनसब के अनुसार रतनसिंह की पूरी जागीर की आमदनी एक करोड़ दाम से अधिक ही होना चाहिए थी, अतएव यह मानना सम्भव नहीं कि इस बदला-बदली के समय रतनसिंह को पूरी जागीर न मिलकर केवल बावन लाख दाम की ही जागीर मिली। रतनसिंह को इस अवसर पर मालवा में अवश्य ही उसके मनसब के अनुरूप पूरी जागीर मिली होगी, जिसमें से बावन लाख दाम की जागीर तो वंशपरम्परा-

गत रूप मे और बाकी जागीर मनसब की घटा-बढी के अनुसार व्यक्ति-गत ही रही होगी। रतनसिह एव उसके उत्तराधिकारियो की जागीर की जो जानकारी प्राप्त है, उससे भी इसी अनुमान की पुष्टि होती है।

अब अगला प्रश्न यह है कि कौनसा परगना या परगने रतनसिह को वशपरम्परागत जागीर मे मिले थे। रतनसिह के उत्तराधिकारी का विवरण देखते हुए यह स्पष्ट है कि रतलाम का परगना रतनसिह को वशपरम्परागत मिला था। अकबर के समय मे रतलाम परगने की आमदनी ४४, २१, ५४० दाम की थी (आईन०, २, पृ० १९८)। जोधपुर के महाराजा सूरसिह जी की जागीर मे रतलाम का परगना रह चुका था, एव सन् १६१९ ई० मे उस परगने की आमदनी ४० लाख दाम के लगभग मानी जाती थी (ख्यात०, १, पृ० १२३)। अतएव यह असम्भव नही कि सन् १६५६ ई० मे रतलाम परगने की ही आमदनी बढ कर ५२ लाख दाम के लगभग हो गई होगी। अगर रतलाम परगने की आमदनी बावन लाख दाम से कम रही होगी तो उस परगने के आसपास के कुछ गाँव उस परगने मे मिलाकर उस परगने की आमदनी ही बावन लाख दाम की कर दी गई होगी। अतएव यह बात निश्चितरूपेण कही जा सकती है कि रतनसिह को केवल रतलाम का परगना ही वशपरम्परागत रूपेण मिला था, और तब उस परगने की आमदनी बावन लाख दाम थी।

रासो० के अनुसार रतनसिह को बदनावर का परगना भी जागीर में मिला था (पृ० ८२)। परन्तु रासो० का यह कथन केवल अशत' ही ठीक हो सकता है। अकबर के समय मे इस परगने की आमदनी साढे तीस लाख दाम से कुछ अधिक ही थी (आईन०, २, पृ० १९८)। अतएव रतनसिह की वशपरम्परागत बावन लाख दाम की जागीर मे इस परगने का भी सम्मिलित होना सम्भव नही

जान पडता है । पुन औरगजेब क शासन काल मे रतनसिह के ज्येष्ठ पुत्र एव उत्तराधिकारी, रामसिह, तथा उदयपुर के महाराणा राज-सिह के पुत्र एव वर्तमान बनेडा घराने के आदि-पुरुष भीमसिह को भी बदनावर परगने से ही नई जागीरे दी गई थी । अतएव यही परिणाम निकलता है कि यह परगना रतनसिह को वशपरम्परागत जागीर मे नही मिला था, उसके मनसव के अनुरूप जागीर पूरी करने को ही व्यक्तिगत रूप मे मिला था ।

ख्यातकारो ने रतनसिह को वशपरम्परागत बारह परगने मिलने का उल्लेख किया है । परन्तु बावन लाख दाम की आमदनी वाले रतलाम परगने के अतिरिक्त अन्य परगनो के बारे मे यह कथन पूर्णत ठीक नही जान पडता है । यह पहिले ही बताया जा चुका है कि सन् १६५६ ई० मे इस बदला-बदली के समय रतनसिह को कुल मिलाकर एक करोड दाम से अधिक आमदनी की जागीर मिली होगी । अतएव वशपरम्परागत प्राप्त बावन लाख दाम के रतलाम परगने को छोडते हुए उसे कम से कम पचास लाख दाम की और भी जागीर व्यक्तिगतरूपेण अवश्य ही मिली थी । पुन अगस्त १६, १६५७ ई० को जब रतनसिह के मनसब मे चार सौ सवार और बढे, तब इस पहिले वाली जागीर के अतिरिक्त जात की निजी तनख्वाह के तीन लाख दाम और इन चार सौ सवारो की तनख्वाह के सोलह लाख दाम मिला कर कुल कोई उन्नीस लाख दाम की नई जागीर रतनसिह को और भी मिली । इस प्रकार सन् १६५८ ई० मे मृत्यु के समय कोई उनसत्तर लाख दाम की आमदनी की जागीर व्यक्तिगत रूपेण रतनसिह के अधिकार मे थी ।

रतलाम के अतिरिक्त जिन अन्य परगनो के नाम ख्यातो मे दिये हुए है, अकबर के समय उनकी पूरी-पूरी आमदनी निम्नलिखित थी.—

तीतरोद—	५, ००, ००० दाम
बडोद—	९, २३, ६६७ दाम
कोठडी-पडावा—	१८, ५६, ५६६ दाम
आगर—	४, ७२, ३६२ दाम
बदनावर—	३०, ५६, १९३ दाम
आलोट—	१७, ३३, ९२७ दाम
दक्दुधाल्या (ददाल्या?)	४, ५८, १४४ दाम

(आईन०, २, पृ० १९८, २०३, २०८, २०९)।

इस प्रकार इन आठ परगनो की पूरी-पूरी आमदनी कोई नब्बे लाख दाम की होती है। इनके अतिरिक्त ख्यातो के अनुसार रतनसिह को नाहरगढ, गडगुचा तथा रामगढ के आस-पास भी बहुत कुछ जागीर मिली। अतएव ख्यातो के कथन पर विचार करते हुए यह बात निश्चितरूपेण कह सकते है कि उक्त आठ परगनो की बहुत कुछ आमदनी तथा अन्य बाकी रहे तीन स्थानो के आस-पास की भी कुछ जागीर रतनसिह को उसके मनसब के अनुरूप जागीर पूरी करने को व्यक्तिगत रूपेण प्राप्त हुई थी।

व्यक्तिगत रूपेण प्राप्त हुई इस जागीर का रतनसिह के मारे जाने के बाद जब्त होना स्वाभाविक और नियमानुसार ही था। रतनसिह को वशपरम्परागत प्राप्त रतलाम परगना, रतनसिह की मृत्यु के बाद उसके ज्येष्ठ पुत्र एव उत्तराधिकारी रामसिह को मिला। मुगल राज्य के इन नियमो से अनभिज्ञ तथा वशपरम्परागत जागीर और व्यक्तिगत मनसब की तनख्वाह की जागीर के भेद से अपरिचित ख्यातकारो ने व्यक्तिगत रूपेण प्राप्त इन परगनो एव जागीर की जब्ती का कारण रतनसिह द्वारा औरगजेब का विरोध बताया है, जो ठीक नही।

औरगजेब का विरोध करने वाले कई थे एव केवल रतनसिंह के उत्तराधिकारी के साथ ही ऐसी सख्ती विशेषरूपेण की जाने का कोई कारण नही देख पडता है। इसके विपरीत 'आलमगीर-नामे' मे तो स्पष्ट शब्दो मे लिखा है कि "रतन राठौड को जो जागीर प्राप्त थी, उसी जागीर का फरमान उसके पुत्र रामसिह राठौड को दिया गया।" (पृ० १४०)। यहाँ भी वशपरम्परागत जागीर की ही ओर निर्देश किया गया है।

ख्यातो के विवरण के अनुसार रतनसिह ने इन बारह परगनो मे से कुछ परगने या कई गाँव अपने छोटे पुत्रो को गुजारे के लिए जागीर मे दे दिये थे। इस बँटवारे का जो विवरण ज्ञात हो सका ऊपर दिया गया है। यह बात विशेषरूपेण उल्लेखनीय है कि उक्त जागीरे रतनसिह को वशपरम्परागत प्राप्त रतलाम परगनेसे बाहर दी गई थी। एव यह प्रश्न उठता है कि क्या रतनसिह व्यक्तिगत रूपेण प्राप्त जागीर के परगनो का यो बँटवारा कर सकता था एव क्या उसने ऐसा बँटवारा किया था ? मुगल साम्राज्य के नियमानुसार कोई भी मनसबदार व्यक्तिगतरूपेण प्राप्त जागीर का कोई भी हिस्सा दूसरे किसी को वशपरम्परागत रूप मे नही दे सकता था। कोई भी जागीर या आमदनी पुण्यार्थ अवश्य दी जा सकती थी, परन्तु शाही तसदीक होने पर ही वह स्थायी रह सकती थी। रतनसिह ने अपने कुलगुरु को सीतामऊ शहर के पास तीतरोद परगने मे कुछ जमीन पुण्यार्थ दी थी। रतनसिह की मृत्यु के बाद जब तीतरोद परगना जब्त हुआ तब पुण्यार्थ दी गई भूमि का प्रश्न उठा। एव औरगजेब ने शाही सनद द्वारा उक्त पुण्यार्थ दिए गए इस भूमि-दान को स्वीकार कर जब वह जमीन पुन. कुलगुरू को दी तब ही उस जागीर की आमदनी कुलगुरू को प्राप्त हो सकी (गुरूजी० एव गुरूजी के सग्रह मे प्राप्य उक्त

शाही सनद) । ऐसी हालत मे ख्यातो मे दिए गए रतनसिह द्वारा इन परगनो के बँटवारे का वृत्तान्त ठीक नही माना जा सकता है ।

परन्तु साथ ही यह भी स्वीकार करना पडेगा कि ख्यातो का यह कथन कि रतनसिह के उक्त छोटे पुत्रो को वे जागीरे प्राप्त हुई थी, बिलकुल ही गलत नही कहा जा सकता । औरगजेब के शासनकाल के जो अखबारात प्राप्य है उनसे यह स्पष्ट है कि रतनसिह के प्राय सब छोटे पुत्र शाही सेना मे सेवा करते रहे थे एव इस सैनिक सेवा के बदले मे उन्हे कुछ न कुछ शाही मनसब प्राप्त हुआ ही होगा । अतएव शाही मनसबदार बनने पर रतनसिह के छोटे पुत्रो को भी मुगल साम्राज्य की ओर से ये छोटी-मोटी जागीरे प्राप्त हुई थी, और इन्ही जागीरो का ख्यातकारो ने उल्लेख भी किया है । रतनसिह के पुत्र मालवा मे बस गए थे, एव उन्हे भी ये जागीरे मालवा के इसी प्रदेश मे दी गईं, और कई एक जागीरे उन्ही परगनो मे प्राप्त हुईं जो एक समय रतनसिह के ही अधिकार मे रह चुके थे । ये जागीरे रतनसिह की मृत्यु के बाद ही मुगल सम्राट् की ओर से मिली थी । अतएव वर्षो बाद जब ख्यातकार ख्यात लिखने बैठे तो उन्होने यही अन्दाज लगाया कि रतनसिह ने ही ये जागीरे अपने पुत्रो को दी होगी । ख्यातो के विवरण से यह भी स्पष्ट है कि रतनसिह के छोटे पुत्रो को मनसब के लिए दी गई ये जागीरे शाही नियमानुसार निरन्तर बदलती ही रही (गुरूजी०) ।

(४) चौथा प्रश्न—रतनसिंह को यह नई जागीर मालवा में ही क्यों दी गई ?

इस प्रश्न के उत्तर मे अनेकानेक अनुमान लगाए जाते है । रतलाम०, पृ० ५ के आधार पर रेऊ ने इसका कारण बताते हुए लिखा है कि —"लोगो का अनुमान है कि इतनी बड़ी जागीर देने मे बादशाह

का यह भी स्वार्थ था कि वह मालवा के पश्चिम मे एक बलशाली राज्य स्थापित करके गुजरात और दक्षिण के सूबेदारो के आक्रमणों से निश्चिंत हो जाय, क्योकि औरगजेब ने राज्याधिकार प्राप्ति के लिए षडयन्त्र शुरू कर दिए थे ।" (प्राचीन० ३, पृ० ३९१ फुटनोट न० १)। किन्तु यह अनुमान प्रधानतया कपोल-कल्पित एव इस घटना के युगों बाद ही सोच-साच कर बनाया हुआ प्रतीत होता है, तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओ से भी इस अनुमान की पुष्टि नही होती है ।

यह बताया जा चुका है कि रतनसिह की यह जागीर उतनी बडी न थी जितनी कि प्राय वह सोची जाती है । एक करोड या सवा करोड दाम की जागीर देकर दो हजारी जात-सोल्ह सौ सवारो वाले एक मनसबदार से यह आशा करना कि वह गुजरात और दक्षिण के सूबेदारों को शान्त रख सकेगा, हास्यास्पद ही जान पडता है । सत्य तो यह है कि सन् १६५६ ई० मे जब यह बदला-बदली हुई तब तक शाहजादो मे आपसी युद्ध की सम्भावना का किसी को भी खयाल न था । सन् १६५७ ई० के सितम्बर मास मे जब शाहजहॉ बहुत ही बीमार पडा और दारा अपनी सत्ता को सगठित करने लगा तब जाकर कही दारा ने औरगजेब की शक्ति कम करने और उसका सामना करने के लिए मालवा मे आवश्यक प्रबन्ध की ओर ध्यान दिया । सितम्बर, १६५७ ई० मे मीर जुमला को वजीर के पद से हटाकर उसे एव अन्य शाही सेनापतियो को दक्षिण से वापस बुला भेजा, एव दिसम्बर, १६५७ ई० मे शायस्ता खॉ को मालवा की सूबेदारी से हटाकर जोधपुर के महाराजा जसवतसिह को वह सूबेदारी दी (औरग०, १-२, पृ० २८०-२८५) । अतएव रतनसिह को मालवा मे ही जागीर देने का कोई खास राजनैतिक कारण नही दिखाई देता है ।

यह पहिले ही बताया जा चुका है कि जागीर की यह बदला-बदली प्रधानतया आर्थिक कारण से ही हुई थी, एव शाहजहाँ ने रतनसिह को नई जागीर ऐसे सूबे म देने की सोची होगी, जहाँ आमदनी पूरी वसूल न होने की कोई बात आगे चल कर न उठे। मालवा शताब्दियों से एक धन-धान्यपूर्ण प्रान्त माना गया है, एव वहाँ जागीर प्राप्त होने पर रतनसिह को कोई आर्थिक कठिनाई नही होगी, इसी विचार से शाहजहाँ ने मालवा मे ही उसे जागीर देने का निश्चय किया होगा। पुन. महेशदास को पहिले भी यदा-कदा मालवा मे जागीर प्राप्त होती रही थी। जोधपुर के राठौड घराने का भी रतलाम परगने से सम्बन्ध रहा था। पुनः इन पिछले बीस वर्षों से यही परगना पृथ्वीराज राठौड के अधिकार में था। उसी रतलाम परगने से सम्बन्ध स्थापित करने और उसे वतन बनाकर वही बस जाने को रतनसिंह का उत्सुक हो जाना अस्वाभाविक नही जान पडता है।

(५) पाँचवाँ प्रश्न—क्या इस बदला-बदली के समय रतनसिंह का मनसब बढ़ा था और क्या उसके मान में कोई वृद्धि हुई थी ?

रतन०, पृ० २७ पर लिखा है "पडित अमरनाथ जी ने लिखा है कि 'इस जागीरी के साथ ही रतनसिह को से-हजारी का मनसब तथा चॅवर मोरछल और सूरजमुखी वगैरा सन्मान की चीजे मिली थीं'।" इसी प्रकार रेऊ ने भी लिखा है "इसी के साथ बादशाह ने इन्हे राजा का खिताब, तीन हजार सवारो का मनसब, चँवर, मोरछल, सूरजमुखी और माही मरातिब आदि भी दिए।" (प्राचीन०, ३, पृ० ३९१)। इन मे से "राजा के खिताब" की बात को छोड कर और सब बाते रेऊ ने रतलाम० (पृ० ६) के आधार पर लिखी है। 'राजा का

खिताब' दिए जाने का उल्लेख रेऊ ने किस आधार पर किया, यह ज्ञात नही हो सका है। ख्यातो एव उन्ही के आधार पर लिखे गये इतिहास-ग्रन्थ ही रतन०, रतलाम० और प्राचीन० मे दिए गए ऐसे कथनो के एकमात्र प्रमाण है। अतएव उनके इन कथनो को ऐतिहासिक सत्य के रूप मे स्वीकार करने से पहिले उनकी पूरी-पूरी जॉच की जानी चाहिए।

यह पहिले ही बताया जा चुका है कि जागीर की इस बदला-बदली का फारसी ऐतिहासिक ग्रन्थो मे कही भी किसी भी प्रकार का उल्लेख नही मिलता है। जागीर की बदला-बदली का कोई उल्लेख नही पाया जाना समझ मे आ सकता है, किन्तु जिन ऐतिहासिक ग्रन्थो मे सुनहरी तलवार और हाथी-घोडे जैसी चीजो के दिए जाने का भी उल्लेख मिलता है, उन्ही मे उपर्युक्त मनसब एव मान-वृद्धि का कोई उल्लेख नही पाया जाना आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। उपर्युक्त कथनो की सत्यता के बारे मे आशका उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है।

सबसे पहिले राजा के खिताब का प्रश्न उठता है। वारिस० एव कम्बू० मे कही भी रतनसिह के नाम के साथ "राजा" का खिताब नही लिखा गया है। उसके नाम के साथ कही-कही "राव" का खिताब तो अवश्य लिखा मिलता है (वारिस०, १, प० ६० अ, कम्बू०, ३, पृ० २६१)। ख्यात० मे भी रतनसिह के नाम के साथ "राव" का ही खिताब लिखा है (१, पृ० २०७, २२३)। यह बात दूसरी है कि रतनसिह अपनी दी हुई सनदो या तॉबा-पत्रो मे स्वय को "महाराजा" लिखता था (राजव्यास०)। परन्तु यदि शाहजहॉ की ओर से ऐसा खिताब रतनसिह को मिलता तो फारसी ग्रन्थो एव ख्यात० मे अवश्य ही उसका प्रयोग किया जाता। अतएव रतन-

सिह को 'राजा' का खिताब मिलने की बात पूर्णतया असत्य ही जान पडती है।

दूसरा सवाल रतनसिह की मनसब वृद्धि का है। उक्त कथनो के अनुसार इस अवसर पर रतनसिह का मनसब बढा कर तीन हजार सवार का कर दिया गया था। परन्तु ज्ञात ऐतिहासिक आधारो के प्रमाण पर यह निश्चितरूप से कहा जा सकता है कि सन् १६५६ ई० मे रतनसिह का मनसब दो हजार जात–सोलह सौ सवारो का ही था। अगस्त १६, १६५७ ई० को रतनसिह के मनसब मे चार सौ सवार बढा दिए गए थे, जिससे उसका मनसब दो हजार ज़ात–दो हजार सवार का हो गया (कम्बू०, ३, पृ० २६१; मा० उ०, ३, पृ० ४४७)। उसकी मृत्यु तक रतनसिह का मनसब यही रहा, उसमे कोई वृद्धि नही हुई थी (कम्बू०, ३, पृ० ४५८, ख्यात०, १, पृ० २०७)। अतएव यह स्पष्ट है कि रतनसिह का मनसब कभी भी तीन हजारी का नही हुआ था।

चवर और मोरछल का नाम मुगल सम्राटों द्वारा दी जाने वाली सम्मानास्पद वस्तुओ की सूची मे नही मिलता है और न औगरजेब के शासनकाल के अखबारो मे ही उनका कही उल्लेख मिलता है। (आईन०, १, पृ० xx11-xx111, ५२-५३, इर्विन०, पृ० २८-३५)।

सूरजमुखी का फारसी नाम 'आफताबगिर' है। बादशाह के मुख पर धूप न पडने देने के लिए इसका प्रयोग किया जाता था। मुगल साम्राज्य के नियमानुसार 'सूरजमुखी' या 'आफताबगिर' केवल शाही शाहजादो को ही दी जाती थी, एव ऐसी सम्मानास्पद वस्तु का रतनसिंह को दिया जाना सभव नही जान पडता है। इर्विन लिखता है कि " अठारहवी शताब्दी मे मरहठे सेनानायको ने इस

सूरजमुखी को अपने सेनानायकत्व का प्रधान चिह्न माना था और मरहठे सवारो का छोटे से छोटा झुण्ड भी इसे साथ लिए घूमता था।" (ईर्विन०, पृ० ३४)। यह अधिक सभव है कि मरहठे सेनानायको की देखा-देखी मालवा के राजपूत नरेशो ने भी१८ वी शताब्दी मे 'सूरजमुखी' को अपना लिया हो।

माही-मरातिब के बारे मे 'मीरात्-उल-इश्तियाह' के आधार पर ईर्विन लिखता है कि "मुगल साम्राज्य मे यह सबसे बडा सम्मान था, और छ हजारी जात—छ हजार सवार से कम मनसब वाले अमीरों को कभी भी नही दिया जाता था।" (ईर्विन०, पृ० ३३)। ऐसी परिस्थिति मे यह मानना कि शाहजहाँ ने दो हजारी मनसब प्राप्त रतनसिंह को यह सम्मान प्रदान किया होगा कदापि सभव नही।

अतएव इन सारी बातो पर विचार करने से यही परिणाम निकलता है कि उपर्युक्त कथन पूर्णतया निराधार और अविश्वसनीय है। जागीर की इस बदला-बदली के समय न तो रतनसिह का मनसब ही बढा और न उसके मान मे किसी प्रकार की वृद्धि ही हुई।

परिशिष्ट—२

मासिर-उल्-उमरा में दी हुई राठौड़ वीरों की जीवनियाँ[1]

१—महेशदास राठौड़

(मा० उ०, ३, पृ० ४४५-४४७)

महेशदास राठौड़ महाराज सूरसिह के भाई दलपत का पुत्र था। इन्होने आरम्भ मे महाबत खॉ खानखानॉ की सेवा मे वीरता के लिए प्रसिद्धि प्राप्त की। खॉ की मृत्यु पर ८ वे वर्ष मे शाहजहॉ की सेवा मे पहुँच कर पॉच सदी ४०० सवार का मनसब पाया और शाहजादा औरगजेब के साथ (जो जुझारसिह बुँदेला का दमन करने के लिए नियुक्त सेना के सहायतार्थ नियत किया गया था) गया। ९ वे वर्ष मे खाने दौरॉ के साथ नानदेर को भेजा गया। ११वे वर्ष मे मनसब बढ कर हजारी ६०० सवार का हो गया और १५ वे वर्ष मे ४०० सवार और बढा कर तथा झडा प्रदान कर शाहजादा दारा शिकोह के साथ कन्धार भेजा गया। १६ वे वर्ष मे इसका मनसब दो हजारी २००० सवार का हो गया और परगना जालोर रहने के लिए जागीर मे मिला। १९ वे वर्ष मे पॉच सदी मनसब की बढती दे कर

[1] ये जीवनियॉ बाबू व्रजरत्नदास कृत 'मासिर-उल्-उमरा' के हिन्दी अनुवाद 'मुग़ल दरबार के हिन्दू सरदारो की जीवनियाँ' से यहॉ उद्धृत की गई है। किन्तु इतिहास के विद्यार्थियो के सुभीते के लिए यहॉ 'मासिर-उल्-उमरा' के मूल फारसी ग्रन्थ के पृष्ठो का ही उल्लेख किया गया है।

शाहजादा मुरादबख्श के साथ बलख और बदख्शाँ की चढाई पर नियुक्त किया। फिर इसका मनसब बढ कर तीन हजारी २००० सवार का हो गया और वह डका पाकर सम्मानित हुआ।

(शाहजादा के बलख पहुँचने और वहाँ के अध्यक्ष नजर मुहम्मद खाँ के भागने पर) जब बहादुर खाँ और असालत खाँ कुछ सेना के साथ उसका (पृ० ४४६) पीछा करने पर नियुक्त हुए, तब यह बिना शाहजादे की आज्ञा के कार्य की उत्कट इच्छा से साथ गया। २० वे वर्ष मे बुलाए जाने पर यह दरबार आया। उसी वर्ष सन् १०५६ हि० मे इसकी मृत्यु हो गई। अनुभवी और युद्ध-प्रिय सैनिक था। बादशाह के बगल मे रखी हुई सदली के पीछे (जो तलवार और तरकस रखने के लिए दो गज की दूरी पर रहती थी) खडे रहते और सवारी के समय भी दो गज की दूरी पर बराबर रहते थे।

बड़ा पुत्र रत्न (जो जालोर मे था और जिसका मनसब चार सदी २०० सवार का था) का मनसब बढा कर डेढ हजारी १५०० सवार का करके कृपा दिखलाई और देश से आने पर वह शाहजादा मुहम्मद औरगजेब बहादुर के साथ बलख पर नियत हुआ। जब शाहजादा पूर्वोक्त प्रान्त नजर मुहम्मद खाँ को सौप कर लौटे, तब रास्ते मे इन्होने अल अमानो के साथ लड़ने मे बहुत परिश्रम किया। २२ वे वर्ष मे पूर्वोक्त शाहजादा के साथ कन्धार गया और कजिल-बाशों के युद्ध मे रुस्तम खाँ के साथ नियुक्त हुआ। २५ वे वर्ष झडा मिलने से सम्मानित किया जाकर उसी चढाई पर पूर्वोक्त शाहजादे के साथ दूसरी बार और शाहजादा दारा शिकोह के साथ तीसरी बार (पृ० ४४७) नियुक्त हुए। २८ वे वर्ष मे अल्लामी सादुल्ला खाँ के साथ चित्तौड नष्ट करने गए। ३१ वे वर्ष औरगजेब के साथ दक्षिण गये और आदिलखानियो के युद्ध मे अच्छा परिश्रम करने

के उपलक्ष मे इनका मनसब बढकर दो हजारी २००० सवार का हो गया। इसके अनन्तर महाराज जसवन्तसिह के साथ युद्ध मे (जो उज्जैन मे हुआ था) नियुक्त होकर औरगजेब के सैनिको से वीरता-पूर्वक लडते हुए मारे गए।

२—पृथ्वीराज राठौड़

(मा० उ०, १, पृ० ४२६-४३१)

यह शाहजहाँ का एक सरदार था। विद्रोह के समय साथ देने से यह विश्वासपात्र हुआ। शाहजहाँ के बादशाह होने पर इसे पहिले वर्ष डेढ हजारी ६०० सवार का मनसब मिला। दूसरे वर्ष ख्वाजा अबुलहसन तुर्बती के साथ खाने जहाँ लोदी का पीछा करने को (जो आगरे से भाग गया था) नियत हुआ। कर्मठता से दूसरों का आसरा न देख कर कुछ सरदारो के साथ (जो फुर्ती से आगे बढ आए थे) धौलपुर के पास उस पर पहुँच गया और युद्ध मे राजपूतो की चाल पर पैदल होकर स्वय खाने जहाँ से (जो सवार था) भिड गया। उसे बरछे से घायल किया और स्वय भी घायल हुआ। बादशाह ने उसको कृपापूर्वक बुलाकर उसका मनसब दो हजारी ८०० सवार का कर दिया और घोडा तथा हाथी दिया। तीसरे वर्ष २०० सवार और बढा कर उसको ख्वाजा अबुलहसन के साथ (पृ० ४३०) नासिक दुर्ग विजय करने को भेजा। जब महाबत खॉ दक्षिण का सूबेदार हुआ, तब इसने भी उसी प्रान्त मे नियुक्त होकर दो हजारी १५०० सवार का मनसब पाया। दौलताबाद के घेरे मे अच्छी वीरता दिखलाई। एक दिन दक्षिण की सेना (जो विद्रोही हो गई थी) के एक सवार ने इसे द्वन्द्व युद्ध के लिए ललकारा। सुनते ही यह सेना से निकल कर सामने हुआ और तलवार से उसे मार डाला। ७ वे वर्ष

१०० सवार और बढाए गए। ९ वे वर्ष जब बादशाह दक्षिण आए तब बालाघाट के सूबेदार खाने जमॉ के साथ दौलताबाद के पास यह बादशाह से मिला और खॉ के साथ साहू भोसला का दमन करने और आदिलशाही राज्य पर अधिकार करने को भेजा गया। इस चढाई मे अच्छा कार्य करने पर १० वे वर्ष मे १०० सवार मनसब मे बढाए गए। ११ वे वर्ष जब औरगजेब के वकीलो के बदले दक्षिण का प्रबन्ध खान दौरा को मिला, तब वह दौलताबाद का दुर्गाध्यक्ष हुआ। १८ वे वर्ष मनसब बढ कर दो हजारी २००० सवार का हो गया, १९ वे वर्ष आज्ञानुसार आगरा आकर वह बाकी खॉ के साथ वहॉ के दुर्ग का अध्यक्ष हुआ। २० वे वर्ष (जब बादशाह राजधानी लाहौर मे थे) वह आज्ञा मिलने पर आगरे के कोष से एक करोड रुपया लेकर वहॉ गया। उसी समय शाहजादा मुहम्मद औरगजेब (पृ० ४३१) बहादुर बलख़ और बदख्शॉ की ओर रवाना हुए थे। इन्हे ख़िलअत और चॉदी की जीन सहित घोडा दिया और पचास लाख रुपए की रक्षा (जो शाहजादे को देना निश्चित हुआ था) पर नियुक्त कर वहॉ भेजा। २१ वे वर्ष राजा विठ्ठलदास के साथ वह अलीमर्दा खॉ की सहायता को काबुल गए। २२ वे वर्ष शाहज़ादा मुहम्मद औरगजेब बहादुर के साथ कन्धार गए और वहॉ से रुस्तम खॉ के साथ कजिलबाश सेना से युद्ध करने गए। २५ वे वर्ष पूर्वोक्त शाहजादे के साथ उसी चढाई पर दूसरी बार गए। २६ वे वर्ष शाहजादा दाराशिकोह के साथ उसी चढाई पर नियत हुए। वहॉ से यह रुस्तम खॉ के साथ बुस्त दुर्ग विजय करने गए। ३० वे वर्ष वह दक्षिण मे शाहजादा मुहम्मद औरगजेब के पास नियत हुए। उसी वर्ष १०६६ हि० (सन् १६५६ ई०) मे इनकी मृत्यु हुई। इनके भाई रामसिह और पुत्र केसरीसिह उस समय छोटे मनसबो पर थे।

परिशिष्ट—३

धरमत (फ़तेहाबाद) के युद्ध के विवरण संबंधी दो हिन्दी आधार-ग्रंथ एवं उनका ऐतिहासिक महत्व

सर यदुनाथ सरकार ने अपने सुप्रसिद्ध एव प्रामाणिक ग्रन्थ 'हिस्ट्री आफ औरगजेब' मे धरमत (फतेहाबाद) के युद्ध का विस्तृत, अतीव सुस्पष्ट एव भावपूर्ण विवरण लिखा है (औरग०, १-२, पृ० ३४८-३७१) । सर यदुनाथ ने फारसी में लिखे गए सारे प्राप्य ऐतिहासिक आधार-ग्रन्थों की पूरी-पूरी छान-बीन कर उन्ही के आधार पर यह विवरण लिखा था । इन फारसी आधार-ग्रन्थो मे विशेषरूपेण उल्लेखनीय है —

मिर्जा मुहम्मद काजिम कृत 'आलमगीर-नामा' (आ० ना०),
आकिल खाँ रज़ी कृत 'जफरनामा-इ-आलमगीरी' (जफर०),
मीर मुहम्मद मासूम कृत 'तारीख-इ-शाहशुजाई' (मासूम०),
ईश्वरदास नागर कृत 'फ़तूहात-इ-आलमगीरी' (ईश्वर०),
और मुहम्मद सालिह कम्बू कृत 'आमल-इ-सालिह' (कम्बू०) । किन्तु इन सारे आधार-ग्रन्थो मे प्रधानतया इस युद्ध के विजेता और बाद मे होने वाले मुगल सम्राट् औरगजेब की ही तरफ से युद्ध का हाल लिखा है । विजेता का दृष्टिकोण एव उस ओर से प्राप्त सामग्री ही इन लेखको के आधार बन गये ।

'आलमगीर-नामा', 'आमल-इ-सालिह' एव 'जफरनामा-इ-आलमगीरी ' मे दिए गए विवरण मुगल साम्राज्य के राजकीय

काग़ज़-पत्रों के आधार पर लिखे गए थे। मासूम ने इस गृह-युद्ध सम्बन्धी सर्वत्र फैली हुई कथाओ एव युद्ध के विभिन्न विवरणो का अपने ग्रन्थ मे समावेश किया। परन्तु मासूम ने अपना पूरा समय प्राय बगाल मे ही बिताया, एव धरमत के युद्ध सम्बन्धी उस समय प्रचलित विभिन्न विवरणो का बगाल तक पहुँचना सभव नही था। जसवन्त-सिह ने इस युद्ध मे जो वीरता दिखाई और उसने क्या किया इसका ईश्वरदास नागर ने विशेषरूपेण उल्लेख किया है, परन्तु उसने यह विवरण इस युद्ध के कोई चालीस-पचास वर्ष बाद लिखा था, एव उसे जसवन्तसिह के राजपूत सेनापतियो के बारे मे विशेष बाते नही प्राप्त हो सकी, उसने केवल मुकन्दसिह हाडा की वीरता एव उसके मारे जाने का ही उल्लेख किया।

धरमत के युद्ध से पहिले की रात जसवन्तसिह के शिविर मे क्या हुआ ? युद्ध के समय जसवन्तसिह की सेना मे कौन-कौन सी घटनाएँ घटी ? जब जसवन्तसिह को युद्ध-क्षेत्र छोडने के लिए विवश किया गया, तब जसवन्तसिह की सेना का नेतृत्व किसने सम्भाला ? आदि प्रश्नो का उत्तर हमे उपर्युक्त फारसी ग्रन्थों मे कही नही मिलता है। इस युद्ध के बाद जसवन्तसिह ने शाही सेना की हार का समाचार दूतो द्वारा आगरा भिजवाया था, परन्तु इस समय जसवन्तसिह ने युद्ध का विशद विवरण लिखा हो यह सम्भव नही जान पडता है। जसवन्तसिह की तरफ से लडने वाले एक-मात्र महत्वपूर्ण मुसलमान सेनापति कासिम खॉ ने युद्ध मे विशेष भाग नही लिया था, अतएव जसवन्तसिह की सेना की कार्यवाही तथा वहॉ होने वाली घटनाओ में उसे कोई दिलचस्पी नही हो सकती थी। यही कारण है कि इन प्रश्नो पर प्रकाश डाल सकने वाली कोई ऐतिहासिक सामग्री फारसी भाषा मे प्राप्त नही हो सकी है। इसलिए इन प्रश्नो पर प्रकाश

डालने के लिए अन्य भाषाओं मे प्राप्य ऐतिहासिक सामग्री की खोज तथा उनकी पूरी-पूरी जाँच पडताल करना आवश्यक हो जाता है।

यह सत्य है कि राठौडो के अतिरिक्त गहलोत, हाडा, गौड आदि विभिन्न कुलो के भी कई एक वीर योद्धाओ ने इस युद्ध मे भाग लिया, और प्राय सारे रजवाडो तथा सब महत्वपूर्ण राजघरानो के वीर इस युद्ध मे काम आए, तथापि यह युद्ध प्रधानतया राठोडो का ही गिना गया। राठौड घरानो का सर्वमान्य नेता जसवन्तसिह इस युद्ध मे शाही सेना का प्रधान सेनापति था, रतनसिह राठौड, गोवर्धन चाँपावत, उदयसिह राठौड आदि अन्य कई राठौड सेना-नायक, तथा जोधपुर राज्य की सारी सेना जसवन्तसिंह के साथ थी, और इस युद्ध मे कोई १७०० से अधिक राठौड योद्धा खेत रहे। अतएव अन्य राजपूत घरानो की ख्यातों आदि मे इस युद्ध की विशेष चर्चा नही पाई जाती है।

जसवन्तसिह इस शाही सेना का प्रधान सेनापति था, उसने इस युद्ध मे बहुत बहादुरी दिखाई, उसके दो घाव भी लगे, तथापि अपने राजपूत वीरो को यथाशक्य उत्साहित कर उसने शत्रुओ का साहस और वीरता के साथ सामना किया था। परन्तु युद्ध मे हार कर जसवन्तसिंह का युद्ध-क्षेत्र से जीवित लौटना, राजपूत योद्धाओ की प्रथा के विरुद्ध, वीर सैनिको की आन-बान को नष्ट कर देने वाली तथा जोधपुर के सुप्रसिद्ध राजघराने के इतिहास को कलकित करने वाली घटना थी। किस प्रकार जसवन्तसिह की वीर राजपूत महारानी ने इस कलक को धोने का प्रयत्न किया उसे लेकर कई एक किम्वदन्तियाँ प्रचलित हुई। अतएव न तो जोधपुर राज्य की ख्यातो और न जोधपुर के राजघराने सम्बन्धी काव्यग्रन्थो मे ही इस युद्ध का विस्तृत विवरण मिलता है। जोधपुर राज्य की ख्यात मे इस युद्ध

मे मारे गए और घायल हुए व्यक्तियों की पूरी-पूरी सूची अवश्य दी है (ख्यात०, १, पृ० २०७-२२५), किन्तु युद्ध का विवरण बहुत ही सक्षिप्त केवल डेढ पृष्ठो मे ही समाप्त कर दिया गया (ख्यात०, १, २०६-७)। इस युद्ध के ११० वर्ष बाद 'सूरज-प्रकाश' की रचना करते समय कवि करणीदान ने भी इस युद्ध मे जसवन्तसिह की वीरता का वर्णन कर केवल डेढ पृष्ठ मे ही इस युद्ध का विवरण पूरा कर दिया (पृ० ११०-१११)।

किन्तु इस युद्ध मे मरकर रतनसिह राठौड ने अमरत्व प्राप्त किया। उसके साहस, उसकी वीरता तथा युद्ध-क्षेत्र मे लडते हुए उसके मारे जाने के कारण रतनसिह मालवा के राजपूतो के लिए एक आदर्श तथा पूजनीय व्यक्ति बन गया, और मालवा मे ही नही सारे राजस्थान मे भी उसके अनुपम आत्मत्याग और वीरता की कीर्ति गाई जाने लगी। रतनसिह के शौर्य्य, मर मिटने की साधना और उत्कट राजभक्ति ने कवियो को मोह लिया और उन्होने रतनसिह की स्मृति को चिर-स्थाई बनाने के लिए इस युद्ध का विशद वर्णन लिखा। इस प्रकार हमे जसवन्तसिह की सेना मे होने वाली घटनाओ का विस्तृत विवरण दो हिन्दी काव्यो मे मिलता है। फारसी ऐतिहासिक आधार-ग्रन्थो की उस कमी को ये हिन्दी काव्य पूरा करते है।

ये दो हिन्दी काव्य है, कवि खडिया जगा[1] कृत 'बचनिका राठौड रतनसिघरी महेशदासौत री', तथा कवि कुम्भकर्ण कृत 'रतन-रासो'।

---

[1] **खड़िया जगा अथवा जगमाल नामक एक चारण कवि जसवन्तसिह के दरबार में भी था। वह जसवन्तसिह की सेना के साथ आया एवं धरमत के इस युद्ध में वह मारा गया था। रतनसिह का आश्रित कवि खडिया जगा पूर्णतया विभिन्न व्यक्ति था, किन्तु नामो में साम्य होने के कारण**

'वचनिका' मे कवि खडिया जगा ने इस युद्ध का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया। कवि जगा रतनसिह के दरबार का राजकवि था, उसने इस डिगल काव्य की रचना की थी। रतनसिह के साथ ही वह भी उज्जैन और धरमत गया था। कहा जाता है कि युद्ध प्रारम्भ होने से पहिले ही कवि जगा को आज्ञा हुई कि वह युद्ध मे भाग न ले, जिससे कि युद्ध के बाद जीवित रह कर वह अपने वीर स्वामी के शौर्य्य और साहस का ठीक-ठीक विवरण लिख सके। यो किम्वदन्ती के आधार पर यह माना जाता है कि कवि जगा ने सारा युद्ध आँखो देखा एवं अपनी निजी जानकारी से उसका पूरा विवरण 'वचनिका' मे लिखा। टेसीटोरी के विचारानुसार भी इस काव्य की रचना युद्ध के कुछ ही काल बाद हुई होगी (वचनिका०, इण्ट्रोडक्शन, पृ० १-२)। अतएव इस काव्य मे दिए गए वर्णन का महत्व विचारणीय अवश्य है। इस काव्य का सम्पादन टेसीटोरी ने किया, तथा इस काव्य का मूल-ग्रन्थ बगाल की एशियाटिक सोसाइटी ने सन् १९१७ ई० मे प्रकाशित किया। उक्त काव्य का अग्रेजी अनुवाद तथा उसके ऐतिहासिक महत्व आदि पर टेसीटोरी की भूमिका बाद मे प्रकाशित होने वाली थी, जो अब तक नही हुई।

सर यदुनाथ ने 'हिस्ट्री आफ औरगजेब' की दूसरी जिल्द पहली बार सन् १९१२ ई० मे प्रकाशित की तब उन्हे यह काव्य प्राप्य न था। परन्तु प्रकाशित होने पर भी, भाषा की दुरूहता के कारण डिगल भाषा से अपरिचित विद्वानो के लिए यह 'वचनिका' दुष्प्राप्य ही रही। यही कारण था कि जब सन् १९२५ ई० मे 'हिस्ट्री आफ

प्रायः भ्रम हो जाया करता है। ख्यात०, १, पृ० २२०; वचनिका०, इण्ट्रोडक्शन, पृ० २-४।

औरगजेब' की प्रथम दो जिल्दो का सशोधित एव सयुक्त सस्करण तैयार किया गया, तब भी 'वचनिका' मे वर्णित घटनाओ की जाँच-पडताल नही की जा सकी।

कवि कुम्भकर्ण कृत 'रतन-रासो' की रचना सन् १६७५ ई० के लगभग उज्जैन मे हुई थी। कवि कुम्भकर्ण रतनसिह के ज्येष्ठ पुत्र एव उत्तराधिकारी, रामसिह राठौड का आश्रित न था, तथापि इस कवि के घराने का प्रारम्भ मे जोधपुर के राजघराने से एव बाद मे महेशदास तथा उसके वशजो के साथ पर्याप्त सम्बन्ध रहा था, ऐसा ज्ञात होता है (रासो०, पृ० ५-१२)। इस ग्रन्थ द्वारा महेशदास और रतनसिह सम्बन्धी कई एक कौटुम्बिक बाते ज्ञात होती है। कवि ने कई स्थानो पर अत्युक्तिपूर्ण विवरण लिखा है। कल्पनापूर्ण काव्यमय वर्णन भी यत्र-तत्र पाए जाते है। इस ग्रन्थ के अन्तिम भाग मे कवि ने मुगल साम्राज्य मे अराजकता उत्पन्न होने, जसवन्तसिह के मालवा भेजे जाने, रतनसिह के रतलाम जाकर वहाँ अपने पुत्र रामसिह को पूरे अधिकार देने, युद्ध के पूर्व की रात्रि की घटनाओ एव युद्ध का विस्तृत विवरण लिखा है (पृ० ८४-१४१)।

यद्यपि इस ग्रथ की प्रतियाँ राजस्थान और मालवा मे बहुतायत से मिलती है, तथापि यह ग्रन्थ अब तक छप कर प्रकाशित नही हुआ है। अतएव मालवा से सुदूर प्रान्तो के लेखकों का इस ग्रन्थ की ओर ध्यान नही गया। यह ग्रन्थ प्रधानतया पिगल मे है, तथापि यत्र-तत्र मिश्रित होने के कारण भाषा काफी दुरूह हो गई है।

यह ग्रन्थ रतनसिह की मृत्यु के कोई २० वर्ष बाद लिखा गया। मालवा मे रहकर कवि ने उस युद्ध सम्बन्धी बातो की पूरी जानकारी प्राप्त की होगी। रतनसिह और उसके उत्तराधिकारी के साथ कवि का घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण उसे वहाँ से प्रामाणिक

विवरण प्राप्त हुआ होगा। एव युद्ध सम्बन्धी घटनाओ का जो विवरण कवि कुम्भकर्ण ने लिखा वह भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

इन दोनो ग्रन्थो से धरमत के युद्ध सम्बन्धी जो २ नवीन बाते ज्ञात होती है उनका क्रमश सक्षेप मे यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है।

'वचनिका' के अनुसार अप्रेल १४, १६५८ ई० की सन्ध्या के समय जसवन्तसिह ने अपने समस्त राजपूत सेनानायको को एकत्र कर उनसे पूछा कि औरगजेब और मुराद का सामना किया जावे या नही। और सब सेनानायको तथा सरदारो ने अर्ज की कि "महाराज ! ऐसे मामलो के बारे मे आपसे अधिक और कौन जानता है। यदि आप सलाह ही लेना चाहते है तो रतनसिह से पूछिए।" तब जसवन्तसिह ने कहा—"मै तो यही उचित समझता हूँ कि हम सब प्राणो का मोह छोड कर लडते हुए मारे जावे, और वीरतापूर्वक ऐसा विकट युद्ध करे कि चिरकाल तक उसकी चर्चा होती रहे।" रतनसिह से अब रहा न गया, उसने निवेदन किया—"महाराज ! आप कुल के दीपक है, अत· आप स्वय युद्ध मे भाग न ले। शाही सेना का सेनापतित्व मुझे सौपिए तथा रणभूमि का राज्य मुझे प्रदान कर आप पृथ्वी के राज्य का उपभोग करे। महाभारत जैसे युद्ध मे भी दुर्योधन को पीछे रख कर लडने के लिए कर्ण ही आगे बढ़ा था। युद्ध मे बने रहने से ही राज्य रह सकेगा, और इसके लिए कमध्वजो (राठोडो) को कोई भी बुरा नही कहेगा।" यह कह कर रतनसिह ने अपने शस्त्र उठाए और जसवन्तसिह और वहाँ उपस्थित राजपूत सरदारो से सदा के लिए बिदा लेकर युद्ध की तैयारी करने के लिए वह अपने डेरे पर लौट आया। (पृ० १४-१९)। उस

रात्रि को राजपूतो का सहभोज हुआ तथा उसके बाद रतनसिह का अपना दरबार जुडा, जिसमे उसने अपने सेनानायको, प्रधान सरदारो तथा अन्य वीर साथियो को युद्ध के लिए उत्साहित किया। राजपूत एव चारण वीरो ने रतनसिह के निश्चय को सराहा तथा उसके साथ मर-मिटने को उतारू हुए। (पृ० १९-२८)।

दूसरे दिन युद्ध की तैयारियाँ हुई। घमासान युद्ध प्रारम्भ हुआ। (पृ०२८-२९, ४०-४३)। तोपे चलने लगी और राजपूत वीरो ने उन पर पूरे वेग के साथ हमला किया (पृ० ४४-६)। इस प्रकार तीन पहर तक दोनो सेनाएँ लडती रही। जब चौथा पहर प्रारम्भ हुआ, राठौड वीर रिणमल जोधा ने कहा—"किसी भी प्रकार से राजा (जसवन्तसिह) को अब बचाना चाहिए। हम तो युद्ध मे शत्रु का सामना करते हुए कट मरे, किन्तु 'ओछी वाढो, जसराज काढो।' जसवन्तसिह को युद्ध-क्षेत्र से ले जाओ।" तब घोडे की बागे पकड कर जसवन्तसिह को युद्ध-क्षेत्र से ले गए। जाते समय जसवन्तसिह ने युद्ध का भार रतनसिह को सौपा। तब तो रतनसिह जसवन्तसिह से प्राप्त सारे शाही नौबत, निशान, तोप एव झण्डो को अपने साथ लेकर युद्ध मे आगे बढा। (पृ० ४६-७)। युद्ध मे लड मरने का निश्चय कर रतनसिह अपने वीर सरदारो के साथ शत्रुओ से जा भिडा। एक-एक कर उसके सारे वीर साथी मारे गए, तथापि रतनसिह अपने सैनिको को उत्साहित कर उसी साहस के साथ वीरतापूर्वक लडता ही रहा। इसी प्रकार युद्ध करते हुए अन्त मे बुरी तरह घायल होकर रतनसिह धरती पर गिर पडा। इस युद्ध मे उसे छब्बीस तीर और तलवार के अस्सी घाव लगे। (पृ०४७-७३)।

रतनसिह के गिरते ही शाही सेना की ओर से शाहज़ादों का

सामना करने वाला कोई न रहा, एव युद्ध समाप्त हो गया, और शाहजादों ने विजय के नगाड़े बजाये (पृ० ७४)। घायल रतन-सिह की वही युद्ध-क्षेत्र पर ही मृत्यु हुई। युद्ध-क्षेत्र में बिखरे हुए तीर और भालो को एकत्रित कर उनकी चिता रची, तथा जहाँ रतन-सिह घायल होकर पृथ्वी पर गिरा था वहाँ ही उसकी दाहक्रिया की गई। (पृ० ७५)।

'रतन-रासो' मे कवि कुम्भकर्ण ने इन्ही घटनाओं का उल्लेख इस प्रकार किया है ––

शाहजादो ने जसवन्तसिह को लिख भेजा कि वह उनकी राह न रोके, परन्तु जसवन्तसिह ने उनका यह प्रस्ताव स्वीकार नही किया। तब तो दोनों सेनाएँ युद्ध के लिए बढी। उज्जैन शहर के पास क्षिप्रा के तट पर दोनो सेनाएँ आमने-सामने आ डटी। (पृ० १२१-१२२)।

अन्त मे युद्ध का दिन आ ही गया। युद्ध मे शत्रुओ का सफलता-पूर्वक सामना करने के लिए जसवन्तसिह ने अपनी सेना की व्यूह-रचना की और विभिन्न सेनानायको को निश्चित क्रम से खडा किया। सबसे आगे भीमसिह सिसोदिया का पुत्र रायसिह सिसोदिया था। तदन्तर खलील खॉ तातार था, एव उसके बाद कोटा का मुकुन्दसिह हाड़ा अपने चारों भाइयो एव सैनिको को लेकर खडा था। दयालदास झाला और उसका भाई राघोदास झाला अपने सैनिक लेकर मुकुन्द-सिह हाड़ा के पीछे थे। अन्त मे जसवन्तसिह ने रतनसिह राठौड और उसके सैनिकों को रखा, और उसके बाद ही वह स्वय अपने सैनिको को लेकर लडाई के लिए डटा हुआ था। जसवन्तसिह के साथ इस समय आसकरण नीम्बावत, राठौड़ महेशदास सूरजमलोत, राठौड वीर गोवर्धन चॉपावत, आदि सेनानायक थे। (पृ० १२२)।

दोपहर के समय युद्ध प्रारम्भ हुआ। रतनसिह को अपने सामने रख कर जसवन्तसिह युद्ध करने लगा। आसकरण का पुत्र दुर्गादास वीरता दिखाने लगा। (पृ० १२५)। जसवन्तसिह की सेना के कई वीर मारे गए। इसी समय शाहजादो की सेना ने शाही सेना पर दबाव डाला और उस पर गोलाबारी भी शुरू कर दी। तब तो रायसिह सिसोदिया, एव दक्षिणी सरदार खेलो और मालू भाग खडे हुए, जिससे शाहजादो का साहस और भी बढा तथा वे शाही सेना को अधिकाधिक दबाने लगे। उन्होने शाही खजाने को लूटा और शाही सेना के डेरो पर भी अधिकार कर लिया। औरगजेब सेना लेकर शाही सेना के पीछे जा पहुँचा, सुलतान नबी (औरगजेब के पुत्र मुहम्मद सुलतान) ने शाही सेना के दाहिने पहलू पर दबाव डाला, तथा हरोल की ओर से मुराद ने हमला किया। इस प्रकार जसवन्तसिह की सेना का व्यूह चारो ओर से छिन्न-भिन्न हो गया। अब राजपूत सेनानायको ने शत्रु पर हमला करना ही उचित समझा, तथा "राम-राम" के जयघोष के साथ उन्होने अपने घोडे दौडा दिए। (पृ०१२६)। मुकुन्दसिह हाडा और उसके चारो भाई इन घुडसवारो के साथ शत्रु की ओर वेग के साथ बढे। दयालदास झाला ने इन्ही के पीछे पीछे अपने घोडे भी दौडाए। दोनो ओर की सेनाएँ गुथ गई। मुकुन्दसिह हाडा मोहनसिह हाडा, दयालदास झाला, अर्जुन गौड, सुजानसिह सिसोदिया और उदयसिह राठौड मारे गए। किशोरसिह हाडा घायल होकर गिर पडा। हजारों हिन्दू वीर युद्ध मे काम आए। उन्ही के पीछे रतनसिह राठौड भी अपने भाई फतेहसिह और पुत्र रायसिह को लेकर युद्ध कर रहा था। साचोरा वीर शार्दूल चौहान के पुत्र, अमरदास और भगवानदास , रतनसिह के हरोल मे दाहिनी तथा बाई ओर शत्रुओं का सामना कर उन्हे दबा

रहे थे। जसा बारहट भी रतनसिह के पास ही युद्ध मे रत था। (पृ० १२७)।

राजपूत घुडसवारो के इस आक्रमण तथा रतनसिह राठौड आदि वीरो के इस दबाव ने शाहजादो की सेना के छक्के छुडा दिए। इस परिस्थिति को देख कर औरगजेब ने तुरन्त वहाँ सहायता के लिए अधिक सेना भेजी, जिससे शाहजादो के सैनिक उत्साहित हो उठे (पृ० १२८)। उनकी ओर से पुन तोपे चलने लगी, घमासान युद्ध होने लगा, और शाहजादो की सेना शाही सेना को एक बार फिर पीछे दबाने लगी। शाही सेना अब घबरा कर युद्ध क्षेत्र से भाग जाने के लए उतारू देख पडी, परन्तु जसवन्तसिह तब भी डटा ही रहा। शाही सेना की हार निरन्तर स्पष्टतर होती जा रही थी एव अब राठौड वीर आसकरण, महेशदास सूरजमलोत और गोरधन, जसवन्तसिह को रणक्षेत्र छोडने के लिए बाध्य करने लगे, रतनसिह ने भी जसवन्तसिह को जोधपुर लौट जाने के लिए बहुत कुछ कहा, तब अन्त मे विवश होकर जसवन्तसिह ने शाही सेना का सेनापतित्व रतनसिह को सौपा। जसवन्तसिह को साथ लेकर आसकरण तथा महेशदास जोधपुर के लिए रवाना हुए। (पृ० १३२)।

अब रतनसिह ने जसवन्तसिह से प्राप्त, शाही सेनापति के सारे सम्मान चिह्नो को धारण किया और उनके साथ अपने जीवन का अन्तिम युद्ध करने के लिए वह आगे बढा। उसके निजी सेनानायको और सैनिको के अतिरिक्त जोधपुर की सेना के भी कई वीर सेनानी इस समय रतनसिह के साथ थे। प्राणो पर खेल कर रतनसिह अलौकिक वीरता तथा अद्वितीय साहस के साथ लडने लगा। रतनसिह के कई घोड़े बारी-बारी से घायल होकर गिर पडे और हर बार वह

किसी दूसरे घोडे पर सवार होकर पुन युद्ध मे जुट गया। उसके वीर साथी एक-एक कर गिरने लगे, फिर भी अपने इने-गिने वीरों को लेकर रतनसिह लडता ही रहा। घावो से जर्जरित होकर अन्त मे रतनसिह युद्ध-क्षेत्र मे गिर पडा। चौहान वीर अमरदास और भगवानदास भी बुरी तरह घायल होकर रतनसिह के पास ही गिरे। जसराज बारहठ भी वही खेत रहा। रतनसिह का भाई फतेहसिह भी यही काम आया और रतनसिह का नवयुवा पुत्र रायसिह भी घायल होकर पास ही गिरा। (पृ० १३५-१३९)। इस तरह इस युद्ध का अन्त हुआ। औरगजेब और मुराद विजयी होकर हर्षित हुए। (पृ० १४१)।

सर यदुनाथ सरकार ने इस युद्ध का जो विवरण लिखा है उसमें तथा उपर्युक्त दोनो विवरणो मे विभिन्नता प्रधानतया दो ही बातों मे पाई जाती है। जहाँ 'रतन-रासो' और 'वचनिका' के अनुसार रतनसिह की मृत्यु सबसे बाद मे एव जसवन्तसिह के युद्ध-क्षेत्र छोडने के अनन्तर ही हुई, वहाँ सर यदुनाथ सरकार के मतानुसार रतनसिह राठौड़ राजपूत घुडसवारो के पहले हमले के समय ही मारा गया। सर यदुनाथ लिखते है—"हरोल के राजपूत सेनानायक—मुकुन्द सिह हाडा, रतनसिह राठौड, दयालसिह (दयालदास) झाला, अर्जुनसिह गौड, सुजानसिह सिसोदिया एव अन्य अपने चुने हुए साथियो को लेकर सरपट आगे बढे। . . . वे चारो ओर से घिर गए थे, उनकी सख्या निरन्तर घटती ही जा रही थी, तथा उनकी सहायता के लिए अन्य कोई सैनिकदल भी नही आ रहा था, अतएव ये राजपूत हतोत्साह हो गए और उनका वेग रुक गया। उनके वीर नेता मुकुन्दसिह हाडा की आँख में तीर लगा, जिससे वह मर कर गिर पडा। इस हमले मे भाग

लेने वाले छहो राजपूत राजा मारे गए।" (औरग०, १-२, पृ० ३६०, ३६३)।

दूसरे, 'रतन-रासो' और 'वचनिका' के अनुसार युद्ध-क्षेत्र छोडते समय जसवन्तसिह ने युद्ध मे रही बाकी शाही सेना के सचालन का भार रतनसिह को सौपा था, एव जसवन्तसिह के युद्ध-क्षेत्र छोडने के बाद भी कुछ समय तक रतनसिह और उसके साथी वीरतापूर्वक शाहजादों की सेना का सामना करते ही रहे। सर यदुनाथ के मतानुसार रतनसिह की मृत्यु पहिले हो चुकी थी एव रतनसिह को सेना-सचालन का भार सौपने का कोई प्रश्न ही नही रह गया था। जसवन्तसिह के युद्ध-क्षेत्र छोडने के बाद शाही सेना की जो गतिविधि हुई उसका सर यदुनाथ ने इस प्रकार वर्णन किया है—"युद्ध मे शाही सेना की हार हुई यह बात स्पष्ट हो गई थी। राठौडो (जसवन्तसिह और उसके और साथियो) के युद्ध-क्षेत्र छोडते ही शाही सेना के बाकी रहे विरोध का भी अन्त हो गया। शाही सेना के जो बचे-खुचे दल अब तक शाहजादो की सेना का सामना कर रहे थे, वे भी अब युद्ध-क्षेत्र छोड कर भाग खडे हुए। राजपूत सैनिक अपने-अपने घरो को लौट गए एव मुसलमान सैनिको ने आगरा की राह ली।" (औरग०, १-२, पृ० ३६६)।

यह पहिले ही बताया जा चुका है कि सर यदुनाथ ने अपना विवरण प्रधानतया फारसी इतिहास-ग्रन्थो के ही आधार पर लिखा है। अब इन हिन्दी काव्यो से जो दो नई बाते ज्ञात हुई है वे ऐतिहासिक दृष्टि से कहाँ तक मान्य और विश्वसनीय है इसकी जाँच के लिए इन दो घटनाओ को निम्नलिखित दो कसौटियो पर कसना होगा। (१) जो नई घटनाएँ ज्ञात हुई है, वे फारसी एव अन्य प्रामाणिक ऐतिहासिक आधार-ग्रन्थो से प्राप्त तथा इतिहासकारो

द्वारा सर्वमान्य घटनाक्रम आदि से कहाँ तक विरुद्ध पडती है, एव कहाँ तक उनके साथ इनका सामञ्जस्य स्थापित हो सकता है ? (२) प्रामाणिक ऐतिहासिक घटनावली तथा तत्कालीन ज्ञात परिस्थितियो मे इन नई घटनाओ का घटना कहाँ तक सभव जान पड़ता है ?

सर यदुनाथ के मतानुसार इस युद्ध के विवरण के लिए प्रधान आधार-ग्रथ है— 'आलमगीर-नामा,' 'जफरनामा-इ-आलमगीरी' और ईश्वरीदास कृत 'फतूहात–इ आलमगीरी', इनमे से जसवन्त-सिंह की सेना सम्बन्धी घटनाओ के लिए ईश्वरदास कृत इतिहास विशेष महत्त्व का है। कम्बू कृत 'आमल-इ-सालिह' समकालीन होते हुए भी दूसरे दर्जे का आधार-ग्रन्थ माना गया। (औरग०, १-२, पृ० ३५९ फु० नो०)।

रतनसिह की मृत्यु कब हुई, इस प्रश्न का उत्तर उक्त फारसी आधार-ग्रन्थो मे ढूँढने पर निम्नलिखित परिणाम निकलता है। 'जफरनामा-इ-आलमगीरी' मे कही भी रतनसिह का नाम नही मिलता है। ऐसे ही 'फतूहात-इ-आलमगीरी' मे ईश्वरदास ने भी रतनसिह का कोई उल्लेख नही किया। इस युद्ध में रतनसिह ने क्या भाग लिया इस प्रश्न पर कम्बू भी पूर्णतया मूक है। केवल 'आलमगीर-नामा' मे ही रतनसिंह का कुछ जिक्र मिलता है। पहिले हरोल मे नियुक्त सरदारो मे रतनसिंह का भी नाम दिया। मुकुन्दसिंह हाडा के साथ घुडसवारो के हमले मे वीर गति प्राप्त करने वाले सेनानायको की सूची में रतनसिंह का भी उल्लेख है। (आ० ना०, पृ० ६४)। सर यदुनाथ ने रतनसिह सम्बन्धी उक्त उल्लेख 'आलमगीर-नामा' के ही आधार पर किया है।

अब प्रश्न यह उठता है कि रतनसिह के मृत्यु-समय को निश्चित

करने मे किसे अधिक विश्वसनीय समझा जावे, 'आलमगीर नामा' को या 'वचनिका' एव 'रतन-रासो' को। 'आलमगीर-नामे' के विरोध मे 'वचनिका' एव 'रतनरासो' की ऐतिहासिकता का महत्व-पूर्ण प्रश्न उठता है। 'वचनिका' का कवि उस दिन युद्ध-क्षेत्र पर स्वय उपस्थित था। उस युद्ध का उपर्युक्त विवरण उसने आँखो देखी घटनाओ, निजी जानकारी तथा विश्वसनीय व्यक्तियो से ज्ञात बातो के ही आधार पर लिखा था, अतएव उसमे दी हुई घटनावली विचार-णीय अवश्य है। उसी प्रकार यद्यपि 'रतन-रासो' युद्ध के कोई बीस वर्ष बाद लिखा गया था, किन्तु उसके रचयिता का रतनसिंह के घराने के साथ गहरा सम्बन्ध था, अतएव उस युद्ध मे उपस्थित तथा भाग लेने वाले व्यक्तियो से युद्ध की घटनाओ सम्बन्धी ठीक-ठीक विवरण प्राप्त करना उसके लिए बहुत ही सरल था। कवि ने उज्जैन मे रहकर इस काव्य की रचना की थी, अतएव वहाँ इस युद्ध के समकालीन बडो-बूढो और इस युद्ध को आँखो देखने वाले व्यक्तियो से भी उसे कई महत्वपूर्ण बाते ज्ञात हुई होगी। 'रतन-रासो' मे दी गई अन्य घटनावली मे कई एक त्रुटियाँ अवश्य पाई जाती है, किन्तु प्राय उसमे वर्णित ऐतिहासिक बातो का ज्ञात घटनाक्रम से समर्थन ही होता है। अतएव इन दोनों काव्य-ग्रन्थो को किसी भी प्रकार अनैतिहासिक या सर्वथा अविश्वसनीय नही कहा जा सकता है।

इसके विपरीत इस युद्ध के समय जसवन्तसिह के सेनापतित्व मे आने वाली विरोधी शाही सेना मे कब क्या हुआ, एव रतनसिह कब कहाँ लडा था तथा वह कब मारा गया, इसका औरगजेब एवं उसके साथियो को पूरा-पूरा और ठीक पता लग सका हो यह असम्भव सा प्रतीत होता है। युद्ध की प्रधान हलचलें, युद्ध के प्रारम्भ मे विरो-धियों के महत्वपूर्ण हमले तथा उनके विशिष्ट नेताओं के कारनामें,

युद्ध की अन्तिम घडियो मे विरोधी सेनापतियो का युद्ध-क्षेत्र छोडना तथा युद्ध मे मारे गए महत्वपूर्ण विरोधी सेनानायकों की ठीक-ठीक सूची औरगजेब और उसके साथियो को ज्ञात हो गई होगी, किन्तु उसे प्रत्येक विरोधी सेनानायक के व्यक्तिगत कारनामो का ठीक-ठीक एव पूरा विवरण प्राप्त हो सका होगा यह कठिन ही जान पडता है। अतएव इस प्रकार के व्यक्तिगत मामलो मे जहाँ किसी भी विरोधी सेनानायक के घटनाक्रम को निश्चित करना हो 'आलमगीर-नामे' मे दिए गये सक्षिप्त विवरण को सर्वथा निर्विवाद स्वीकार नही किया जा सकता है। पुन जो विवरण 'वचनिका और 'रतन-रासो' मे रतनसिह के बाद मे मारे जाने का दिया है वह किसी प्रकार असम्भव भी नही जान पड़ता है। अतएव पूर्ण विचार के बाद यही ठीक जान पडता है कि रतनसिह की मृत्यु के समय का जो क्रम 'रतन-रासो' एव 'वचनिका' मे दिया है वह मान्य तथा इस बारे मे 'आलमगीर-नामा' का कथन अस्वीकार्य है।

अब दूसरा प्रश्न सामने आता है कि क्या जसवन्तसिह ने युद्ध-क्षेत्र छोडते समय शाही सेना का सेनापतित्व रतनसिंह को सौपा था ? इस बारे मे फारसी ग्रन्थो मे कोई भी उल्लेख नही मिलता है। ईश्वरदास ने अपना ग्रन्थ इस युद्ध के कोई ४०-५० वर्ष बाद लिखा था, तब तक जसवन्तसिह एव इस युद्ध से बच निकलने वाले वीर भी मर चुके थे, एव तब इस प्रकार के निजी प्रश्नो पर प्रकाश पडना अधिक सभव नही था। ख्यात० (१, पृ० २०६-२०७) का इस बारे मे मूक रहना स्वाभाविक ही है। अतएव इस प्रश्न पर विचार करने के लिए 'वचनिका' और 'रतन-रासो' के अतिरिक्त दूसरा कोई ऐतिहासिक आधार-ग्रन्थ नही रह जाता है। 'वचनिका' और 'रतन-रासो' मे इस बारे मे जो लिखा है वह स्वीकार करने से पहिले

यह विचार करना आवश्यक है कि क्या फारसी ग्रन्थो के आधार पर जसवन्तसिह के युद्ध-क्षेत्र छोडने के बाद भी युद्ध का होता रहना सभव जान पडता है।

जफर० (पृ० ३१-२) के अनुसार जसवन्तसिह के युद्ध-क्षेत्र छोडने के बाद बाकी सेना तितर-बितर हो गई, और इन भागने वालो के साथ औरगजेब की सेना की लडाई हुई, जिसमे कई शाही सैनिक मारे गए। 'आलमगीर-नामा' मे इस प्रकार के किसी भी युद्ध की कोई चर्चा नही है (पृ० ६४)। ईश्वरदास० (प० २० अ) जसवन्तसिह के साथ 'बहुत से सरदारो' का जोधपुर के लिए रवाना होने का जिक्र करता है। युद्ध-क्षेत्र मे पीछे रहने वाले सरदार और सैनिको ने क्या किया, इसका उसने कुछ भी हाल नही लिखा है। कम्बू० (३, पृ० २८७) युद्ध की अन्तिम घडियो मे शाही सेना के दो दल हो जाने का उल्लेख करता है। ये दोनो दल युद्ध-क्षेत्र के तग दर्रे मे घिर गए और वहाँ लडते रहे। जसवन्तसिह के पाँव मे चोट आई और अन्त मे वह तथा कासिम खाँ युद्ध-क्षेत्र छोड़कर रवाना हो गए। औरगजेब ने इनका कुछ मीलो तक पीछा किया। एक दल के इस प्रकार चले जाने के बाद दूसरे दल का क्या हुआ, इस प्रश्न पर कम्बू० कोई भी प्रकाश नही डालता है।

उक्त विवरणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि जसवन्तसिह के युद्ध-क्षेत्र से रवाना होने के बाद भी कुछ समय तक बहुत कुछ मार-काट होती ही रही। सर यदुनाथ ने भी शाहजादो की सेना का तब भी सामना करने वाले शाही सेना के बचे-खुचे दलो का उल्लेख किया है (औरग०, १-२, पृ० ३६६)। किन्तु युद्ध की इन अन्तिम घडियो मे शाही सेना के प्रधान सेनापति जसवन्तसिह तथा कासिम खाँ का युद्ध-क्षेत्र छोड़ना ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटना थी।

इसके बाद भी शाही सेना के कौन वीर शाहजादों का सामना करते रहे तथा उन्होने क्या वीरता दिखाई, ये बातें मुगल साम्राज्य के इतिहासकारो तथा औरगजेब के जीवन और उसकी सफलताओ का विवरण लिखने वालो के लिए सर्वथा गौण और महत्वहीन थी, एव उन्होने न तो इस ओर कुछ ध्यान दिया और न उन पर कोई प्रकाश डालना ही आवश्यक समझा। यही कारण है कि हमे फारसी आधार-ग्रन्थो मे इस प्रश्न के बाबत कोई स्पष्ट उल्लेख नही मिलता है। तथापि थोडा बहुत जो भी विवरण हमे मिलता है उससे 'रतन-रासो' और 'वचनिका' मे वर्णित रतनसिह का अन्तिम युद्ध पूर्णतया अशक्य बात नही ज्ञात होती है।

जसवन्तसिह जिस समय युद्ध-क्षेत्र से रवाना हुआ, तब तक मुकुद-सिह हाडा मारा जा चुका था, कासिम खॉ पहिले से ही युद्ध से किनारा काट रहा था, एव शाही मनसबदारो मे सर्वोच्च सेनानायक रतनसिह ही बाकी बच रहा। ऐसे समय जसवन्तसिह का युद्ध-क्षेत्र मे लड़ती हुई बाकी रही सेना का भार रतनसिह को सौपना स्वाभाविक ही नही न्याय-सम्मत भी था।

अतएव समग्र प्राप्य ऐतिहासिक सामग्री पर पूर्णतया विचार करने के बाद यही निर्णय किया जाता है कि रतनसिह को जसवन्तसिह द्वारा बाकी रही शाही सेना का भार सौपने तथा उसके बाद रतनसिह का पूर्ण वीरता के साथ लडते हुए इस सारे युद्ध के अन्त मे मारे जाने का जो विवरण, 'रतन-रासो' और 'वचनिका' में दिया है, यद्यपि फारसी आधार-ग्रन्थो द्वारा उस विवरण की पुष्टि नही की जा सकती है, किन्तु वे सर्वथा असम्भव और अनहोनी बाते साबित नही होती हे। इन दोनो काव्य-ग्रन्थो द्वारा इस युद्ध सम्बन्धी कई एक नई घटनाएँ ज्ञात होती है, और यो इस युद्ध के कई अज्ञात तथा

अन्धकारपूर्ण पहलुओ पर नया प्रकाश पड़ता है। इसी लिए इस ग्रन्थ में धरमत के युद्ध का विवरण लिखते समय 'रतन-रासो' और 'वचनिका' मे वर्णित उक्त घटनाओ के ऐतिहासिक तथ्यों का यथा-स्थान समावेश कर युद्ध के इस वर्णन को सर्वथा प्रामाणिक तथा सम्पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है।

परिशिष्ट—४

रतनसिंह के जो सम्बन्धी और सेनानायक धरमत (फ़तेहाबाद) के युद्ध में काम आये उनकी सूची

[ख्यातों से उद्धृत]

१—जो बादशाही उमराव काम आए उनकी सूची —

(१) राठौड राव रतन महेशदास दलपत उदयसिहोत—रतलाम का शासक, पहले जालोर मे राज्य करता था—मनसब दो हजारी-पॉच सौ सवार[1]।

(२) फतेसिह महेशदासोत—मनसब डेढ सदी-तीस सवार।

(३) रायसिह रतनोत—घायल हुआ।

(४) राजपूत ५० और चारण बारहठ जसा वेणीदासोत[2] काम आए।

(ख्यात०, १, पृ० २०७)

२—रतलाम के शासक राव रतन के जो सेनानायक काम आए उनकी सूची —

चार चौहान.—

(१) अमरदास सादूलसिहोत,

---

[1] दो हजार सवार होना चाहिए; कम्बू०, ३, पृ० ४५८।

[2] रोहिड़ा खॉप का चारण। उसके वशज आज भी सीतामऊ राजघराने के प्रधान बारहठ हैं, एवं बापच्या ठिकाना उनकी जागीर में है।

(२) भगवानदास सादूलसिहोत,
(३) कुंभा ईश्वरदासोत,[३]
(४) विट्ठलदास किशनदासोत,[४]
(५) भाटी अज्जा केलण,
(६) सोनगरा वीरमदे,

आठ राठौड —

(७) गिरधरदास किशनदासोत गाँगा,
(८) नरहरदास बीकानेर का,
(९) गोपीनाथ राव बख्तसिहोत उदयसिह का पोता,
(१०) साँगा मडला नाथा का पुत्र,
(११) रतनसी मडला नाथा का पुत्र,
(१२) रूपसी मडला नाथा का पुत्र,
(१३) मेडतिया भावसिह अजमालोत (जयमलोत ?);
(१४) हरराम लखमावत;
(१५) सेहलोत पचायण हरदासोत,
(१६) कछवाहा श्यामसिह राजावत,
(१७) मेहता साँवलदास रूपसी का,
(१८) पड़िहार धन्ना ।

(ख्यात०, १, पृ० २२३,

---

[३] सांचोरा चौहान, जीवा का पौत्र; नैणसी०, १, पृ० १७९ ।

[४] सांचोरा चौहान, लिखमीदास का पौत्र; नैणसी०, १, पृ० १७९ ।

[५] कविराजा से प्राप्त दूसरी ख्यात में इसी गोपीनाथ को राव सगतसिह का पोता लिखा है । १, क्रमांक ९८२, पृ० १२० ।

३—कविराजा मुरारीदान से प्राप्त एक और ख्यात मे, जिसकी प्रति जोधपुर राज्य के सग्रह मे प्राप्य है, रतनसिह के साथ धरमत के युद्ध मे मारे जाने वाले सेनानायको की सूची मे निम्नलिखित नाम अधिक मिलते है:—

(१) राठौड साहिब खाॅ कुम्भकरण बाघोत का जेतावत,[६]
(२) राठौड द्वारकादास बल्लू गोपालदासोत का चाॅपावत,[७]
(३) राठौड वेणीदास राजसिह सूरजमलोत का चाॅपावत,[८]
(४) भाटी कुभकरण सुरताण रामोत का केलण[९],
(५) थोरी भूरिया,
(६) दमामी गुणा।

(१, क्रमाॅक ९८२, पृ० १२०)

---

[६] ख्यात०, १, पृ० २११ पर इस साहिब खाँ का नाम जसवन्तसिंह के सेनानायको की सूची में लिखा है। परन्तु ख्यात० का यह उल्लेख ठीक नहीं जान पड़ता है। वचनिका०, पृ० २२, २५ के उल्लेखो से यह स्पष्ट है कि साहिव खाँ रतनसिंह का सेनानायक था; उसका जसवन्तसिह के साथ कोई विशेष सम्बन्ध नहीं था।

[७] ख्यात०, १, पृ० २०६ पर इसका नाम भी जसवन्तसिह के सेनानायकों की सूची में लिखा है।

[८] ख्यात०, १, पृ० २०६ पर इसका नाम भी जसवन्तसिह के सेनानायकों की सूची में लिखा है।

[९] ख्यात०, १, पृ० २१३ पर इसका नाम भी जसवन्तसिह के सेनानायको की सूची में लिख कर इसे "गैर चाकर" बताया गया है।

अध्याय ५

रामसिंह

(१६५८-१६८३ ई०)

१. रामसिंह का रतलाम पाना; प्रारम्भिक वर्ष—बैसवाड़े का उपद्रव: १६५८-१६६४ ई०

धरमत के युद्ध मे रतनसिह के मारे जाने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र रामसिह रतलाम का शासक बना। रामसिह का जन्म रविवार, कार्तिक सुदी ८, सं० १६९५ वि० (नवम्बर ४, १६३८ ई०) को हुआ था। बेदला के चौहान सग्रामसिह की पौत्री रानी हररूप दे कुँवर रामसिह की जननी थी।[१] रामसिह के प्रति रतनसिंह का विशेष प्रेम था, परन्तु रामसिह को कभी भी अपने पिता के साथ शाही दरबार मे या युद्ध पर जाने का अवसर नही मिला। जालोर की गद्दी पर बैठने के कोई एक माह बाद ही जब अप्रैल, १६४७ ई० मे रतनसिंह बल्ख की चढाई पर जाने लगा था तब रामसिह की वय नौ वर्ष की भी न थी, एव रतनसिंह उसे जालोर ही छोड गया।[२] और उसके बाद जीवन भर रतनसिह शाही सेना के साथ दूर-दूर की चढा-

---

[१] रतन०, पृ० ५२; गुरूजी०; राणी०।

एक ख्यात में रामसिंह का जन्म भाद्रपद शु० ८, १६९५ वि० (बुधवार, सितम्बर ५, १६३८ ई०) के दिन होना लिखा है, किन्तु गुरूजी० के कथन की तुलना में यह कथन विशेष विश्वसनीय नहीं जान पड़ता है।

[२] रासो०, पृ० ७९।

रामसिंह

इयो मे लगा रहा । तब रामसिह की उम्र ऐसी न थी कि वह युद्धों मे भाग ले सके। पुन उत्तराधिकारी होने के कारण भी उसे घर पर ही रहना पडता था। अतएव रामसिह के जीवन के प्रारम्भिक वर्ष जालोर ही मे बीते। सन् १६५६ ई० मे रतनसिह जालोर छोड कर रतलाम का अधिकारी बना, तब अपने पिता के साथ रामसिह भी रतलाम आ पहुँचा। तब तक उसकी उम्र १७ वर्ष से अधिक की हो गई थी, एव रतलाम के इस नये राज्य के शासन-प्रबन्ध को सगठित करने मे रतनसिह को रामसिह से पूरी-पूरी सहायता मिली होगी।

सन् १६५७ ई० के अन्तिम महीनो मे गृह-युद्ध की तैयारियाँ प्रारम्भ हो गई थी, एव जसवन्तसिह को शाही सेना के साथ मालवा का सूबेदार बना कर उज्जैन भेजा गया था, सन् १६५८ ई० के प्रारम्भ मे वह मालवा मे आ पहुँचा। उसके साथ जा मिलने से पहिले रतनसिह रतलाम आया और वहाँ अपनी जागीर एव राज्य का शासन-प्रबन्ध एव तत्सम्बन्धी सारा कार्य रामसिह को सौप दिया।[३] अपने नवयुवा उत्तराधिकारी को सारा राज्य-भार सौप कर रतनसिह निश्चित हो गया। उस दिन का गया हुआ रतनसिह लौट कर जीवित रतलाम वापस नही आया, अप्रैल १५, १६५८ ई० के दिन

---

[३] रासो०, पृ० १०२, १०४–५, १०७–११२ ।

रासोकार के अनुसार तो शुभ मुहूर्त देख कर रतनसिह ने अपने हाथो से ही तब रामसिह का राजतिलक भी कर दिया था। किन्तु अनुमान यही होता है कि वास्तव में ऐसा कोई राजतिलक इस समय नहीं हुआ, तथा रतनसिह द्वारा रामसिह को सारे राज्याधिकार सौपने का विवरण लिखते समय उसी घटना का कवि ने कल्पनापूर्ण अत्युक्तिमय वृत्तान्त यो लिख दिया। यदि उस समय रामसिह का राजतिलक होगया होता तो रतनसिह की मृत्यु के बाद पुनः राजतिलक किए जाने की आवश्यकता न होती।

धरमत के युद्ध मे रतनसिंह के खेत रहने के समाचार-मात्र रतलाम पहुँचे। और एक माह बाद मई १५, १६५८ ई० के दिन रतलाम से कोई २५ मील उत्तर-पश्चिम मे नीनोर-कोटडी के तालाब की पाल पर रतनसिह की बँधी हुई पाग के साथ उसकी चार रानियो के सती होने का विवरण भी रामसिह को ज्ञात हुआ। अपने माता-पिताओ के अन्तिम क्रिया-कर्म से निपट कर शनिवार,[४] ज्येष्ठ शुक्ला ७, १७१५ वि० (मई २९, १६५८ ई०) के दिन शुभ मुहूर्त में रामसिह रतलाम मे अपने पिता की गद्दी पर बैठा। किन्तु यह तो रामसिह का कौटुम्बिक तथा निजी राजकीय राजतिलक ही था। मुगल साम्राज्य द्वारा रामसिह का उत्तराधिकार स्वीकृत होना अब भी आवश्यक था; परन्तु रामसिह को उसके लिए अधिक समय तक प्रतीक्षा नही करनी पडी।

धरमत के युद्ध मे विजय प्राप्त कर औरगजेब और मुराद ससैन्य उत्तर की ओर बढे तथा मई २९, १६५८ ई० को आगरा से आठ मील पूर्व मे शामूगढ के मैदान मे दारा को उन्होने बुरी तरह से हराया। युद्ध मे हार कर दारा दिल्ली होता हुआ पजाब की तरफ भागा, और औरगजेब ने आगरा को जा घेरा। जून ८, १६५८ ई० को

---

[४] गुरुजी० के आधार पर रतन० (पृ० ५५) में ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी के दिन सोमवार होना लिखा है। किन्तु 'इण्डियन एफीमेरीज' के अनुसार सोमवार के दिन नवमी थी, सप्तमी के दिन शनिवार ही था। वार में गलती हो जाना अधिक सम्भव मान कर गुरुजी० में दी हुई तिथि को ही स्वीकार किया है।

कुछ ख्यातो के अनुसार रामसिह बैशाख शु० ६ या ७, सं० १७१५ वि० (बुधवार या गुरुवार, अप्रेल २८ या २६, १६५८ ई०) को रतलाम की गद्दी पर बैठा था। किन्तु गुरुजी० का कथन ही अधिक विश्वसनीय एवं सर्वथा मान्य प्रतीत होता है।

आगरा के किले पर औरगजेब का अधिकार हो गया। किन्तु दारा का पीछा करना अत्यावश्यक था, एव पॉच ही दिन बाद औरगजेब ससैन्य आगरा से दिल्ली की ओर चला। मुराद और उसके सैनिक भी औरगजेब के साथ कुछ ही मील पीछे रहते थे। दस दिन मे वे मथुरा पहुँचे, जहॉ कुछ दिन ठहरने का निश्चय हुआ। यहॉ ही जून २५-२६ की रात को औरगजेब ने मुराद को कैद कर अपना एकाधिपत्य स्थापित कर लिया, तथा जून २७ को वह पुन मथुरा से दिल्ली की ओर चल पडा।[५]

यों तो शामूगढ के युद्ध मे विजय प्राप्त करने के बाद से ही औरगजेब शासन-प्रबन्ध के साथ सारे शाही अधिकारो को स्वय काम मे लेने लगा था, किन्तु मुराद के कैद होने के बाद अब कोई भी बाधा उसके मार्ग मे नही रह गई थी। अब वह एकछत्र शासन करने लगा।[६] साम्राज्य के विभिन्न राजा-महाराजा, अमीर-उमरा तथा सेनानायक धीरे-धीरे औरगजेब की सेना मे आ मिलने लगे। आम्बेर का मिर्जा राजा जयसिह और धरमत के युद्ध से भागा हुआ राजा रायसिह सिसोदिया भी औरगजेब के दरबार मे आ पहुँचे। पिछले युद्धो मे उसका सामना करने वालो तथा उनके उत्तराधिकारियो के प्रति भी औरगजेव मेहरबानी और विश्वास दिखाने की नीति बरतने लगा।[७]

अन्य सेनानायको के साथ ही औरगजेब ने धरमत के युद्ध मे डटकर उसका सामना करने वाले और लडते-लडते ही युद्ध क्षेत्र पर मर-कटने वाले वीरवर रतनसिह राठौड़ के उत्तराधिकारी का मामला

---

[५] औरग०, १-२, पृ० ४२२, ४२६, ४३०-६।

[६] औरग०, १-२, पृ० ४२५।

[७] औरंग०, १-२, पृ० ४२५-२६; आ० ना०, पृ० १४०-२।

भी तय कर दिया। रतनसिह राठौड मुगल साम्राज्य का पुश्तैनी सेनानायक , मनसबदार और जमीदार था, एव औरगजेब ने जुलाई ३, १६५८ ई० के लगभग रतनसिंह के ज्येष्ट पुत्र, रामसिह को एक हजारी जात ८०० सवारो का मनसब प्रदान किया, और एक फर्मान द्वारा रतनसिह की वशपरम्परागत जागीर रामसिह को 'वतन' के रूप मे दी गई। इस समय रामसिह रतलाम ही था, एव उसके पास हुक्म भेजा कि वह शाही दरबार मे उपस्थित हो।[८] शाहजहाँ द्वारा नियुक्त राजा जसवन्तसिह धरमत के युद्ध से ही जोधपुर को लौट गया था। यो मालवा की सूबेदारी भी खाली ही थी। एव जब औरगजेब ने जुलाई १८, १६५८ ई० को दिल्ली के पास ही तख्तनशीन होकर स्वय को सम्राट् घोषित किया, तब उसने विभिन्न सूबो के शासन-प्रबन्ध की ओर भी ध्यान दिया। दारा द्वारा नियुक्त वजीर जाफर खॉ को औरगजेब ने मालवा का सूबेदार बना कर जुलाई २८ के दिन मालवा जाने के लिए उसे दिल्ली से रवाना किया।[९]

सन् १६५८ ई० मे जब औरगजेब ने रामसिह को रतलाम राज्य पर नियुक्त किया, तब रामसिह को केवल रतलाम परगना ही मिला। यह परगना रतनसिह को वशपरम्परागत रूपेण वतन के तौर पर जालोर परगने के बदले मे प्राप्त हुआ था। अन्य सारे परगने रतनसिह को उसके बढे हुए मनसब के अनुरूप जागीर पूरी करने के लिए ही व्यक्तिगत रूप से मिले थे। एव रतनसिह की मृत्यु के बाद ये अन्य परगने जब्त हो गए। सन् १६५८ ई० मे रामसिह को जो

---

[८] आ० ना०, पृ० १४०-१।

[९] औरंग०, १-२, पृ० ४४६; आ० ना०, पृ० १५७, १६१-२; मा० उ०, १, पृ० ५३२-३।

मनसब मिला था, उसे देखते हुए यह सम्भव भी नही जान पडता है कि इतनी अधिक आमदनी के ये अन्य परगने भी रामसिह को इस समय मिल जाते ।[१०]

---

[१०] मुगल शासन-पद्धति, शाही मनसबदारी तथा जागीर दिए जाने सम्बन्धी नियमो से अनभिज्ञ होने के कारण तथा ये विभिन्न परगने रतनसिह को किस रूप में प्राप्त हुए थे, यह निश्चित न कर सकने के फलस्वरूप ही इस घराने के पिछले इतिहासकारो ने रामसिह के अधिकार से इन परगनो के निकल जाने के अनेक भ्रमपूर्ण मनगढ़न्त कारण बताए है।

रतन० (पृ० ५३) में एक कारण यह बताया गया है कि रतनसिह ने अपने जीवनकाल में ही अपने अधिकार का बहुत सा प्रदेश अपने छोटो पुत्रो को जागीर में दे दिया था। किन्तु परिशिष्ट---१ में पहिले यह बताया जा चुका है कि अपनी जागीर को इस प्रकार बाँटना रतनसिह के अधिकार की बात न थी।

रतन० (पृ०५४) के अनुसार इसका दूसरा कारण रतनसिह के विरोधी औरगजेब का इस गृह-युद्ध मे सफल होकर मुगल सम्राट् होना था। रतलाम० (पृ०७) के ही आधार पर रेऊ ने भी (प्राचीन०, ३, पृ० ३९४) लिखा है कि "कही-कहीं पर लिखा मिलता है कि रतनसिंह की मृत्यु के बाद औरंगजेब ने राज्य पर बैठते ही उसके वशजो से राज्य का बहुत सा भाग छीन लिया था।" इस गृह-युद्ध में औरगजेब का सामना करने वालो में प्रमुख जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिह एवं रतनसिह की ही तरह औरगजेब के विरुद्ध लड मरने वाले कोटा के मुकुन्दसिह हाडा, बूँदी के छत्रसाल हाडा और किशनगढ़ के रूपसिह राठौड़ के वशजो को भी उनके विरोध के फलस्वरूप किसी प्रकार की हानि न पहुँची। ऐसी हालत में केवल रतनसिह राठोड़ के पुत्र रामसिह के प्रति ही औरगजेब की अप्रसन्नता की बात सर्वथा अनैतिहासिक तथा पूर्णतया निराधार अनुमान-मात्र साबित होती है।

मुराद को कैद करने के अनन्तर कुछ दिनो बाद जिस तत्परता के साथ औरगजेब ने स्वय ही रामसिह को नया मनसब देकर उसे रतलाम की वशपरम्परागत जागीर पर नियुक्त किया, उससे ही उपर्युक्त अनुमानो की असत्यता स्पष्ट हो जाती है।

जुलाई, १६५८ ई० मे भेजे हुए औरगजेब के हुक्म के अनुसार रतलाम से रवाना होकर रामसिह शाही दरबार मे कब और कहाँ पहुँचा था, इसका कोई ब्यौरा प्राप्त नही है। अजमेर के पास दारा को अन्तिम बार हराकर जब मार्च १८, १६५९ ई० को औरगजेब दिल्ली लौटने के लिए रवाना हुआ, तब तक तो रामसिह अवश्य ही औरगजेब की सेवा मे उपस्थित हो गया होगा। औरगजेब मई १२ को दिल्ली पहुँचा और जून ५ के दिन बडी शान-शौकत के साथ दिल्ली मे तख्त-ताऊस पर आरूढ हुआ। कोई ग्यारह माह पहिले राज्यारोहण का दस्तूर औरगजेब कर चुका था, किन्तु उस समय न तो औरगजेब को अवकाश ही था और न वह अवसर ही इस प्रकार के जलसो के उपयुक्त था। राज्याभिषेक के ये जलसे अगस्त १९, १६५९ ई० तक चलते रहे।[11] इस अवसर पर दिल्ली मे उपस्थित रहकर रामसिह ने भी उन सारे दरबारो और जलसो मे भाग लिया होगा, यह बात निश्चितरूप से कही जा सकती है। इन जलसो के बाद भी कोई ढाई माह तक औरगजेब दिल्ली मे ही ठहरा रहा, और रामसिह भी निरन्तर शाही दरबार मे उपस्थित रहा।

इस समय सुदूर बगाल मे औरगजेब का प्रधान मन्त्री, मीर जुमला, औरगजेब के भाई शुजा का पीछा कर रहा था। मीर जुमला के साथ औरगजेब का ज्येष्ठ पुत्र सुलतान मुहम्मद भी था। जून ८, १६५९ ई० को यह शाहजादा शाही सेना छोड कर शुजा से जा मिला, जिससे औरगजेब का पक्ष कुछ निर्बल हो गया। इन सारी घटनाओ का विवरण जब औरगजेब को ज्ञात हुआ तब उसने तत्काल

---

[11] आ० ना०, पृ० ३३५, ३४७, ३५१, ३६२, ३६३; औरंग०, १-२, पृ० ६१५, ६२४।

ही मीर जुमला की सहायता के लिए सेना, तोपे और युद्ध की सामग्री भिजवाने का प्रबन्ध किया। आवश्यकता पड़ने पर जल्दी ही वह स्वय भी बगाल जा पहुँचे, इस उद्देश्य से औरगजेब नवम्बर १३, १६५९ ई० को दिल्ली से इलाहाबाद के लिए रवाना हुआ।[१२]

इन्ही दिनो अवध सूबे के अन्तर्गत बैसवाडे नामक प्रदेश मे लूट-मार और उपद्रव के समाचार भी औरगजेब के पास पहुँचे थे। इस प्रदेश मे बैस राजपूतो का प्राधान्य होने के कारण ही वह बैसवाडा कहलाता था। इन्ही बैस राजपूतो एव अन्य उपद्रवियो का एक दल बहादुर पचकोटी के नेतृत्व मे सारे बैसवाडे मे लूटमार कर रहा था, जिससे उस प्रदेश मे सर्वत्र अराजकता फैली हुई थी। औरगजेब ने इन विद्रोहियो को दबाकर बैसवाडे मे शान्ति स्थापित करने के लिए बहादुर खॉ के नेतृत्व मे एक शक्तिशाली सैनिक दल बैसवाडे की ओर भेजा। बहादुर खॉ के साथ भेजे जाने वाले अन्य सेनानायको मे रामसिह राठौड भी था। यह सैनिक-दल नवम्बर १३ को सम्राट् से बिदा लेकर बैसवाडे के लिए रवाना हुआ। रवाना होते समय अन्य सेना-नायको के साथ रामसिह राठौड को भी उसके मनसब के अनुरूप खिलअत मिला।[१३]

बहादुर खाँ ससैन्य बैसवाडे पहुँचा और वहॉ बहादुर पञ्चकोटी के उपद्रव को दबाकर उसने सारे प्रदेश मे शान्ति स्थापित कर दी। औरगजेब ने बहादुर खॉ की इस सफलता का विवरण जनवरी १६, १६६० ई० को सुना। इधर बगाल मे शाही सेना को सफलता प्राप्त

---

[१२]औरग०, १-२, पृ० ५६६-६, ५८७-६; ३, पृ० ६। आ० ना०, पृ० ४०७, ५११, ४५०।

[१३]आ० ना०, पृ० ४५०-१; औरंग०, ३, पृ० २१-२२।

होने लगी थी, एव औरगजेब ने स्वय इलाहाबाद जाना आवश्यक नही समझा। वह तो शमसाबाद के पडाव से ही दिल्ली की ओर लौट पडा। किन्तु इस समय बहादुर खॉ के समान सेनानायक का इलाहाबाद मे ठहरे रहना उसने आवश्यक समझा, एव औरगजेब ने तगय्युर खॉ को बदल कर उसके स्थान पर बहादुर खॉ को इलाहाबाद का सूबेदार नियुक्त किया। बहादुर खॉ को हुक्म हुआ कि वह सीधा ही इलाहाबाद चला जावे। रामसिह की नियुक्ति भी बहादुर खॉ के साथ की गई, एव अपनी सूबेदारी का काम सभॉलने को जब बहादुर खाँ इलाहाबाद गया तब रामसिह भी उसके साथ ही बना रहा। बैसवाडे के चढाई पर गए हुए अन्य सेनानायक लौट कर अप्रेल २८, १६६० ई० को दिल्ली पहुँचे।[१४]

मई १६६० ई० के प्रारम्भ से ही औरगजेब के शासनकाल का तीसरा जुलूसी साल शुरू हो गया था, एव इसकी खुशी मे मई २४, १६६० ई० से दिल्ली मे उत्सव मनाए जाने लगे। ये उत्सव प्रारम्भ हुए उसी दिन (मई २४ को) बगाल से शाही सेना की पूर्ण सफलता के समाचार प्राप्त हुए। मीर जुमला के हाथो निरन्तर पराजित और बुरी तरह से खदेडा हुआ शुजा अन्त मे मई ६ को ढाका से अरा-कान की ओर भाग खडा हुआ, जिससे सारे बगाल पर औरगजेब का अधिपत्य हो गया। बगाल पर जीत की इस खबर ने जलसे की खुशी को दुगुना कर दिया। इस अवसर पर औरगजेब ने कई एक को इनाम और मनसब मे तरक्कियॉ दी। रामसिह इस समय इलाहाबाद मे था, किन्तु औरगजेब उसे भी भूला नही। रामसिह का मनसब एक हजारी जात–आठ सौ सवारो का था, उसमे दो सौ सवार

---

[१४] आ० ना०, पृ० ४६१-२, ४६५, ४७६; औरंग०, ३, पृ० ६।

बढा कर एक हजारी जात–एक हजार सवार का कर दिया गया।[१५] इस समय रामसिह बहादुर खॉ के साथ इलाहाबाद मे कब तक रहा इसका कोई भी विवरण नही मिलता है। इन अगले चार वर्षो मे रामसिह कहॉ रहा और उसने क्या किया यह सब अज्ञात ही है। सन् १६६४ ई० के प्रारम्भ मे वह लौट कर रतलाम चला आया होगा। मिर्जा राजा जयसिह के साथ शाही सेनामे सम्मिलित होकर दक्षिण जाने का हुक्म उसे रतलाम मे ही मिला था ऐसा अनुमान होता है।[१६]

२. मिर्ज़ा राजा जयसिंह के साथ दक्षिण में—शिवाजी और बीजापुर पर चढ़ाइयाँ; रामसिंह की पुत्री का विवाह; रामसिंह की दिन-चर्य्या, आदि; १६६४-१६७८ ई०

इधर कई वर्षो मे मरहठो का नेता शिवाजी सुदूर महाराष्ट्र मे सर्वत्र मुगल साम्राज्य के प्रति विरोध एव विद्रोह की आग फैला रहा था। सुप्रसिद्ध मुगल सेनापति शायस्ता खॉ भी उसे दबाने मे सफल नही हुआ था। सन् १६६४ ई० के प्रारम्भ मे शिवाजी ने सूरत को पहली बार लूटा। तब तो शिवाजी को दबाने के लिये अपने सर्वश्रेष्ठ हिन्दू और मुसलमान सेनापतियो को एक बडी सेना के साथ दक्षिण भेजने का औरगजेब ने निश्चय किया, और सितम्बर ३०, १६६४ ई० के दिन उसने आम्बेर के मिर्जा राजा जयसिह को इस सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त किया। दिलेर खॉ, दाऊद खॉ कुरेशी, राजा रायसिह

---

[१५] आ० ना०, पृ० ४८१, ४८३; औरंग०, १-२, पृ० ४८६, ६०६-७।

[१६] राम० (पृ० ७२-४) मे यह स्पष्ट नहीं लिखा है कि दक्षिण जाने सम्बन्धी शाही हुक्म का फरमान रामसिह को कहाँ मिला था, किन्तु वहाँ दिए गए विवरण से यहीं अनुमान होता है कि उस समय वह रतलाम ही में था।

सिसोदिया, राजा सुजानसिंह बुन्देला, आदि अनेकानेक प्रमुख सेना-नायक इस सेना मे नियुक्त किये गये।[१७] अन्य राजपूत सेनानायकों के साथ ही रामसिंह राठौड और उसके छोटे भाई करण राठौड को भी हुक्म मिला कि वे अपने-अपने सैनिक लेकर दक्षिण जाने वाली इस सेना मे सम्मिलित हो जावे। इधर कुछ समय से करण राठौड की भी नियुक्ति शाही मनसबदारो मे हो गई थी, और अपनी वीरता के कारण ऐसे महत्वपूर्ण अवसरो पर शाही सेना मे उसे भी सम्मिलित किया जाने लगा था।

इस समय रामसिंह रतलाम मे ही था, एव जयसिंह के साथ जा मिलने का यह शाही हुक्म रतलाम मे ही उसे मिला। कुछ ही माह बाद दिसम्बर १६६४ ई० मे जब जयसिंह ससैन्य मालवा मे आया तो रामसिंह भी अपने साथियो के साथ वही शाही सेना मे जा मिला।[१८] यही जयसिंह ने अपने अन्य साथी सेनानायको को भी एकत्र कर चढाई की पूरी तैयारी की, और तब जनवरी ९, १६६५ ई० के दिन उसने ससैन्य हण्डिया के पास नर्मदा नदी पार की; उसके साथ

---

[१७]औरंग०, ४, पृ० ७४-७५; शिवाजी०, पृ० १०५; आ० ना०, पृ० ८६८।

[१८]राम० में शिवाजी के विरुद्ध मिर्जा राजा जयसिंह की इस चढ़ाई और उसमें रामसिंह के भी सम्मिलित होने का कोई उल्लेख नहीं है। राम० के अनुसार बीजापुर पर चढ़ाई कर जब जयसिंह दक्षिण गया, तब ही शाही आज्ञानुसार रामसिंह भी उसके साथ जा मिला था। राम०, पृ० ७२-७४, ८६। किन्तु सन् १६६४ ई० में इस बार शिवाजी के विरुद्ध जयसिंह के साथ गया हुआ रामसिंह बीजापुर की चढ़ाई के बाद ही उत्तरी भारत के लिए लौटा। इस चढ़ाई में कवि ने केवल बीजापुर के विरुद्ध किए गए युद्धो का ही उल्लेख कर यह भ्रम उत्पन्न कर दिया है।

ही रामसिह राठौड, करण राठौड और उनके सैनिक दक्षिणी भारत की ओर बढे । सेना को लेकर जयसिह बडी तेजी से महाराष्ट्र की ओर चला । फरवरी १०, १६६५ ई० को औरगाबाद पहुँच कर वहाँ शाहजादे मुअज्जम से मिला और तीन ही दिन बाद वहाँ से वह पूना के लिए चल पडा । जयसिह और उसकी सेना मार्च ३ को पूना पहुँचे । जोधपुर का महाराजा जसवन्तसिह इस समय पूना मे नियुक्त था, एव जयसिह को वहाँ का सारा भार सौप कर मार्च ७ को जसवन्तसिह उत्तरी भारत को लौट पडा ।[११]

पूना पहुँच कर अपनी सेना को विश्राम देने तथा महाराष्ट्र की राजनैतिक और सैनिक परिस्थिति को समझने-बूझने मे जयसिह ने पूरे दस दिन बिताए । तब उसने सासवड मे अपना डेरा डाल कर पुरन्धर किले का घेरा लगाने का निश्चय किया । रामसिह राठौड, करण और उनके सैनिक भी जयसिह के साथ ही पूना पहुँचे और मार्च १४ को जब जयसिह पूना से सासवड की ओर चला तब वे भी पुरन्धर की ओर बढे । किन्तु पूना से चलने के दूसरे दिन ही जयसिह ने शिवाजी के लोहगढ आ पहुँचने का विवरण सुना, जिससे उसे कुछ दिन तक वही पूना के पास ही ठहर कर आवश्यक सैनिक प्रबन्ध करना पडा । अन्त मे मार्च २३ को रवाना होकर लोनी होता हुआ मार्च २९ के दिन सासवड से केवल एक ही पडाव की दूरी पर वह जा पहुँचा । इस समय रामसिह राठौड और उसके सैनिक सेनानायक दाऊद खॉ के साथ थे । इस पडाव से जयसिह ने दिलेर खॉ को आगे भेजा कि वह अगले पडाव का उचित प्रबन्ध कर रखे । दाऊद खॉ और उसके साथियो को रक्षार्थ उसी पडाव पर पीछे छोडकर मार्च ३० को जयसिह

---

[११] औरग०, ४, पृ० ७५; शिवाजी०, पृ० १०५-६ ।

आगे बढा। उधर दिलेर खॉ भी अपने सैनिको के साथ आगे बढता हुआ पुरन्धर के पास तक जा पहुँचा, जहॉ मरहठे सैनिको के साथ उसकी मुठभेड हो गई। दिलेर खॉ के इस युद्ध का विवरण जब जयसिह को ज्ञात हुआ तो उसने अपने पुत्र कीरतसिह के सेनापतित्व मे कोई तीन हजार सवार भेजे, और उधर दाऊद खॉ भी अपने साथी सेनानायको को लेकर दिलेर खॉ की सहायता के लिए सीधा ही जा पहुँचा। यो रामसिह राठौड और उसके सैनिक भी मार्च ३० को ही पुरन्धर किले के पास जा पहुँचे। दूसरे दिन जयसिह भी वहॉ आ गया और शाही सेना ने पुरन्धर का घेरा डाला। जयसिह के मोर्चे की दाहिनी ओर राजा नरसिह गौड के साथ ही करण राठौड नियुक्त किया गया। पुरन्धर किले के पीछे की खिडकी के सामने ही दाऊद खॉ ने अपना मोर्चा बनाया। रामसिह राठौड और उसके सैनिक भी दाऊद खॉ के साथ इस मोर्चे मे जा डटे।[२०]

मार्च ३१ से लेकर नवम्बर मास तक रामसिह राठौड, करण राठौड़ और उनके सैनिक पुरन्धर किले के सामने ही डटे रहे। इस अरसे मे वे कब, कहॉ और किसकी कमान मे रहे तथा उन्होने किस-

---

[२०] औरग०, ४, पृ० ८०-८४; शिवाजी०, पृ० ११३-७; आ० ना०, ८९१।

आ० ना० में रामसिह का उल्लेख करते समय उसके राठौड होने का खुलासा नही किया। भारतवर्षीय इतिहास में रामसिह राठौड अधिक सुप्रसिद्ध नहीं था, एव यह निश्चित करते समय कि यह रामसिह कौन-सा था, सर यदुनाथ सरकार को उसके कोटा के सुप्रसिद्ध वीर रामसिह हाडा होने की आशंका हुई अतएव अपने उपर्युक्त दोनों ग्रन्थो में उन्होने इसी का शकापूर्ण उल्लेख किया है। किन्तु रामसिह हाड़ा सन् १६८५ ई० के बाद ही अपने पिता के साथ शाही सेना में सम्मिलित हुआ था। डाक्टर मथुरालाल कृत 'कोटा राज्य का इतिहास', प्रथम भाग, पृ० २०२।

किस युद्ध या आक्रमण मे भाग लिया इसका कोई भी ब्यौरे-वार विवरण नही मिलता है ।

मुगल सेना पुरन्धर किले का घेरा डाले पडी थी। उसी के साथ अप्रेल १४, १६६५ ई० के दिन शाही सेना के एक दल ने रुद्रमाल किले पर अधिकार कर लिया । यही रुद्रमाल किला बाद मे 'वज्रगढ' नाम से प्रसिद्ध हुआ । शिवाजी ने भी अब मुगलो के साथ चलने वाले इस निरन्तर युद्ध का अन्त करना चाहा, एव पुरन्धर किले के सामने लगे हुए शाही सेना के शिविर मे आकर शिवाजी ने जून ११ के दिन जयसिह से भेट की और तत्काल ही सन्धि की बातचीत भी प्रारम्भ कर दी, जिसके फलस्वरूप दूसरे दिन ही मरहठो ने पुरन्धर किला मुगलो को सौप दिया । सन्धि की सारी शर्ते तय होकर जून १३ के दिन दोनो दलो द्वारा स्वीकृति हो गई । "पुरन्धर की इस सन्धि" ने शिवाजी और मुगलो के वैमनस्य का कुछ समय के लिए तो अन्त कर दिया । औरगजेब की स्वीकृति की सूचना सितम्बर माह के अन्तिम दिनो मे पुरन्धर पहुँची, एव शिवाजी ने पुरन्धर पहुँच कर सितम्बर ३०, १६६५ ई० के दिन शाही फरमान, अन्य पुरस्कार, आदि स्वीकार किये ।[२१]

शिवाजी के साथ चलने वाले युद्ध का अन्त हो जाने पर भी जयसिह शाही सेना के साथ पुरन्धर किले के पास ही डेरा डाले बीजापुर पर चढाई की तैयारियाँ करने लगा । जयसिंह जब उत्तरी भारत से रवाना हुआ था, तभी औरगजेब ने उसे बीजापुर पर भी चढाई करने का हुक्म दिया था। किन्तु जयसिह ने तब शिवाजी और बीजापुर पर एक साथ ही चढाई करना उचित नही समझा था ।

---

[२१] औरंग०, ४, पृ० ८४-९८; शिवाजी०, पृ० ११७-१३२; हाउस०, पृ० १०४-१२८ ।

शिवाजी के साथ सन्धि हो जाने के बाद अब कोई भी बाधा नही रह गई थी, उलटे पुरन्धर की सन्धि के अनुसार तो अब बीजापुर के विरुद्ध इस चढाई मे जयसिह की सहायता करना शिवाजी के लिए आवश्यक हो गया था। बीजापुर पर इस चढाई के लिए यो तो अनेकानेक कारण बताए जा सकते है, किन्तु प्रधान और एक-मात्र ठीक कारण बीजापुर को मुगल साम्राज्य के आधीन करना ही कहा जा सकता है।[२२]

जयसिह चाहता था कि चढाई की पूरी-पूरी तैयारी कर वह एकाएक बीजापुर पर हमला कर दे जिससे उसे आसानी से विजय प्राप्त हो जावे। परन्तु तदर्थ आवश्यक द्रव्य के लिए उसे बाट जोहना पड रही थी। नवम्बर १२, १६६५ ई० को यह खजाना जयसिह के पास पहुँचा और उसके एक सप्ताह बाद ही वह शाही सेना को लेकर बडी तेजी से बीजापुर की ओर चल पडा। बीजापुर पर चढाई करने वाली इस शाही सेना मे रामसिह राठौड और करण राठौड की भी नियुक्ति की गई थी।[२३] यो कोई साढे सात महीने के लगभग पुरन्धर किले के आस-पास बिता कर नवम्बर १९, १६६५ ई० को ये दोनो भाई अपने सैनिको के साथ वहाँ से चल पड़े।

शाही सेना को लेकर एक माह तक तो जयसिह सफलतापूर्वक बिना किसी विरोध के आगे बढता ही गया। पुरन्धर से फलटण होता हुआ दिसम्बर १८,१६६५ ई० को वह मगलविडे पहुँचा, और वहाँ से भी आगे बढा। दिसम्बर २५ को पहली बार शाही सेना की दुश्मन के साथ मुठभेड हुई, शाही सेना को इस युद्ध मे काफी

---

[२२] औरग०, ४, पृ० ११८-१२१; शिवाजी०, पृ० १३२-३।

[२३] औरंग०, ४, पृ० १२८-१२९; आ० ना०, पृ० ९८८।

हानि पहुँची, फिर भी दिलेर खाँ के प्रयत्नो से शत्रुओ को हार मान कर भाग जाना पडा। किन्तु दुश्मनो का विरोध बढता जा रहा था और शाही सेना को निरन्तर उनका सामना करना पड रहा था। ऐसी परिस्थिति मे किसी तरह रुकते-बढते शाही सेना के साथ जयसिह दिसम्बर २९, १६६५ ई० को बीजापुर से १२ मील की दूरी तक जा पहुँचा। किन्तु अब आगे बढना सम्भव नही था। बीजापुर शहर के बचाव का पूरा-पूरा प्रबन्ध कर लिया गया था, और जयसिह के पास किले का घेरा डाल उस पर आक्रमण करने के लिए आवश्यक तोपे भी न थी। बीजापुर के आसपास चारो ओर छ-छ मील तक सारा प्रदेश बीजापुरियो ने बरबाद कर दिया था कि कही भी दाना-पानी देख पडना सर्वथा असम्भव हो गया। उधर बीजापुरियो के सैनिक-दल शाही सेना के चारो ओर चक्कर काटने लगे। जयसिंह के साथी शाही सेनानायको ने भी उसे वापस लौटने की सलाह दी। एव जनवरी ५, १६६६ ई० तक वही ठहर कर जयसिह ससैन्य लौट पडा।[२४]

किन्तु सौभाग्य ने अब भी जयसिह का साथ नही दिया। बीजापुरी सैनिक-दल शाही सेना का निरन्तर पीछा कर रहे थे और अवसर पाकर हमला करने से चूकते न थे। जयसिह उत्तर की ओर लौट रहा था। जनवरी ११ को मगलविडे के पास पहुँचा, और उसी दिन उसे बीजापुरियो से युद्ध भी करना पडा। चार-पाँच दिन तक यही ठहर कर वह परेण्डा की ओर लौटने लगा। राह मे जनवरी २२ के दिन भीमा नदी के तट पर लोहारी नामक स्थान मे शाही सेना और बीजापुरियों की पुन. मुठभेड हुई। दोपहर के समय

---

[२४] औरग०, ४, पृ० १२९-१३५; आ० ना०, पृ० ९८८-९९९।

अपने पडाव पर पहुँच कर जब जयसिह अपने सामान-असबाब तथा शाही खजाने की रक्षा का प्रबन्ध कर रहा था, तभी बीजापुरी सैनिक-दल ने आक्रमण कर दिया। सामने पडने वाले नाले के पीछे शाही सेना ने अपना मोर्चा स्थापित कर शत्रु का सामना किया। दाऊद ख़ॉ दाहिनी ओर और दिलेर खॉ बाई तरफ था। जयसिह समय-समय पर उनकी सहायता करता रहा। अन्त मे दिलेर खॉ ने उन्हे मार भगाया। किन्तु तभी शत्रुओ के एक दूसरे दल ने सीधा जयसिह पर आक्रमण किया। जयसिह के पुत्र कीरतसिह और फतेह जग खॉ ने उनका सामना किया। जयसिह का विश्वस्त सेनानायक हरनाथ चौहान वीरतापूर्वक लडता हुआ काम आया। "सैय्यद मुनव्वर खॉ, रतन राठौड का लडका रामसिह और उसका भाई (करण) जो गोल सेना मे नियुक्त थे, आगे बढे और दुश्मनो पर टूट पड़े।" घमासान युद्ध हुआ और अन्त मे शत्रुओ को हार कर भागना पडा। इस युद्ध मे शाही सेना के १९० सैनिक मारे गए और २५० के लगभग घायल हुए। शत्रुओ की हानि बहुत अधिक हुई, ४०० से भी अधिक मारे गए और एक हजार के लगभग घायल हुए। रामसिह की वीरता का उल्लेख करते हुए जयसिह ने औरगजेब को निवेदन किया—"रतनसिह राठौड के लडके रामसिह ने युद्धक्षेत्र मे बडी वीरता दिखाई, एव निवेदन है कि उसके मनसब मे पॉच सदी जात—दो सौ सवारो की वृद्धि की जावे। आशा है कि मेरी यह प्रार्थना स्वीकार होगी।" जयसिह की यह प्रार्थना स्वीकृत हुई या नही यह ज्ञात नही हो सका है।[२५]

---

[२५] औरंग०, ४, पृ० १३५-१३९; आ० ना०, पृ० ९९९-१००६; हफ़्त अंजुमन (बनारस वाली प्रति), पृ० ८९-९२।

लोहारी का युद्ध किस दिन हुआ, इस बाबत विभिन्न इतिहासकारों में

लोहारी से चलकर जनवरी २७, १६६६ ई० को जयसिह ससैन्य सुलतानपुर पहुँचा। इन सब युद्धो के बाद जयसिह ने अपनी सेना को विश्राम देना आवश्यक समझा, एव परेण्डा से १६ मील दक्षिण में सीना नदी के तीर पर स्थित सुलतानपुर में ही उसने डेरा डाल दिया और फरवरी १९ तक वही ठहरा रहा। फरवरी २० को वहाँ से ससैन्य रवाना होकर आगामी साढे तीन माह जयसिह भीमा-मजीरा के इस प्रदेश में घूम-घूम कर शत्रुओ को दबाने का प्रयत्न करता रहा। शाही सेना ने चार घमासान लडाइयाँ भी लडी, किन्तु फिर भी शत्रु को सफलतापूर्वक दबाने मे जयसिह सर्वथा असमर्थ ही रहा।[३६]

इस सारे अरसे मे रामसिह राठौड और करण राठौड भी अपने सैनिको को लेकर जयसिह के साथ ही बने रहे। पहली दो लड़ाइयाँ मार्च २९ के लगभग और तीसरी अप्रेल २, १६६६ ई० को लड़ी गई, किन्तु उनमे इन दोनों भाइयों ने कोई भाग लिया था या नही और

मतभेद है। आ० ना० के अनुसार यह युद्ध २६ रजब—जनवरी २२ को हुआ था। किन्तु हफ़्त अजुमन में इस युद्ध की तारीख २९ रजब—जनवरी २५ लिखी है। सर यदुनाथ ने आ० ना० में दी हुई तारीख को सही मान कर स्वीकार किया है।

नक्शो मे लोहारी नामक स्थान का कहीं भी उल्लेख नही मिलता है। सुलतानपुर और मंगलविड़े के बीच के प्रदेश मे कहीं यह स्थान होगा। औरंग०, ४, पृ० १३५ फु० नो०।

सन् १६६० ई० मे रामसिह के मनसब मे वृद्धि हुई थी; उसके बाद सितम्बर १६८० ई० में ही रामसिह के मनसब का कोई उल्लेख मिलता है। इस बीच कब-कब उसके मनसब में क्या-क्या घटा-बढ़ी हुई इसका कोई भी उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता है।

[३६] औरंग०, ४, पृ० १४१-२; आ० ना०, पृ० १००७-१०२१।

१४

अगर वे युद्धो मे सम्मिलित हुए थे तो उन्होने क्या किया इसका कोई भी स्पष्ट उल्लेख नही मिलता है। चौथा युद्ध मई ४ को हुआ था। लाटूर से चलकर जयसिह ने शाही सेना के साथ अप्रेल १६ को तिर्णा नदी के किनारे मुकाम लगाया। तेरह दिन तक वहाँ ठहर कर उसी नदी के किनारे-किनारे वह उत्तर-पश्चिमी दिशा मे आगे बढा और मई ४ के दिन परगना धोकी के अन्तर्गत थेअर किले के पास जा पहुँचा और वही पडाव किया। यह किला तुलजापुर से कोई २४ मील उत्तर मे तिर्णा नदी के दक्षिणी तट पर बना हुआ था। शाही सेना वहाँ पहुँची ही थी कि बीजापुर एव गोलकुण्डा की सम्मिलित सेनाओ के उस ओर बढने की सूचना मिली। जयसिह ने दिलेर खाँ आदि सेनानायको को भी सहायतार्थ बुलवा भेजा और उन सबको साथ लेकर वह शत्रुओ का सामना करने को बढा। रामसिह राठौड और करण राठौड भी जयसिह के साथ ही थे। डट कर लडाई हुई, जिसमे ये दोनो भाई वीरतापूर्वक लडते हुए घायल हुए। अन्त मे शत्रु-सेना को हार कर लौटना पडा। इस युद्ध के बाद कुछ समय तक तो इन दोनो आहत वीर भाइयो को विश्राम लेना पडा होगा।[२७]

इस युद्ध के कुछ समय बाद तक तो जयसिह भी शत्रुओ का पीछा करते रहने का प्रयत्न करता रहा, किन्तु अन्त मे उसने अनुभव किया कि शाही सेना इतनी थक चुकी थी कि वह उसका साथ नही दे सकेगी। बरसात का मौसम भी अधिक दूर न था, एव औरगजेब ने भी जयसिह को हुक्म दिया था कि वह औरगाबाद को लौट आवे। अतएव मई ३१, १६६६ ई० को भीमा नदी के तट से शाही सेना परेण्डा के लिए लौट पडी। जयसिह के साथ ही रामसिह राठौड

---

[२७] औरंग०, ४, पृ० १४१-१४२; आ० ना०, पृ० १०१४।

और करण राठौड भी परेण्डा होते हुए भूम नामक स्थान पर जा पहुँचे। बीड से पूरे चालीस मील दक्षिण मे इस स्थान मे जयसिह सितम्बर २७, १६६६ ई० तक ससैन्य ठहरा रहा। तब वहाँ से रवाना होकर अक्तूबर २० को वह बीड पहुँचा और एक माह के लगभग वहाँ ठहर कर औरगाबाद के लिए रवाना हुआ। शाही सेना के साथ रामसिह राठौड और उसका भाई नवम्बर २६, १६६६ ई० के दिन औरगाबाद पहुँच गए।[२८]

औरगाबाद चले आने पर जयसिह तो मई, १६६७ ई० तक वही बना रहा, किन्तु रामसिह राठौड को सन् १६६७ ई० के प्रारम्भिक महीनो मे ही औरगाबाद से रतलाम वापस लौट आना पडा, क्योकि उसकी एक-मात्र कन्या अमर कुँअर[२९] का विवाह मेवाड के महाराणा राजसिह के द्वितीय पुत्र सरदारसिह के साथ इसी वर्ष मे होने वाला था। सरदारसिह के और भी विवाह पहिले हो चुके थे,[३०] पुन ख्यातो के अनुसार इस समय अमर कुँअर की उम्र नौ वर्ष के लगभग ही थी। किन्तु उन दिनो राजपूतो मे बहुविवाह तथा बालविवाह की कुप्रथाएँ सर्वत्र प्रचलित थी, एव इन बातो की ओर ध्यान नही दिया गया।

महाराणा अपने पुत्र की इस बरात मे कोई चार हजार सवार रतलाम ले जाना चाहता था। रतलाम जाने के लिए शाही प्रदेश मे होकर ससैन्य गुजरने के वास्ते महाराणा ने औरगजेब की आज्ञा

---

[२८] औरग०, ४, पृ० १४१-१४३, १४४, आ० ना०, पृ० १०१८-१०२१।

[२९] गुरूजी०, बडवो की ख्याते। राणी० में इसका नाम हरकुँअर लिखा है।

[३०] सरदारसिह का एक विवाह सन् १६६३ ई० (स० १७२० वि०) में बूँदी के रावराजा भावसिह के छोटे भाई भगवन्तसिह की पुत्री जसवन्त कुँअर के साथ हुआ था। वंश०, ३, पृ० २७१५।

चाही, और प्रार्थना की कि मालवा सूबा के शाही कर्मचारियो को हुक्म हो जावे कि वे उदयपुर से जाने वाली इस बरात के साथ कोई रोक-टोक न करे। महाराणा राजसिह की यह अर्जी जून ३०, १६६७ ई० को औरगजेब के सम्मुख पेश हुई। औरगजेब ने बरात मे इतने अधिक सवार ले जाना अनावश्यक समझा और हुक्म दिया कि चार-पॉच सौ सवारो से ही काम चल जावेगा।[३१] यह विवाह सन् १६६७ ई० के अन्तिम महीनो मे सम्पन्न हुआ होगा। इस विवाह सम्बन्धी विशेष विवरण प्राप्य नही है।

किन्तु यह विवाह किसी भी प्रकार सुखदायक नही हुआ। राजसिह की रानियॉ अपने-अपने पुत्र को राज्य का उत्तराधिकारी बनाने के लिए निरन्तर षड्यन्त्र रचा करती थी, जिनके फलस्वरूप पहिले राजसिह ने अपने ज्येष्ठ पुत्र सुलतानसिह की हत्या की। तब सरदारसिह राज्य का उत्तराधिकारी बना। कहा जाता है कि अब तो सरदारसिह की जननी, जैसलमेर की भटचाणी रानी चन्द्रमती ने पुरोहित के साथ मिल कर अपने पति की ही हत्या करवाने का षड्यन्त्र किया, जिससे कि सरदारसिह तत्काल ही मेवाड का शासक बन सके। किन्तु योगायोग से इस षड्यन्त्र का भेद निश्चित समय से कुछ दिन पहिले ही खुल गया। यह सारा हाल जान कर राजसिह ने अपनी इस भटचाणी रानी और उस षड्यन्त्र-कारी पुरोहित का स्वय ही वध किया। सरदारसिह तो इस षड्यन्त्र से पूर्णतया अनभिज्ञ और सर्वथा निरपराध था। किन्तु अपने लिए अपनी माता द्वारा रचे गए इस षड्यन्त्र का विवरण सुन कर उसे बहुत ही आत्म-ग्लानि हुई। पिता को अपना मुँह न दिखाने का

---

[३१] जय० अख०, औरं०, १० (१), पृ० ३४३।

निश्चय किया और विष खाकर सरदारसिह ने आत्मघात किया।[32]

उदयपुर मे इस प्रकार जब सरदारसिह की मृत्यु हुई तब अमर कुँअर रतलाम ही थी। उस इग्यारह-वर्षीय बालिका की माँग का सिन्दूर यो पोछा गया। रतलाम मे ही सोमवार, आषाढ शु० ५, १७२७ वि० (जून १३, १६७० ई०) के दिन अमर कुँअर सती हुई।[33]

अपनी पुत्री के विवाह के बाद रामसिह कब तक रतलाम रहा

---

[32] इस घटना के विस्तृत विवरण के लिए देखो—वीर०, २, पृ० ४४५-६, ४७५-६; उदय०, २, पृ० ५७० फु० नो० ६; वंश०, ३, पृ० २८३०-३।

[33] अमर कुँअर के सती होने की तिथि गुरूजी० के आधार पर दी गई है। गुरूजी० में दिये हुए सवत् को श्रावणादि मानें तो अमरकुँवर के सती होने की तारीख सन् १६७६ ई० में आती है। 'इण्डियन एफीमेरीज' में इस वर्ष द्वितीय ज्येष्ठ मास का होना लिखा है, जो सम्भवत. गणनाभेद के कारण न भी हो, तदनुसार इस सती की तारीख हो सकती है, द्वितीय ज्येष्ठ शु० ५—सोमवार, जून २, १६७६ ई०, या आषाढ़ शु० ५—गुरुवार, जुलाई ३, १६७६ ई०।

वंश० (३, पृ० २८३३) के अनुसार सरदारसिह की मृत्यु सन् १६६८ ई० के अक्तूबर मास में ता० ६ (आश्विन सुदी पूर्णिमा) या ता० २६ (कार्तिक सु० १) को हुई थी।

राजसमुद्र तालाब बनाने के लिए बताए जाने वाले विभिन्न कारणो मे से एक कारण अपने पुत्र, रानी एव पुरोहित की इन हत्याओ के पाप-निवारण का भी है। किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से यह ठीक नही जान पड़ता। राजसमुद्र के बाँध की नीव की खुदाई का कार्य जनवरी १, १६६२ ई० (माघ कृष्णा ७, १७१८ वि०) को प्रारम्भ हुआ था, और रानी तथा पुरोहित की ये हत्याएँ उससे कोई छः-सात साल बाद ही हुई थीं।

अमर कुँअर की इस सती की स्मारकरूप छत्री रतलाम में कालका माता के मन्दिर के पीछे वाले बाग़ में बनी हुई थी। नवम्बर १८७५ ई० में उस छत्री को तोड़-फोड़ कर खुदवा डाला गया। गुरूजी०।

इसका कोई विवरण प्राप्य नही है। रामसिह के अगले इग्यारह वर्षों का इतिहास (१६६७-१६७८ ई०) अन्धकारपूर्ण है। औरगजेब के शासनकाल के प्रारम्भिक दस वर्षों का विस्तृत विवरण 'आलमगीर-नामे' मे दिया गया है, परन्तु उसके बाद के वर्षों का उसी प्रकार का ब्यौरेवार इतिहास किसी भी ग्रन्थ मे नही मिलता है। इन इग्यारह वर्षों के जो भी अखबार मिलते है वे सख्या मे बहुत ही थोडे है, और उनमे रामसिह सम्बन्धी कोई भी उल्लेख नही पाया जाता है। यही कारण है कि इन वर्षों मे रामसिह की हलचलो आदि का प्रामाणिक विस्तृत विवरण नही लिखा जा सकता है। यत्र-तत्र प्राप्त ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर जो-जो महत्वपूर्ण बाते ज्ञात हो सकी है, उनका ही उल्लेख किया जा रहा है।

रतलाम राज्य के अन्तर्गत शेजावता नामक गाँव मे एक बावडी बनी हुई है, जिसमे रामसिह राठौड का समकालीन एक शिलालेख लगा हुआ है। यह गाँव तब भी रतलाम परगने के अन्तर्गत रामसिह राठौड के आधीन था। इसी कारण उक्त शिलालेख मे रामसिह राठौड का तत्कालीन राजा के तौर पर उल्लेख किया गया है। उस शिलालेख से ज्ञात होता है कि गगागिर नामक एक गुसाँई ने मई ९, १६६६ ई० के दिन इस बावडी को बनवाने का काम प्रारम्भ किया और कोई साढे चार साल के बाद अक्तूबर, १६७० ई० मे जाकर वह पूरी बन कर तैयार हुई। इस बावडी को बनवाने मे तब कोई इक्कीस हजार रुपये लगे थे।[१४]

---

[१४] रतलाम राज्य मे पाए जाने वाले शिलालेखो में यही लेख सबसे पुराना है। शेजावता गाँव आजकल पंचेड़ ठाकुर की जागीर में है, किन्तु इस गाँव का एक हिस्सा अब भी माफी के तौर पर गुसाइयो के अधिकार में है। रतलाम०, पृ०, १५-१६।

यह पहिले ही लिखा जा चुका है कि सन् १६५६ ई० के लगभग बॉसवाडा और रतलाम की सीमा पर रामावत राठौड अपना आधिपत्य स्थापित करने का बहुत कुछ प्रयत्न कर रहे थे। ऐसा प्रतीत होता है कि सन् १६७० ई० के लगभग उनके ये प्रयत्न सफल हुए। जिस रामसिह के वशज होने के कारण ये रामावत राठौड कहलाते थे, उसी रामसिह का पौत्र अमरसिह राठौड इस समय उनका प्रधान व्यक्ति था। उसकी सेवाओ से प्रसन्न होकर रामसिह राठौड़ ने अमरसिह को रतलाम परगने मे से खेडा-टप्पा के कोई साठ गॉव सन् १६७१ ई० मे जागीर मे दिए।[३५] ये गॉव बॉसवाडा की सरहद

---

[३५] खेडा की यह जागीर कुशलगढ को कब दी गई इस प्रश्न पर दो विभिन्न मत पाए जाते हैं।

(१) एक मत तो यह है कि यह जागीर सन् १७८२ ई० में दी गई। रतलाम० (पृ० १५) एव 'रूलिंग प्रिन्सेज एण्ड चीफ्स आफ राजपूताना' शीर्षक अंग्रेजी प्रकाशनो मे यही सन् दिया गया है। किस आधार पर यह सन् ठीक माना गया, इसका कोई निर्देश उनमें नहीं मिलता है।

(२) दूसरा मत है कि यह जागीर अमरसिह रामावत को मिली थी, जो रामसिह राठौड का समकालीन था। राजपूताना गेजेटियर में दिए गए कुशलगढ सम्बन्धी विवरण में यही लिखा है (राजपूताना गेजेटियरर्स, १६०८ ई०, खण्ड २-अ, पृ० १६०)। ओझाजी ने भी इसी बात को ठीक मानकर दुहराया है (बॉसवाडा०, पृ० २२६)। गुरूजी० में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है। रतलाम० के उपर्युक्त उल्लेख के विरोध में एक दूसरा उल्लेख उसी ग्रन्थ में (पृ० १५४-१५५) मिलता है जिससे भी इस दूसरे मत का समर्थन होता है। रतलाम राज्य के जागीरदारो की सूची देते हुए वहाँ लिखा है कि खेड़ा-टप्पा की यह जागीर कुशलगढ के अमरसिह राठौड को राजा रामसिह ने सन् १६७१ ई० के लगभग दी थी।

सब बातो पर विचार करने से दूसरा मत ही ठीक जान पड़ता है, एव उसे स्वीकार किया है।

से मिले हुए रतलाम परगने के प्रदेश मे है। अमरसिह रामावत को खेडा की यह जागीर देकर रामसिह राठौड ने वर्तमान कुशलगढ ठिकाने की नीव डाली।

यह सत्य है कि इन वर्षो की अन्य ऐतिहासिक घटनाओ का विवरण नही मिलता है, परन्तु रामसिह सम्बन्धी एक काव्य ग्रन्थ मिला है, जिससे रामसिह के दैनिक जीवन और उसकी रुचि आदि का कुछ-कुछ पता लगता है। "रामचरित्र" शीर्षक इस काव्य की रचना रामसिह के आश्रित कवि रघुनाथ ने सन् १६७७ ई०

अमरसिंह रामावत की किन विशिष्ट सेवाओं के पुरस्कार-स्वरूप उसे यह जागीर मिली थी इसका कहीं भी कोई खुलासा नहीं मिलता है।

अमरसिंह के बाद उसका भाई अखेराज इस जागीर का मालिक बना। इसी अखेराज को सन् १६७६ ई० के लगभग बाँसवाड़ा राज्य की ओर से ताँबेसरा परगने का पट्टा मिला था। बाँसवाड़ा०, पृ० १०७-८।

रतलाम के प्रथम राज्य का अन्त हो जाने पर भी खेड़ा की यह जागीर किस प्रकार इन रामावत राठौड़ो के ही अधिकार में बनी रही यह प्रश्न विचारणीय अवश्य है। इसका सरल उत्तर यही जान पडता है कि औरंगजब के शासनकाल के पिछले दस-पन्द्रह वर्षो में मुग़ल साम्राज्य का शासन-संगठन बहुत ही ढीला हो गया था, और खेड़ा की यह जागीर मालवा के समतल मैदानोंसे दूर पहाड़ो में थी, एवं रतलाम राज्य जब्त हो जाने पर भी इस जागीर की ओर किसी का विशेष ध्यान न देना सर्वथा अनहोनी बात नही मानी जानी चाहिए।

रतलाम के वर्तमान राज्य की स्थापना होते ही अपने सैनिक बल के आधार पर छत्रसाल ने पुनः खेड़ा की इस जागीर पर अपना आधिपत्य स्वीकार करा लिया होगा। कुशलगढ़ आज भी रतलाम राज्य को प्रतिवर्ष कुछ टाँका देता है। रतलाम०, पृ० १५, १५४-५।

से पहिले की थी ।[३६] रघुनाथ की काव्य-रचना से प्रसन्न होकर राम-सिह ने उसे सुकवि 'रसाल' का खिताब दिया था ।

रामसिह का दैनिक जीवन सादा एव नियमित था । अरुणोदय से पहिले ही नित्य-कर्म से निपट कर वह ईश्वरोपासना मे रत हो जाता था, और तदनन्तर प्रतिदिन वह श्रीमद्भागवत् आदि धार्मिक ग्रन्थो को नियमपूर्वक सुनता था । तीसरे पहर चौगान, आदि

---

[३६] 'रामचरित्र' शीर्षक यह काव्य हिन्दी के सुपरिचित लेखक भास्कर रामचन्द्र भालेराव सूबेदार ने कहीं से ढूँढ़ निकाला था । वे इस काव्य ग्रन्थ का सम्पादन कर रहे है, और आशा की जाती है कि सुविधानुसार यह काव्य छप कर प्रकाशित हो जायगा ।

जहाँ तक ज्ञात हो सका है इस काव्य-ग्रन्थ की यही एक-मात्र प्रति अब तक देखने मे आई है । यह प्रति अक्तूबर, १७०७ ई० में रतलाम में लिखी गई थी। इस प्रति को देखने से यह स्पष्ट है कि नक़ल करने वाले को भी तब 'रामचरित्र' की सम्पूर्ण प्रति नही प्राप्त हो सकी थी, जिससे नक़ल-नवीस ने उन अप्राप्य पृष्ठो को पूरा करने के लिए वहाँ भूषण आदि कवियो के सुविख्यात छन्दो को यत्र-तत्र जोड दिया है ।

इस काव्य-ग्रन्थ में किसी भी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना का ब्यौरेवार प्रामाणिक विवरण नहीं मिलता है। बीजापुर पर जयसिंह की जिस चढ़ाई मे रामसिंह ने भी भाग लिया था, उसका बहुत ही सक्षिप्त, अधूरा एव अनुपयोगी विवरण इस ग्रन्थ में दिया है । रामसिंह के निजी जीवन, उसकी दैनिक चर्य्या एवं उसके साथी सुभटों आदि पर अवश्य इस काव्य से कुछ प्रकाश पडता हैं, और इस काव्य का जो भी महत्त्व माना जावे वह इसी विशेष जानकारी के कारण ही होगा ।

इस काव्य में रतलाम के तत्कालीन राजमहल, शहर एवं शिवबाग़ का भी विवरण दिया है । इसमें कितना सत्य एवं कितना कल्पना-पूर्ण था यह कहना कठिन है ।

तत्कालीन खेलो द्वारा अपना मनोरजन करता था। सन्ध्या समय विद्वानो के साथ विचार-विनिमय, कवियो के साथ काव्य-चर्चा एव सगीतज्ञ, आदि कलाकारो की निपुणता को परखने मे ही रामसिह का काल बीतता था।[३७] रामसिह के सुभट साथियो मे विशेषरूपेण उल्लेखनीय थे—किशन साचोरा का पुत्र नाहर खॉ, शार्दूल साचोरा के तीसरे पुत्र नारायणदास का बेटा भोज, भगवानदास साचोरा का ज्येष्ठ पुत्र मानसिह और वीरवर बारहठ जसराज का पुत्र गोकुलदास।[३८] इनके अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण सेनानायको मे राजसिह राठौड के पुत्र गोपीनाथ, अमरदास साचोरा के कनिष्ठ पुत्र माधोसिह और गिरधरदास राठौड के पुत्र, गागा, के नाम नही भुलाए जा सकते।[३९]

---

[३७] राम०, पृ० १२-१५, ४२-३, ४८-४९।

[३८] राम०, पृ० ४९-५०।

यह किशन सांचोरा, शार्दूल सांचोरा के छोटे भाई अचलदास का दूसरा पुत्र था। सांचोरों की वंशावलियो मे नाहर खॉ का नाम नाहरसिह लिखा है। नाहर खॉ और भोज सांचोरा के वंश अधिक नही चले।

वर्तमान द्वितीय रतलाम राज्य की स्थापना कर छत्रसाल राठौड़ ने मानसिह सांचोरा को पंचेड़ की जागीर दी थी, जिस पर आज भी उसके वंशजों का अधिकार है।

यह गोकुलदास, धरमत के युद्ध मे वीरतापूर्वक खेत रहने वाले बारहठ जसराज का पुत्र था। गोकुलदास का वंश अधिक नहीं चला। बारहठ जसराज के भाई गिरधरदास के वशज आज भी सीतामऊ राज्य के पोलपात है, और बापच्या ठिकाना उनकी जागीर में है।

[३९] राम०, पृ० ७६, ७९-८०।

राठौड़ राजसिह—यह कूपावत वीर जोधपुर के महाराजा गजसिह का प्रधान मन्त्री था। उसकी मृत्यु के बाद वह उसी के उत्तराधिकारी महाराजा

रामसिह कवियो का आश्रयदाता था। उसने केवल सुकवि रसाल को ही आश्रय दिया हो यह बात न थी, धरमत के युद्ध का विस्तृत व्यौरेवार विवरण लिख कर अमर हो जाने वाले कवि खडिया जगा को जागीर देकर उक्त 'वचनिका' लिखने को रामसिह ने ही प्रोत्साहित किया था।[40] कवि कुम्भकर्ण ने भी अपने काव्य-ग्रन्थ 'रतन-रासो' मे रामसिह का उल्लेख प्रशसापूर्ण शब्दो मे ही किया है।[41]

जसवन्तसिह का प्रधान मन्त्री बना और अपनी मृत्यु पर्यन्त उसी पद पर आरूढ रहा। ख्यात०, १, पृ० २५२-३; मारवाड़०, १, पृ० २१०, २११ फु० नो० १। गोपीनाथ राजसिह का ही छोटा पुत्र था। नवम्बर, १६८० ई० मे रामसिह की सिफारिश पर उसे शाही मनसब मिला। अय० अख०, और०, २४ (१), पृ० ११८।

सांचोरा माधोसिह—धरमत के युद्ध मे वीरगति प्राप्त करने वाले वीर असलदास का चौथा पुत्र था। रामसिह की मृत्यु के बाद वह क्रमशः उसके दोनो पुत्रो का विश्वस्त सेनानायक रहा। रतलाम जब्त हो जाने पर भी उसने केशवदास का साथ नहीं छोडा। सीतामऊ परगना मिलने पर केशवदास ने माधोसिह को दीपाखेडा ठिकाना जागीर में दिया, जो आज भी उसके वशजो के अधिकार मे है।

गागा राठौड़—वह किस गिरधरदास का पुत्र था, इस प्रश्न का निश्चित उत्तर नही दिया जा सकता है। एक गिरधरदास किशनदासोत राठौड़ के धरमत के युद्ध में मारे जाने का उल्लेख ख्यात० (१, पृ० २१५) में मिलता है। वचनिका० मे भी यत्र-तत्र गिरधरदास का विवरण पाया जाता है।

[40]कहा जाता है कि रामसिह ने कवि खडिया जगा को रतलाम परगने मे आलनियो और डेरी गॉव जागीर में दिए थे। वचनिका०, इण्ट्रोडक्शन, पृ० ४।

[41]रासो०, पृ० १२।

रामसिंह के शासनकाल में इस राज्य के मन्त्री कौन-कौन व्यक्ति रहे, राज्य की शासन-व्यवस्था किस प्रकार की थी, राज्य की हालत कैसी थी, इन सब बातों का कोई भी ब्यौरा नहीं मिलता है। उन दिनों रतलाम राज्य तथा वहाँ की प्रजा की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों पर यत्किंचित् भी प्रकाश डालना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि उसके बिना रामसिंह के शासन-काल का यह विवरण अधूरा एवं एकांगी ही रह जायगा। सम्भव है कि रतलाम राज्य में खोज की जाने पर आगे चल कर तद्विषयक कोई उपयोगी सामग्री वहाँ प्राप्त हो सके, किन्तु तब तक तो आवश्यक जानकारी के अभाव में इतिहास के इन पहलुओं पर कुछ भी लिखना सम्भव नहीं। इतना अनुमान लगाया जा सकता है कि रतलाम में रह कर रामसिंह ने इन वर्षों में राज्य की शासन-व्यवस्था को अधिक सुदृढ एवं सुसंगठित करने का भरसक प्रयत्न अवश्य ही किया होगा।

सन् १६७८ ई० में रामसिंह राठौड़ रतलाम में ही था। उसके साथ मालवा में रहने को निम्नकोटि के जो शाही मनसबदार नियुक्त थे, उनमें रघुनाथसिंह राठौड़ के लड़के, कान्हाजी (कान्हसिंह) और जीतसिंह, भी थे। कान्हाजी का मनसब डेढ सदी जात और जीतसिंह का एक सदी जात था। इसी साल बरसात के दिनों में ये दोनों भाई शाही आज्ञा लिए बिना ही मालवा से रवाना होकर परगना मसूदा चले गए। परगना मसूदा में इन दोनों भाइयों के जागीरें थी।[४२] इस बेजा हरकत के लिए उनके साथ क्या कार्यवाही

---

[४२] 'वाक़या-इ-सरकार रणथम्भोर' (हस्तलिखित), पृ० ४४। हैदराबाद (दक्षिण) की आसफिया लायब्रेरी में प्राप्य एक-मात्र प्रति से श्री रघुबीर लायब्रेरी, सीतामऊ, के लिए की गई नक़ल।

सम्भवतः यह उल्लेख अजमेर-मेरवाड़ा जिले के अन्तर्गत मसूदा ठिकाने

की गई इसका कोई विवरण प्राप्य नही है। कुछ ही समय बाद बरसात समाप्त होते-होते तो रामसिह के पास भी शाही बुलावा आ पहुँचा, और वह अपने सेनानायको एव सैनिको को लेकर रतलाम से रवाना होने का प्रबन्ध करने लगा।

३. रामसिंह का दक्षिण जाकर वहाँ से लौटना; मेवाड़ के साथ युद्ध; रामसिंह को जालोर की फौजदारी मिलना; शाहजादे अकबर का विद्रोह और राजसमन्द की सन्धि; १६७८-८१ ई०

इन पिछले दस बरसो मे सम्भवत रामसिह को रतलाम रहने का पर्याप्त अवसर मिला, जो सितम्बर, १६७८ ई० के बाद उसके भाग्य मे बदा न था। शाहजादा मुअज्जम, जिसे इधर शाह आलम का ख़िताब मिल चुका था, अब दक्षिण का सूबेदार नियुक्त हुआ। एक बड़ी शाही सेना लेकर वह सितम्बर १८, १६७८ ई० को दिल्ली से दक्षिण के लिए रवाना हुआ। शाह आलम के साथ दक्षिण जाने के लिए रामसिह राठौड, तथा करण राठौड के अतिरिक्त उसके अन्य सब छोटे भाइयो को भी हुक्म मिला। करण राठौड की मृत्यु जून, १६७६ ई० मे ही हो चुकी थी। रामसिह के बाकी रहे दसो भाई भी तब तक शाही मनसबदार नियुक्त हो गए थे। अतएव रामसिह के साथ ही वे सब भी अपने-अपने साथी-सैनिकों को लेकर शाह आलम के साथ दक्षिण जाने वाली शाही सेना मे सम्मिलित हो गए। अक्तूबर माह मे वे सब दक्षिणी सूबों की राजधानी औरगा-

---

के घराने वालो का ही है। क्या यह रघुनार्थासह राठौड़ उक्त ठिकाने के घराने के पूर्वजों में से कोई था?

बाद पहुँचे। परन्तु इस बार की यह दक्षिण यात्रा किसी भी प्रकार घटनापूर्ण नही हुई। शाह आलम एव उसके प्रधान सेनापति दिलेर खॉ मे निरन्तर खीचा-तानी होती रहती थी, जिससे रामसिह, उसके भाइयो आदि को भी सम्भवत औरगाबाद से आगे जाना न पडा।[४३]

किन्तु उधर जब रामसिह और उसके भाई औरगाबाद मे शान्तिपूर्वक दिन बिता रहे थे, उत्तरी भारत मे अनेकानेक महत्वपूर्ण घटनाएँ हो रही थी। दिसम्बर १०, १६७८ ई० को जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिह की जमरूद के किले मे मृत्यु हो गई। अपनी धर्मान्धतापूर्ण कट्टरनीति के एक-मात्र समर्थ विरोधी की मृत्यु का समाचार सुन कर औरगजेब को सन्तोष हुआ। मृत्यु के समय जसवन्तसिह के पीछे कोई भी पुत्र न था, एव औरगजेब ने जोधपुर राज्य को मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत सम्मिलित करने के इस सुअवसर को खोना न चाहा। जोधपुर पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए उसने खॉ जहॉ बहादुर को ससैन्य जोधपुर भेजा, और आवश्यकता पडने पर उसकी सहायता करने के लिए वह स्वय भी अजमेर जा पहुँचा।[४४]

अजमेर में ही औरगजेब ने सुना कि फरवरी १९, १६७९ ई० के दिन लाहौर मे महाराजा जसवन्तसिह की दो रानियो ने कुछ ही घटो के अवकाश से दो पुत्रो को जन्म दिया, जिनमे से बडा, अजीतसिह, आगे चल कर मारवाड का शासक बना। इसी समय से जोधपुर के राठौड़ सरदार और मन्त्री इस बात के लिए भरसक प्रयत्न करने लगे कि औरगजेब अजीतसिह को जसवन्तसिह का उत्तराधिकारी

---

[४३] मा० आ०, पृ० १६६; औरग०, ४, पृ० १६६।

[४४] मा० आ०, पृ० १७१-२; ख्यात०, २, पृ० १६; औरग०, ३, पृ० ३२४-३२७।

मान कर जोधपुर का राज्य उन्हे सौप दे। किन्तु औरगजेब ने इस ओर कुछ भी ध्यान नही दिया। अप्रेल २ को औरगजेब अजमेर से लौट कर दिल्ली पहुँचा और उसी दिन उसने इस्लाम के अतिरिक्त अन्य धर्मावलम्बियो पर जजिया कर लगा दिया।[८५]

मई २५ को जोधपुर से लौट कर खॉ जहॉ बहादुर भी दिल्ली पहुँचा। उसने भी औरगजेब की सेवा मे प्रार्थना की कि जोधपुर का राज्य अजीतसिह के नाम पर कर दिया जावे, परन्तु औरगजेब ने उसकी भी एक न सुनी। रामसिह राठौड का जोधपुर के राजघराने के साथ इतना निकट का सम्बन्ध था कि जोधपुर राज्य के मामले मे उसकी पूरी-पूरी दिलचस्पी होना स्वाभाविक ही था। वह स्वय इस समय दक्षिण मे था, परन्तु शाही दरबार मे रहने वाले अपने वकील को उसने इस सम्बन्ध मे उचित आदेश लिख भेजा। 'जोधपुर राज्य की ख्यात' मे लिखा है कि मई २५, १६७९ ई० को "राजा अनूपसिह (बीकानेर वाले) और राजा रामसिह (रतलाम वाले) के वकीलो ने (अजीतसिह को) जोधपुर दिए जाने के वास्ते निवेदन किया, तब औरगजेब ने कहा 'तुमने युद्ध मे काम किया है, इस मामले मे खर्चा न करना। जोधपुर के राजा के बेटे को जोधपुर देगे।" यो उचित अवसर पर जोधपुर के राजघराने के साथ सहानुभूति दिखा कर रामसिह ने अपने कर्तव्य का पालन किया। किन्तु इन सारे प्रयत्नो का कोई भी परिणाम न निकला। पहिले मई २६, १६७९ ई० को औरगजेब ने महाराजा जसवन्तसिह के बडे भाई राव अमर राठौड के पौत्र, नागौर के राजा इन्द्रसिह को जोधपुर का राज्य दिया, और बाद मे अक्तूबर मास मे मारवाड को खालसा

[८५]मा० आ०, पृ० १७२-३, १७४; औरंग०, ३, पृ० ३२७-८।

कर उसे मुग़ल साम्राज्य मे सम्मिलित कर लिया ।[४६]

किन्तु सौभाग्य ने अब तक राठौडो का साथ न छोडा था। जजिया कर को लेकर उदयपुर के महाराणा राजसिह और औरंगजेब मे मनमुटाव बढ रहा था। अतएव शिशु अजीतसिह को लेकर दुर्गादास राठौड और उसके साथी महाराणा के पास पहुँचे। महाराणा ने अजीतसिह को प्रश्रय देने और जोधपुर के राजघराने की पूरी-पूरी सहायता करने का वादा किया। राठौड और सिसोदियो ने सम्मिलित होकर मुगल साम्राज्य का सामना करने की सोची। मेवाड और मुगल साम्राज्य के बीच युद्ध अवश्यम्भावी हो गया। मेवाड में युद्ध की तैयारियाँ होने लगो, और औरंगजेब भी सितम्बर ३, १६७९ ई० को एक बडी सेना लेकर दिल्ली से चल पडा।[४७]

औरगजेब सितम्बर २५, १६७९ ई० को अजमेर पहुँचा, और वहाँ कोई पाँच सप्ताह तक ठहर कर वह मेवाड पर चढाई के लिए पूरे-पूरे आयोजन करने लगा। शाहजादा अकबर औरगजेब के साथ ही दिल्ली से आया था, शाहजादा आजम को बगाल से बुलवाया गया था, अतएव शाहजादा शाह आलम को तत्काल ही दक्षिण से बुलाना आवश्यक न जान पडा। किन्तु इस युद्ध मे भाग लेने के लिए औरगजेब ने शाह आलम के साथ गए हुए विश्वस्त योद्धाओ में से रामसिह राठौड को अजमेर बुलवा भेजा। उधर शाह आलम

---

[४६] मा० आ०, पृ० १७५, १७७, १८२; ख्यात०, २, पृ० २३-२४; औरग०, ३, पृ० ३२८, ३३४-६।

[४७] ख्यात०, २, पृ० ५६-५७; वीर०, २, पृ० ४४९-४५३; मा० आ०, पृ० १७९-१८०; टाड०, १, पृ० ४४१-४४४; २, पृ० ९९६; उदय०, २, पृ० ५५४-५; औरंग०, ३, पृ० ३३४, ३३८-३३९, ३३५।

भी रामसिह को जाने देना नही चाहता था, एव उसने वापिस लिख भेजा कि रामसिह जैसे सेनानायको की उसे भी आवश्यकता थी। दिसम्बर २१, १६७९ ई० को औरगजेब ने रामसिह राठौड के दक्षिण मे ही रहने की आज्ञा देदी।[४८]

किन्तु शाह आलम भी अधिक काल तक दक्षिण मे न रह पाया। मार्च १, १६८० ई० के दिन औरगजेब ने शाह आलम के बजाय खॉ जहॉ बहादुर को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त कर उसे औरगाबाद के लिए रवाना किया। यह स्पष्ट था कि शाह आलम को दक्षिण से रवाना होने मे कुछ समय लगेगा, एव अप्रेल ८, १६८० ई० को औरगजेब ने पुन हुक्म दिया कि रामसिह राठौड और उसके दसो भाई शीघ्र ही आकर शाही दरबार मे उपस्थित होवे।[४९] इस आज्ञा के अनुसार मई, १६८० ई० के प्रारम्भ मे रामसिह और उसके भाई दक्षिण से चल पड़े। उन्होने कोई डेढ साल से अधिक समय दक्षिण मे शाहजादे शाह आलम के साथ बिताया था; इस अरसे में वे औरगाबाद मे ही रहे, अथवा दक्षिण मे ही और कही उन्हे जाना पडा था या नही, एव वहॉ उन्होने क्या किया इसका कोई भी विवरण प्राप्य नही है।

इधर मुगल-मेवाड युद्ध जोरो से चल रहा था। नवम्बर ३०, १६७९ ई० को अजमेर से रवाना होकर जनवरी ४, १६८० ई० के दिन औरगजेब ने देबारी की घाटी मे जा डेरा डाला। महाराणा राजसिह और उसके सारे साथी उदयपुर खाली कर पहाड़ों मे जा

---

[४८] मा० आ०, पृ० १८०, १८१, १८२, १८३; औरंग०, ३, पृ० ३३५, ३३६; जय० अख़०, औरं०, २३ (१), पृ० २३२।

[४९] मा० आ०, पृ० १८६, १८३; औरंग०, ४, पृ० १६७; जय० अख़०, औरं०, २३ (३), पृ० १६२।

पहुँचे और वही से वे शाही सेना का सामना करने लगे। हसन अली ख़ाँ ने दूर तक महाराणा का पीछा किया। उदयपुर और चित्तौड पर शाही सेना का अधिकार हो गया, एव यह सोच कर कि महाराणा की शक्ति नष्ट की जा चुकी है, औरगजेब मार्च ४, १६८० ई० के दिन उदयपुर से अजमेर को लौट पडा। रवाना होने से दो दिन पहले ही उसने शाहजादे अकबर को ससैन्य चित्तौड एवं आसपास के प्रदेश की सुरक्षा और प्रबन्ध के लिए नियुक्त किया, तथा हसन अली खाँ आदि सेनानायको को हुक्म हुआ कि वे शाहजादे अकबर की अधीनता मे उसकी आज्ञानुसार काम करते रहे। औरगजेब मार्च २२ को अजमेर पहुँच गया और आगामी डेढ वर्ष तक वहाँ ही बना रहा।[५०]

औरगजेब के मेवाड छोडते ही महाराणा और उसके राजपूत सेनानायको का साहस बढने लगा। महाराणा भी पहाडो से उतर आया, और उसके सैनिक पुन आक्रमण करने लगे। मई, १६८० के दूसरे सप्ताह के लगभग तो वे चित्तौड तक जा पहुँचे और उन्होने शाहजादा अकबर की सेना पर रात के समय छापा मारा। तब तो राजपूतों को दबाने के लिए हसन अली ख़ाँ को पहाडो मे भेजने का आयोजन होने लगा। पुन. चित्तौड मे स्थित शाही सेना की शक्ति बढाने के लिए भी सैनिक एकत्र किए जाने लगे। अप्रेल ८, १६८० ई० की शाही आज्ञानुसार मई के प्रारम्भ मे रामसिह राठौड़ अजमेर के लिए दक्षिण से चल ही पड़ा था, एव मई १७, १६८० को औरगज़ेब ने आज्ञा दी कि दक्षिण से आता हुआ रामसिह राठौड़

---

[५०] मा० आ०, पृ० १८५-१९१; वीर०, २, पृ० ४६४-४६७; उदय०, २, पृ० ५५९-५६१; औरंग०, ४, पृ० ३३९-३४३।

अजमेर न जाकर राह मे से ही सीधा हसन अली की सेना मे सम्मिलित हो जावे ।[५१] किन्तु यह हुक्म रामसिह को समय पर नही मिला और वह दूसरी राह से अजमेर के पास तक जा पहुँचा । वहाँ जब उसे उपयुक्त हुक्म का पता लगा तब उसने यह सारी हकीकत औरगजेब की सेवा मे निवेदन करवा कर प्रार्थना की कि वह अजमेर के पास तक पहुँच ही गया, एव शाही दरबार मे उपस्थित होने की आज्ञा दी जावे, तदुपरान्त वह आज्ञानुसार अपने स्थान पर चला जावेगा । रामसिह की इस प्रार्थना को औरगजेब ने जून १०, १६८० ई० को स्वीकृत किया । रामसिह अब सीधा अजमेर गया और जून १४, १६८० ई० को उसे आज्ञा हुई कि वह सैय्यद हामिद खाँ की सेना मे सम्मिलित होवे । हामिद खाँ को इसी समय हुक्म मिला था कि वह बदनोर से पुर चला जावे और दिलावर खाँ के पुर पहुँचने तक पुर परगने की देखभाल करता रहे ।[५२] अतएव रामसिह अजमेर से पुर के लिए रवाना हो गया ।

चित्तौड के आसपास राजपूतो का उपद्रव निरन्तर बढता ही जा रहा था और उसे दबाने मे शाहजादे अकबर को विशेष सफलता नही मिल रही थी, एव औरगजेब ने उसे सोजत और जेतारण की ओर भेज दिया तथा शाहजादे आजम को उसके स्थान पर चित्तौड़ मे नियुक्त किया । जून २६, १६८० ई० को आजम चित्तौड पहुँचा । वहाँ से देबारी घाटी मे होते हुए उसे उदयपुर की ओर बढना था ।

---

[५१] औरग०, ३, पृ० ३४४-५ ।

[५२] जय० अख०, औरं०, २३ (४), पृ० १३०, १५८ ।

पुर—मेवाड़ राज्य में स्थित यह कस्बा भीलवाड़ा शहर से ७ मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित है; मुग़ल काल में यह कस्बा उसी नाम के परगने का प्रधान स्थान था । आईन०, २, पृ० १०२, २७४ ।

सम्भवत इसी उद्देश्य से चित्तौड मे विशेष रूप से सैनिक प्रबन्ध करना आवश्यक जान पडा और जुलाई १६८० ई० के लगभग रामसिह राठौड को चित्तौड मे नियुक्त किया गया था। सितम्बर ९, १६८० ई० को औरगजेब ने रामसिह को चित्तौड़ से अजमेर वापस बुलवा लिया।[५३]

चित्तौड से लौटकर रामसिह सितम्बर के अन्तिम सप्ताह मे अजमेर पहुँचा। औरगजेब ने सितम्बर ३० को उसे जालोर की फौजदारी पर नियुक्त किया और अपनी इस नई फौजदारी का काम सम्हालने के लिए उसे रवाना किया। इस समय रामसिह का मनसब डेढ हजारी जात–डेढ हजार सवारो का था, औरगजेब ने इन डेढ हजार सवारो मे से सात सौ सवार दो-अस्पा कर उसके मनसब मे वृद्धि की। जालोर के लिए रवाना होते समय रामसिह को उसके मनसब के उपयुक्त खिलअत और सुनहली झालर का साज दिया गया।[५४] इन दिनो औरगजेब रामसिह से बहुत प्रसन्न था, एव उसे विश्वास था कि जोधपुर के राठौडो के विरुद्ध जो युद्ध चल रहा था, उसमे रामसिंह से पर्याप्त सहायता मिल सकती थी। इसी कारण रामसिह की सिफारिश पर औरगजेब ने नवम्बर ८, १६८० ई० के दिन जोधपुर के स्वर्गीय महाराजा जसवन्तसिह के स्वर्गीय प्रधान मन्त्री राजसिह के पुत्र गोपीनाथ को डेढ सदी जात–तीस सवारो का नया मनसब देकर खॉ जहॉ की अधीनता में डाक चौकी पर नियुक्त किया।[५५]

---

[५३]मा० आ०, पृ० १९३-१९४; औरंग०, ३, पृ० ३४५-६; जय० अख०, और०, ७३ (५), पृ० २३५।

[५४]जय० अख़०, और०, २४ (१), पृ० ३२।

[५५]जय० अख०, और०, २४ (१), पृ० ११८; ख्यात०, १, पृ० २५३।

इधर शाहज़ादा अकबर सोजत से शाही सेना का संचालन कर रहा था। राठौड़ राजपूत मारवाड़ के समस्त दक्षिण प्रदेश में उपद्रव मचा रहे थे, और इन्हीं उपद्रवों को दबाने के उद्देश्य से उक्त प्रदेश की रक्षा और शासन का विशेष प्रबन्ध किया जा रहा था। उसी सिलसिले में रामसिंह की नियुक्ति जालोर में की गई थी। रामसिंह अजमेर से सीधा जालोर पहुँचा और वहाँ उसने अपनी इस नई फ़ौजदारी का काम सम्हाला। किन्तु इस बार एक-डेढ़ मास से अधिक जालोर ठहरने का उसे अवसर न मिला। दिसम्बर १६, १६८० ई० को औरंगज़ेब ने हुक्म दिया कि रामसिंह राठौड़ सत्रह सौ राठौड़ों को लेकर शाहज़ादा कामबख़्श के बख़्शी मुहमद नईम की सेना में सम्मिलित हो जावे।[५६]

सितम्बर (१६८० ई०) माह के अन्त के बाद कोई डेढ़ मास तक अकबर ने युद्ध में बड़ी ढिलाई दिखाई। अकबर नाडोल में था और तहाव्वर ख़ाँ देसूरी में डेरा डाले हुए पड़ा रहा। परन्तु औरंगज़ेब इस ढिलाई से असन्तुष्ट हो उठा और जल्द ही मेवाड़ पर चढ़ाई करने के लिए उसने हुक्म दिया, एवं अकबर स्वयं देसुरी आया और उसने तहाव्वर को जीलवाड़े की घाटी की तरफ़ भेजा। अकबर की सहायता के लिए औरंगज़ेब ने रुहेल्ला ख़ाँ के साथ बहुत सा धन और सेना भेजी। नवम्बर ३० को शाहज़ादे कामबख़्श के बख़्शी मुहम्मद नईम को भी औरंगज़ेब ने अकबर की सेना में सम्मिलित

शाही मनसबदार बनने से पहिले गोपीनाथ बहुत समय तक रामसिंह के साथ भी रहा था। रसाल कवि ने रामसिंह के अन्य सुभट सेनानायकों का वर्णन करते समय गोपीनाथ का भी उल्लेख किया है। राम०, पृ० ७६।

[५६]औरंग०, ३, पृ० ३४६-८; जय० अख़०, औरं०, २४ (२), पृ० १७०; २४ (१), पृ० १५६।

होने को भेजा और दिसम्बर १६ को रामसिह को हुक्म भेजा गया कि वह मुहम्मद नईम के साथ जा मिले ।[५७] इसके एक सप्ताह बाद ही औरगजेब को ज्ञात हुआ कि विद्रोही राठौडो का दल सोजत और जैतारण परगनो मे उपद्रव मचा रहा था तथा उनका सामना करने के लिए कोई प्रबन्ध नही किया जा रहा था । औरगजेब के मतानुसार इस अवसर पर जालोर मे नियुक्त रामसिह राठौड को भी उचित कार्यवाही करनी थी, अतएव उसकी इस ढिलाई के लिए औरगजेब ने रामसिह को दण्ड दिया और उसके मनसब मे पॉच सदी जात–पॉच सौ सवार कम कर दिए गए ।[५८]

इसी बीच अक्तूबर १६, १६८० ई० को महाराणा राजसिह की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र जयसिह मेवाड की गद्दी पर बैठा । नवम्बर २२, १६८० ई० को तहाव्वर खॉ जीलवाडे जा पहुँचा था, परन्तु उसके बाद पुन अकबर ने युद्ध मे ढिलाई करना आरम्भ कर दी । अपने पत्रो मे अकबर औरगजेब के सामने अपने सेनानायको की शिकायत करता था, किन्तु इन्ही हफ्तो मे वह राठौडो से मिल कर औरगजेब को गद्दी से उतार कर उसके स्थान पर स्वय सम्राट् बनने का आयोजन कर रहा था । महाराणा और राठौडों ने उसकी पूरी-पूरी सहायता करने का वचन दिया और उसके बदले मे महाराणा को कुछ परगने तथा अजीतसिह को जोधपुर का राज्य देने का वादा किया । यह भी निश्चित हुआ कि जनवरी १, १६८१ ई० को अकबर

---

[५७] औरंग०, ३, पृ० ३५०-१; उदय०, २, पृ० ५६५; मा० आ०, पृ० १९५; जय० अख०, औरं०, २४ (१), पृ० १५६ ।

[५८] जय० अख०, और०, २४ (१), पृ० १७७ ।

स्वय को सम्राट् घोषित करे और दूसरे दिन ही वह ससैन्य औरगजेब के विरुद्ध चल पडे ।[५९]

दिसम्बर १६, १६८० ई० की आज्ञानुसार जालोर से चल कर इसी माह के अन्तिम सप्ताह मे रामसिह राठौड भी अकबर की सेना मे सम्मिलित हो गया था । जब रामसिह अकबर के पास पहुँचा, तब भी विद्रोह सम्बन्धी अन्तिम समझौते आदि की बातचीत चल रही थी । 'जोधपुर की ख्यात' मे लिखा है कि—"तहाव्वर खाँ और राठौड रामसिह के कहने एव वचन देने पर (राठौड सेनानायक) देसूरी जाकर शाहजादा (अकबर) से मिले । तहाव्वर ख़ाँ का पुत्र मिर्जा मानी और राठौड रामसिह चाचोड़ी गाँव आए तथा वहाँ से राठौडो को साथ लिवा ले गए ।"[६०] ख्यात० का यह कथन कहाँ तक सत्य है यह कहना कठिन है, परन्तु यदि उसे ठीक माना जावे तो यह स्वीकार करना पडेगा कि विद्रोह के इस षड्यन्त्र मे रामसिह भी कुछ हद तक सम्मिलित हो गया था । किन्तु रामसिह की आगे की कार्यवाही से यही ज्ञात होता है कि षड्यन्त्र की इस नीति से वह कदापि सहमत न था । ख्यात० मे उसकी जिस कार्यवाही का उल्लेख मिलता है वह अकबर की आज्ञानुसार राठौड़ सेनानायको को चाचोडी गाँव से शाहजादे के पास ले जाने तक ही सीमित रही । ये सेनानायक क्यो अकबर के पास लाए गए और उनके साथ अकबर की क्या बातचीत हो रही थी, उसके साथ रामसिह का कोई भी सम्बन्ध नही जान पडता है । अनुमान यही होता है कि वह इस मामले मे पडा ही न था ।

---

[५९]उदय०, २, पृ० ५६५, ५८१-५८३, औरं०, ३, पृ० ३५१, ३५४-३५६ ।

[६०]ख्यात०, २, पृ० ६१-६२; जोधपुर०, २, पृ० ४६४ फु० नो० ।

निश्चित आयोजना के अनुसार जनवरी १, १६८१ ई० को अकबर ने स्वय को सम्राट् घोषित किया। जो शाही सेनानायक इस समय अकबर के साथ थे, उनमे से कुछ तो सहर्ष इस विद्रोह मे शामिल हो गए। बाकी सब इस कार्यवाही के पक्ष मे न थे, परन्तु वे न तो अकबर का विरोध ही कर सकते थे और न वहाँ से तत्काल भाग ही सकते थे, अतएव उन्हे विवश होकर अकबर के पक्ष मे होने का दिखावा करना पड़ा। अनुमान यही होता है कि इस समय प्रारम्भ मे तो, अनिच्छापूर्वक ही क्यो न हो, रामसिह को भी अकबर का साथ देने का ढोग रचना पडा था। जनवरी २ को रवाना होकर अकबर धीरे-धीरे ससैन्य अजमेर की ओर चला और अन्य सेनानायको के समान रामसिह राठौड भी तब अकबर के साथ था। उधर अजमेर मे औरगजेब अकबर का सामना करने की तैयारी कर रहा था। उसके स्वामिभक्त सेनानायक तेजी के साथ अजमेर जा रहे थे। और इसी तरह इस चढाई के समय अकबर की सेना में से एक दिन खिसक कर रामसिह राठौड भी जनवरी १२, १६८१ ई० को अजमेर मे ही औरगजेब के पास जा पहुँचा। अजमेर पहुँचते ही वह तत्काल औरगजेब की सेवा मे उपस्थित हुआ तथा नौ मोहरे और एक सौ रुपए भेट किए। औरगजेब रामसिह राठौड की स्वामि-भक्ति का यह परिचय पाकर प्रसन्न हुआ, रामसिह को उसके मनसब के अनुरूप खिलअत दिया तथा दिसम्बर २३, १६८० ई० को उसके मनसब मे जो कमी कर दी गई थी उसे रद कर उसका पहिले का-सा ही मनसब पुनः कर दिया गया।[६१]

---

[६१] औरंग०, ३, पृ० ३५६-३५८; मा० आ०, पृ० १९७-२००; जय० अख०, औरं०, २४ (१), पृ० २३६।

अकबर का सामना करने के लिए औरगजेब जनवरी १४ को अजमेर से ससैन्य दौराई के युद्धक्षेत्र की ओर बढा। रामसिह राठौड भी औरगजेब के साथ ही गया। दूसरे दिन दोनो सेनाओ के बीच केवल तीन मील की ही दूरी रह गई। उसी रात को औरगजेब ने अपनी धूर्तता से आगामी दिन होने वाले भयकर युद्ध की सम्भावना का भी अन्त कर दिया। तहाव्वर खॉ औरंगजेब के डेरे मे मारा गया, और अकबर के नाम लिखे हुए औरगजेब के पत्र को पढ कर राजपूत अकबर के प्रति सशक हो उठे तथा उसका साथ छोड कर चल दिए। जनवरी १६ को प्रात काल मे जब यह वस्तु-स्थिति अकबर को ज्ञात हुई तो भाग कर राजपूतो की ही शरण लेने के अतिरिक्त दूसरा कोई भी चारा उसके लिए नही रह गया था। विद्रोही दल एव विरोधियो को इस प्रकार विलीन होते देख कर शाही सेना मे बहुत ही खुशी हुई और अकबर का साथ छोड कर चले आने वाले सेनानायको को पुन पुरस्कार दिए गए, रामसिह राठौड को भी सोने के जर का दुशाला मिला।[६२]

भागते हुए अकबर और लौटते हुए राठौड राजपूतो का पीछा करने के लिए शाहजादे शाह आलम के नेतृत्व मे एक बड़ी सेना भेजी गई, जिसमे रामसिंह राठौड भी था। जनवरी २२ के लगभग जब अकबर और उसके साथी साचोर जा पहुँचे तब उनका पीछा करने वाली शाह आलम की सेना जालोर मे थी। गुजरात की राह को निरापद न जानकर अकबर मेवाड की ओर लौटा और वहाँ से बागड और दक्षिणी मालवा मे होता हुआ वह महाराष्ट्र को गया,

---

[६२] मा० आ०, पृ० २००-२०३; औरंग०, ३, पृ० ३६०-३६६; जय० अख०, औरं०, २४ (१), पृ० २४६।

जहाँ उसे शभाजी ने शरण दी।[६३]

शाहजादा शाह आलम अकबर को पकडने मे विफल ही रहा, और वह जालोर की ओर से लौट कर पीछा सोजत चला आया। रामसिह राठौड भी उसी के साथ था। रामसिंह को अपनी नई फौजदारी मे रह कर ठीक प्रबन्ध करने का अवसर ही नही मिल रहा था। वहाँ निरन्तर उपद्रव और लूट-मार हो रही थी। जोधपुर राज्य की ख्यात मे लिखा है कि अकबर का पीछा करते समय "जब शाह आलम की सेना जालोर के पास से निकल रही थी, तब विद्रोही राठौडो ने उसके पिछले हिस्से पर हमला कर उस सेना का सामान लूट लिया और बारबरदारी के कई हाथी छीन ले गए। इस दुर्घटना से क्रुद्ध होकर औरगजेब ने....रामसिंह को जालोर (की फौजदारी) से हटा दिया।" सीतामऊ राजघराने सम्बन्धी कुछ ख्यातो मे भी इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है, किन्तु फारसी इतिहास-ग्रन्थो मे इस घटना का कही भी स्पष्ट विवरण नही पाया जाता है। कारण कुछ भी रहा हो, मई २८, १६८१ ई० को औरगजेब ने हुक्म दिया कि रामसिह राठौड को बदल कर उसके स्थान पर बहलोल शीरानी को जालोर का फौजदार नियुक्त किया जावे।[६४]

मई ४, १६८१ ई० को औरगजेब की सेवा मे रामसिह राठौड़

---

[६३] मा० आ०, पृ० २०३, २०४; वीर०, २, पृ० ६४६; औरग०, ३, पृ० ३६६-७; उदय०, २, पृ० ५८५।

[६४] जोधपुर०, २, पृ० ४६७-६६; ख्यात०, २, पृ० ६३। ख्यात० का सा उल्लेख राणी० में भी मिलता है।

जय० अख०, औरं०, २४ (२), पृ० २३८।

की एक अर्ज़ी पेश हुई थी, जिसमे जालोर सम्बन्धी अपनी कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए उसने लिखा था,—"मै शाहजादा शाह आलम के साथ नियुक्त हूँ। अपनी फौजदारी मे केवल एक ही माह रह पाया, एव ऐसी हालत मे वहाँ की परिस्थिति और शासन-व्यवस्था की पूरी तरह जानकारी प्राप्त कर लेना मेरे लिए कठिन था। सारा परगना उजड गया है। जो गाँव और कस्बे आबाद थे, वे भी उपद्रवियो की लूट-मार तथा शाही सेनाओ के निरन्तर आते-जाते रहने से पूरी तरह बरबाद हो गए है। सारी खेती नष्ट हो गई है। परगने मे आवश्यक प्रबन्ध के अतिरिक्त और भी अधिक सैनिक वहाँ रखे है, किन्तु सारी व्यवस्था और हालत ऐसी बिगडी हुई है कि वहाँ मेरा जाना आवश्यक हो गया। यदि दो माह के लिए छुट्टी मिल जावे तो जालोर जाकर वहाँ ठीक प्रबन्ध कर दूँ, जिससे कि परगने की हालत सुधर जावे।" औरगजेब ने रामसिह की प्रार्थना को उचित समझा एव शाह आलम को लिखवा भेजा कि जालोर जाकर वहाँ का प्रबन्ध करने के लिए मई २३, १६८१ ई० से रामसिह को छुट्टी दी जावे।

पुन जालोर के पिछले फौजदार बिहारी फतेह खाँ की तरफ साम्राज्य का कोई पाँच हजार रुपया लेना बाकी था। फौजदारी सम्हलवाते समय उसने यह हिसाब साफ नही किया था। इधर दिलेर खाँ के रामसिह मे कोई आठ हजार रुपए लेना निकलते थे। वे पाँच हजार वसूल होने की कोई सम्भावना नही देख पडती थी, और इधर दिलेर खाँ अपने रुपए वसूल करने के लिए सैनिक भेज-भेज कर ताकीद कर रहा था, जिससे रामसिह की कठिनाइयाँ और भी बढती जाती थी। रामसिह ने अपनी ये कठिनाइयाँ भी औरगजेब के सम्मुख रख दी। औरगजेब ने वजीर असद खाँ को हुक्म दिया

कि वह फतेह खाॅ से रामसिह को वे पाॅच हजार रुपए दिलवा देने का प्रबन्ध कर दे।[६५]

औरगजेब ने रामसिह की छुट्टी मजूर कर ली थी, और सम्भवत उसे मई २३, १६८१ ई० को शाह आलम ने भी छुट्टी दे दी होगी, परन्तु रामसिह छुट्टी पर नही गया। फरवरी, १६८१ ई० से ही महाराणा और मुगल साम्राज्य के बीच सन्धि की बाते शाहजादा आजम के द्वारा चल रही थी। इस समय आजम चित्तौड मे ठहरा हुआ था। अन्त मे यह तय हुआ कि राजसमद तालाब के उत्तरी किनारे पर आजम और महाराणा जयसिह की भेट हो। आजम पहिले से उस नियुक्त स्थान पर पहुॅच गया और दिलेर खाॅ के द्वारा जयसिह को बुलवा भेजा। जून १४, १६८१ ई० के दिन भेट होने का निश्चय हुआ। इस समय जब आजम राजसमंद की ओर गया, तब रामसिह भी उसके साथ था। भेट के समय महाराणा की पेशवाई कर उसे आजम के पास ले आने को दिलेर ख़ाँ, और हसन अली ख़ाँ के साथ ही रामसिंह को भी भेजा गया था। यो जून १४ को राजसमद की सन्धि हुई और मेवाड के साथ मुगलों के इस युद्ध का अन्त हुआ।[६६]

इस भेंट के बाद आजम चित्तौड की ओर लौट गया, और बहुत करके राजसमद से ही रामसिंह जालोर लौट गया होगा। इस समय तक उसे ज्ञात हो चुका था कि जालोर की फौजदारी पर उसके बजाय बहलोल शीरानी की नियुक्ति हो चुकी थी। एव उसे जालोर की फौजदारी सम्बन्धी अपना सारा मामला और हिसाब साफ करना

---

[६५] जय० अख़०, औरं०, २४ (२), पृ० १७०।

[६६] मा० आ०, पृ० २०७-२०९; वीर०, २, पृ० ६३१, ६५५-६; उदय०, २, पृ० ५८७-८; औरग०, ३, पृ० ३६९-३७१।

था। इसी समय जालोर जाते हुए या जालोर पहुँचने पर रामसिह ने स्वर्गीय महाराजा जसवन्तसिह के विश्वस्त तथा स्वामिभक्त सेनानायक नरसिहदास राठौड को[६७] पकड लिया। नरसिहदास दुर्गादास आदि वीरो का साथी था, एव इस समय मुगल साम्राज्य मे यत्र-तत्र लूट-मार करना या उपद्रव मचाना ही उसका प्रधान कार्य बन गया था। शाही आज्ञानुसार उसे कैद करना रामसिह के लिए आवश्यक हो गया था। इसकी सूचना औरगजेब के पास जून २५, १६८१ ई० को अजमेर पहुँची। अब तक बहलोल शीरानी जालोर नही पहुँचा था, और न कुछ समय तक उसके वहाँ पहुँचने की आशा ही थी, एव रामसिह को हुक्म दिया गया कि वह स्वय तो नरसिहदास को लेकर अजमेर चला आवे और अपने पीछे आवश्यक सैनिक जालोर मे छोड दे, जो बहलोल के वहाँ पहुँचने तक जालोर मे उचित प्रवन्ध रखे।[६८]

रामसिह को जालोर मे रहते कोई एक माह के लगभग हो गया था, जब औरगजेब की उपर्युक्त आज्ञा के अनुसार उसे जालोर से अजमेर के लिए रवाना होना पडा। जुलाई २० के लगभग वह अजमेर पहुँचा, और जुलाई २४ को औरगजेब की सेवा मे उपस्थित होकर उसने नौ मोहरे भेट की। जुलाई ३० को जब रामसिह शाही दरबार मे पुन. उपस्थित हुआ, तब औरगजेब ने उससे जालोर के हाल

---

[६७] नरसिंहदास—यह दयालदास उदावत राठौड़ का पुत्र था। उसका विशेष विवरण नहीं मिलता है; यत्र-तत्र उल्लेखो के लिए देखो—ख्यात०, २, पृ० २, ७, ५३, ५६।

नरसिंहदास शाही दरबार में पहुँचा या नहीं और आगे चलकर उसका क्या हुआ, इसका कोई विवरण नहीं मिलता है।

[६८] जय० अख़०, औरं०, २४ (२), पृ० २३८, ३२८।

पूछे और वहाँ बरसात कब और कैसी हुई है यह जानना चाहा। रामसिह को जालोर छोडे कुछ समय हो गया था एव उसने जालोर सम्बन्धी बातो की अनभिज्ञता ही प्रगट की और निवेदन किया कि जिस समय वह जालोर मे था तब श्रावण माह (जून २०–जुलाई २०, १६८१ ई०) मे एक बार बरसात हुई थी।[६९]

रामसिह की जालोर की फौजदारी इस प्रकार समाप्त हुई। औरगजेब ने मेवाड के साथ सन्धि कर ली थी और मारवाड पर शाही आधिपत्य हो चुका था। विद्रोही राठौड अब भी यत्र-तत्र लूट-मार कर रहे थे, परन्तु उनकी शक्ति पूर्णतया घट चुकी थी। इसके विपरीत विद्रोही शाहजादे अकबर के दक्षिण जाकर मरहठो से मिल जाने से औरगजेब के सम्मुख एक नई ही समस्या उठ खडी हुई थी। यो औरगजेब के साथ ही रामसिह भी पुन दक्षिणी भारत की ओर आकृष्ट हुआ।

४. दक्षिण की अन्तिम यात्रा; रामसेज के किले का घेरा; कल्याण-भिवण्डी का युद्ध और रामसिंह की मृत्यु; उसकी रानियों का रतलाम में सती होना; १६८१–१६८३ ई०

जुलाई, १६८१ ई० मे रामसिह का मनसब डेढ हजारी–चौदह सौ सवार का था, जिनमे से सात सौ सवार दो-अस्पा थे। जुलाई ३१, १६८१ ई० को औरगजेब ने रामसिह के इस मनसब मे पाँच सदी जात बढाने तथा तीन सौ सवार और दो-अस्पा किए जाने का हुक्म दिया, जिससे रामसिह का मनसब अब बढ कर दो हजार

---

[६९] अख़० औरं०, २४, पृ० २४, ४६, ६२-६३।

जात–चौदह सौ सवारो का होगया जिनमे से एक हजार सवार दो-अस्पा थे ।[७०] रामसिह के मनसब मे वृद्धि तो कर दी गई, परन्तु इस बढे हुए मनसब की जागीर उसे कुछ समय तक नही मिली, एव अगस्त २८, १६८१ ई० को औरगजेब ने हुक्म दिया कि जहाँ तक रामसिह को यह नई जागीर न मिल जावे, वह दो-अस्पा घोडो की खुराक का खर्चा न करे। अक्तूबर २०, १६८१ ई० को जाकर कही रामसिह को दी जाने के लिए आवश्यक जागीर की तजवीज होकर उसे प्रदान करने की आज्ञा हुई । मालवा मे रतलाम परगने से लगे हुए बदनावर और रामगढ के परगने उसे दिए गए। इन परगनो की आमदनी तब क्रमश ४० और १४ लाख दामो की थी। ये दोनो परगने दिलेर खॉ की जागीर मे थे, एव वे दिलेर खॉ से छुडा कर रामसिह को दिए गए, और इनके बदले मे दिलेर खॉ को इलाहाबाद सूबे मे जागीर देने का हुक्म हुआ ।[७१] बदनावर और रामगढ के परगने रामसिह को उसके बढे हुए मनसब के अनुरूप जागीर पूरी करने के लिए यो व्यक्तिगतरूपेण प्राप्त हुए। ये परगने कब तक रामसिह के अधिकार मे रहे यह कहना कठिन है, क्योकि उसके मनसब मे इस समय निरन्तर परिवर्तन होते रहे और इस घटा-बढी मे कौन से परगने कब उसके अधिकार से निकल गए इसका विवरण प्राप्त नही है । रामसिह की मृत्यु के बाद तो उनका पुन शाही अधिकार में चला जाना निश्चित ही था।

मेवाड के साथ सन्धि हो गई थी। मारवाड और आस-पास के प्रदेशो के शासन की भी ठीक व्यवस्था करके औरगजेब ने दक्षिण की ओर ध्यान दिया। अप्रेल ५, १६८० ई० को शिवाजी की मृत्यु

[७०] अख़० औरं०, २४, पृ० ६३, ७०।

[७१] अख़० औरं०, २४-२५, पृ० १४२, २६६।

होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र शभाजी उसका उत्तराधिकारी बन कर मरहठो का राजा बना। मुगल साम्राज्य के विरोध की नीति को उसने जारी रखा था। विद्रोही शाहजादे अकबर के दक्षिण जा पहुँचने से अब वहाँ की राजनैतिक परिस्थिति और भी उलझ गई। पुन बीजापुर और गोलकुण्डा के स्वाधीन राज्यो को जीत कर उन्हे मुगल साम्राज्य मे मिलाने को औरगजेब पहिले से ही उत्सुक था। अतएव औरगजेब ने ससैन्य दक्षिण जाने का निश्चय किया। जुलाई ३१, १६८१ ई० को आजम एक बड़ी सेना लेकर आगे रवाना हुआ और सितम्बर ८, १६८१ ई० को औरगजेब स्वय अजमेर से दक्षिण के लिए चल पडा। औरगजेब के साथ रामसिह और उसके साथी भी दक्षिण को चले। दक्षिण के लिए रवाना होने से पहिले औरगजेब ने अपने विभिन्न सेनानायको के सैनिको आदि का पूरा प्रबन्ध देख लिया था, और उसी सिलसिले मे अगस्त २८, १६८१ ई० को उसने आज्ञा दी थी कि बल्लू चौहान का पुत्र नथमल और मदनसिह रामसिह के सैनिक दल के साथ रहे। नथमल का मनसब तीन सदी जात—चालीस सवार का था और मदनसिह का मनसब डेढ सदी जात—बीस सवार का था।[७२] औरगजेब ससैन्य बुरहानपुर की ओर

---

[७२] औरग०, ३, पृ० ३७१; ४, पृ० २७२-७, २९१; मा० आ०, पृ० २११, २१२; अख़० और०, २४, पृ० १४२।

नथमल का पिता बल्लू चौहान, साचोरा सावन्तसिह का पुत्र एवं महेशदास राठौड़ का वीर साथी बल्लू साचोरा ही था या नहीं, यह निश्चित रूपेण नहीं कह सकते हैं। नैणसी० में बल्लू के केवल दो पुत्र, बेणीदास और नरहर के ही नाम दिए हैं, वहाँ नथमल का नाम नहीं मिलता है (१, पृ० १७६-१७७)।

मदनसिंह कौन था, यह ज्ञात नहीं हो सका।

बढ़ रहा था। राह मे से ही नवम्बर ७ को उसने अपने विश्वस्त सेनानायक हसन अली खॉ को चौदह हजार सेना के साथ महाराष्ट्र के तल-कोंकण प्रदेश की ओर भेजा। दलपत बुन्देला के समान रामसिह राठौड और उसके सैनिक भी सभवतः हसन अली खॉ के साथ इसी समय भेजे गए थे।[७३] रामसिह राठौड की गणना इस समय मुगल साम्राज्य के वीर अनुभवी सेनानायको मे होने लगी थी एव उसे अपने साथ रखने को प्रत्येक सेनापति उत्सुक रहता था। नवम्बर १०, १६८१ ई० को बुरहानपुर के सूबेदार, खान जमान की अर्जी औरगजेब की सेवा मे पहुँची जिसमे उसने प्रार्थना की थी कि रामसिह को उसके साथ नियुक्त किया जावे, किन्तु औरगजेब ने उसकी इस प्रार्थना को स्वीकार नही किया।[७४]

हसन अली खॉ बुरहानपुर से ससैन्य जुन्नर होता हुआ उत्तरी कोंकण की ओर बढा। मुगल सेना का सामना करने का मरहठों को साहस न हुआ। तल-कोकण में उतरने के लिए मुगल सेना नानाघाट दर्रे में घुसी, तब मरहठों ने उसके पिछले हिस्से पर हमला किया। युद्ध मे दोनो ओर के सैनिक और सेनानायक मारे गए, परन्तु मरहठे मुगल सेना को रोकने मे सफल नही हुए। फरवरी, १६८० ई० के पहले सप्ताह मे हसन अली ख़ाँ ने कल्याण पर अधिकार कर लिया। कुछ दिन कल्याण ठहर कर हसन अली खॉ नासिक की ओर लौट गया। तल-कोकण की इस सारी चढाई में रामसिह

---

[७३] अख़० औरं०, २५, पृ० ३०६; औरंग०, ४, पृ० २६४; जय० अख़०, औरं०, २५, पृ० ५४६; भीम०, १, पृ० १७२।

[७४] अख़० औरं०, २५, पृ० ३१२।

हसन अली खाँ के साथ ही था और इन युद्धो मे वह वीरतापूर्वक लडा था।[७५]

औरगजेब नवम्बर १३, १६८१ ई० को बुरहानपुर पहुँचा। फरवरी २८, १६८२ ई० को वहाँ से रवाना होकर मार्च २२ को वह औरगाबाद आया। वहाँ से उसने शहाबुद्दीन खाँ को ससैन्य नासिक की ओर मरहठो का सामना करने भेजा, दलपत बुन्देला की नियुक्ति शहाबुद्दीन के साथ की गई और रामसिह राठौड तथा उसके सैनिकों को भी शहाबुद्दीन की सेना मे सम्मिलित होने का हुक्म मिला। खानदेश मे नासिक के आस-पास के अन्य छोटे-मोटे किलो को जीतने के बाद अप्रेल के प्रारम्भ मे शहाबुद्दीन ने रामसेज किले का घेरा डाला।[७६]

रामसेज का यह किला नासिक से कोई ७ मील उत्तर मे समुद्र-सतह से ३२७३ फुट ऊँची पहाडी के शिखर पर बना हुआ है। इस समय यह किला एक अनुभवी वीर मरहठा किलेदार के आधीन था। उसने किले के बचाव और सुरक्षा के लिए भरसक प्रयत्न किया। किले पर हमला करने के मुगल सेना के सारे प्रयत्न विफल ही रहे। अन्त मे शहाबुद्दीन ने लकडी का एक बुर्ज बनवाया, जिस पर से किले मे गोलाबारी की जा सके। इस बुर्ज को बनाने मे बडी मिहनत पडी और बहुत सा द्रव्य व्यय हुआ, फिर भी इससे यथेष्ट लाभ नही पहुँचा।[७७]

---

[७५] जय० अख़्ब०, औरं०, २५, पृ० ७५, ८८, ६१, ११४, १४५, १५९, ५४९; भीम०, १, पृ० १७२-३; औरग०, ४, पृ० २९४।

[७६] मा० आ०, पृ० २१४, २१७; भीम०, १, पृ० १७६; ख़फी०, २, पृ० २८१-२; जय० अख़्ब०, औरं०, २५, पृ० २१२; औरंग०, ४, पृ० २९५-६।

[७७] भीम०, १, पृ० १७६; ख़फ़ी०, २, पृ० २८२; औरंग०, ४, पृ० २९५-६।

इधर मई के प्रारम्भ मे किला का घेरा डालने वाली सेना पर आक्रमण करने के लिए रूपाजी भोसले और मानाजी मोरे के सेनापतित्व मे मरहठो की एक सेना दक्षिण से रामसेज की ओर बढी। औरगजेब ने यह समाचार सुन कर शहाबुद्दीन की सहायता के लिए खान जहाँ को ससैन्य रामसेज भेजा। मरहठो की यह सारी सेना तो रामसेज तक नही पहुँची, किन्तु उसके कुछ दलो ने वहाँ तक बढ कर मुगल सेना के मोरचो पर हमले किए। मई ७ को रात के समय उन्होने पहिले दलपत के मोरचो पर हमला किया और बाद मे रामसिह राठौड़ तथा उसके सैनिको को उनका सामना करना पडा, इस रात्रि-युद्ध मे रामसिह स्वय भी लड़ा। उन्होने बहुत से मरहठों को मारा तथा अन्त मे उन्हे हरा कर भगा दिया। इस युद्ध मे रामसिह के नौ आदमी मारे गए और ७० सैनिक घायल हुए थे।[७८] इसी तरह मई १३ और १४ को रामसेज का घेरा डालने वालों पर मरहठों के दलो ने और भी हमले किए। मई १४ को खान जहाँ रामसेज जा पहुँचा। उसे रामसेज की ओर आते देख कर शहाबुद्दीन ससैन्य वहाँ से मरहठो की इस सेना का सामना करने को एक दिन पहिले ही रामसेज से रवाना हो गया। शरीफ खाँ भी नासिक से बहुत-कुछ सेना लेकर शहाबुद्दीन से जा मिला। मई १४ को नासिक से पश्चिम मे मरहठो के साथ डट कर युद्ध हुआ जिसमे हार कर मरहठे भाग खड़े हुए। शाही सेना के भी अनेको मनसबदार और सैकडों सैनिक मारे गए या घायल हुए।[७९]

---

[७८]जय० अख़०, औरं०, २५, पृ० ३०६, ३१८, ५३०; खफी०, २, पृ० २८२; भीम०, २, पृ० १७६; औरंग०, ४, पृ० २६६।

[७९]जय० अख़०, औरं०, २५, पृ० ३१८, ३२१, ३३०; मा० आ०, पृ० २१८; जेधे शकावली; औरंग०, ४, पृ० २६६। मा० आ० के आधार पर

सहायता के लिए आई हुई मरहठो की सेना को लौटना पडा, परन्तु अब तक रामसेज किले पर एक बार भी आक्रमण नही हुआ था, एवं औरगजेब बहुत ही क्रुद्ध हो उठा। इस किले को जीतने मे शहाबुद्दीन की मदद के लिए कासिम ख़ॉ के नाम भी रामसेज जाने का हुक्म मई १९ को भेजा गया। इधर शहाबुद्दीन ने भी मई २७ को किले पर आक्रमण करने का प्रयत्न किया। शाही सेना किले की ओर बढी और साथ ही शाही तोपों ने किले की एक बुर्ज पर गोलाबारी की। गोलों की इस मार से भग्न होकर जब यह बुर्ज गिरा तब तक शाही सैनिक उसके पास तक पहुँच चुके थे, जिससे अनेको शाही सैनिक उसके नीचे दब कर मर गए या घायल हुए। इस दुर्घटना के बाद शाही सेना पीछे हट आई और आक्रमण का यह प्रयत्न विफल ही रहा।[८०]

रामसेज के इस घेरे के प्रारम्भ से ही रामसिह राठौड और उसके सैनिक पूरी तत्परता के साथ उसमे लगे हुए थे, एव इन सारे प्रयत्नो मे हाथ बँटा रहे थे। मई २८ को औरगजेब ने हुक्म दिया कि रामसिह और उसके सैनिकों को शहाबुद्दीन की सेना से वापस औरंगाबाद बुला लिया जावे, एव मई २७ के इस असफल आक्रमण के चार-पॉच दिन बाद ही रामसिह और उसके सैनिकों को शाही दरबार के लिए रवाना हो जाना पड़ा। जून, १६८२ ई० के पहिले सप्ताह मे वह औरगाबाद पहुँचा होगा।[८१]

औरंग०, ४, पृ० २६७ पर इस युद्ध का मई २० के दिन होना लिखा है, परन्तु जय० अख़०, औरं०, २५, पृ० ३३० पर शरीफ ख़ॉ के पत्र के आधार पर यह युद्ध मई १४ को होना बताया है, जो अधिक ठीक और विश्वसनीय है।

[८०]जय० अख़०, औरं०, २५, पृ० ३२५, ३५८; औरंग०, ४, पृ० २६७।

[८१]जय० अख़०, औरं०, २५, पृ० ३४६।

इधर जून १४, १६८२ ई० को औरगजेब ने शाहजादे आजम को एक बड़ी सेना देकर औरगाबाद से बीजापुर की ओर रवाना किया। सम्भवत. इसी समय रामसिह और उसके सैनिकों की भी नियुक्ति आजम की सेना मे की गई थी, परन्तु उसके इग्यारह दिन बाद ही जून २५ को औरगजेब ने रामसिह को आजम की सेना से बदल कर पीछा शहाबुद्दीन के साथ नियुक्त कर दिया। हसन अली खॉ और कलीच खॉ को आजम की सेना मे सम्मिलित होने का हुक्म दिया जा चुका था, एव रामसिह को भी आजम के साथ रहने देना आवश्यक नही जान पडा होगा। जून १४ से जून २५ के लगभग तक रामसिह राठौड आजम के साथ रहा या आजम की सेना मे नियुक्ति होते हुए भी शाही दरबार मे औरगाबाद ही बना रहा यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता है। इस समय रामसिह का मनसब डेढ हजारी जात–हजार सवारो का था जिनमे से छः सौ सवार दो-अस्पा थे। जुलाई ३१, १६८१ ई० को बढाया गया मनसब पुनः क्यो कम किया गया, एव यह कमी कब की गई थी, इसका कोई भी उल्लेख कही नही मिलता है।[८२]

शहाबुद्दीन इस समय भी रामसेज का घेरा डाले उस किले को जीतने का प्रयत्न कर रहा था, एव रामसिह अपने साथियों और सैनिकों को लेकर जुलाई, १६८२ ई० के प्रारम्भिक दिनों मे पुनः

मा० आ०, पृ० २१६ के आधार पर औरग०, ४, पृ० २६७ पर मई के अन्त में हयात खाँ को सज़ावल के तौर पर रामसेज भेजने का उल्लेख किया गया है। हयात खॉ को जून ५ के दिन उक्त आज्ञा दी गई थी। जय० अख़०, औरं०, २५, पृ० ३६५।

[८२] मा० आ०, पृ० २१६, जय० अख़०, और०, २५, पृ० ३८५, ४१४, ४१५; औरंग०, ४, पृ० २६८, ३६५।

रामसेज लौट आया। कासिम खॉ भी तब रामसेज मे ही था और शहाबुद्दीन की सहायता कर रहा था। जुलाई ७ को किले पर धावा किया गया। किले की दीवाले ऊँची थी और किले वाले ऊपर से पत्थर बरसाने लगे, जिनकी चोटे खाकर कई शाही सैनिक मर गए। शाही सेना को विफल होकर लौटना पडा।[८३]

इधर इन्ही दिनों कासिम खॉ और शहाबुद्दीन मे अनबन हो गई जिससे शाही सेना को सफलता मिलना असम्भव-सा हो गया। इस खटपट का हाल जब औरगजेब को ज्ञात हुआ तो उसने जुलाई १३ के दिन कासिम खॉ को लौट आने का हुक्म दिया। जुलाई १६ को औरगजेब ने रामसेज किले का काम सम्हालने का खान जहाँ को हुक्म दिया। शहाबुद्दीन को आजम की सेना मे सम्मिलित होने की आज्ञा दी गई। रामसेज के किले सम्बन्धी मामले पर सलाह करने को जुलाई २४ के दिन औरगजेब ने खान जहॉ को औरगाबाद बुलवा भेजा। किन्तु इसी अरसे मे शहाबुद्दीन और कासिम खॉ मे मेल हो गया था एव औरगजेब ने उन्हे रामसेज मे ही बने रहने की आज्ञा दे दी।[८४]

इस आपसी अनबन के होते हुए भी शहाबुद्दीन किले पर आक्रमण करता ही रहता था। जुलाई १७ को जो हमला हुआ उसमे चार शाही सैनिक किले की दीवार तक पर चढ गए, किन्तु किले के रक्षको ने उन्हे मार डाला एव चढने का प्रयत्न करते हुए अन्य शाही सैनिको को मार भगाया। आक्रमणकारियो को यो विफल होकर पुन. लौटना पडा। इसके कोई एक सप्ताह बाद लगभग एक हजार मरहठों

---

[८३] जय० अख०, औरं०, २५, पृ० ४५५।

[८४] जय० अख०, औरं०, २५, पृ० ४५८, ४६३, ४८३, ४९३।

का दल रामसेज की ओर आया, और किले मे घिरे हुए सैनिको की सहायतार्थ उन्होने शाही सेना के मोरचो पर हमला किया। लड़ाई मे बहुत से मरहठे मारे गए और बाकी भाग खड़े हुए। इन्ही आक्रमणों मे तथा मरहठो का सामना करते हुए रामसिह के भी सात सैनिक मारे गए और १७० सिपाही घायल हुए थे। अपने बढ़े हुए मनसब मे जो कमी हो गई थी वह रामसिह को बहुत ही खटक रही थी, एव अगस्त के प्रारम्भ मे उसने शहाबुद्दीन को बाध्य किया कि मई ७, १६८२ ई० के युद्ध मे रामसिह की कार्यवाही की पूरी-पूरी रिपोर्ट औरगजेब की सेवा मे पेश करे। उसके कुछ ही दिन बाद रामसिह ने स्वयं भी अपनी सेवाओ का उल्लेख करते हुए, अपने बढे हुए मनसब मे पॉच सदी जात की की गई कमी को रद किए जाने की प्रार्थना की। रामसिह की यह अर्जी अगस्त १६, १६८२ ई० को औरगजेब के पास पहुँची। औरगजेब ने तत्काल ही कोई वृद्धि न कर भविष्य मे उसकी प्रार्थना पर विचार करने की आशा बँधवाई।[८५]

उधर जुलाई के अन्तिम दिनों में बरसात ज्यादा होने से रामसेज पर आक्रमण नही हो रहे थे, एवं अगस्त ९ को औरगज़ेब ने दो और दूतो को हयात खाँ के पास रामसेज भेजा कि किले पर आक्रमण के लिए वे ताकीद करे। परन्तु इधर कासिम खॉ और शहाबुद्दीन मे पुनः मनमुटाव हो गया था, जिससे आक्रमण सफल नही हो रहे थे। अगस्त २७ को औरगजेब ने कासिम खॉ को रामसेज से वापस बुलवा लिया। औरगजेब हयात खाँ को भी बुलवाने की सोच रहा था, परन्तु इसी समय शहाबुद्दीन ने वादा किया कि वह सितम्बर ७ से पहिले ही किले को जीत लेगा, एव हयात खॉ को सितम्बर २२ तक रामसेज ही

---

[८५] जय० अख०, औरं०, २५, पृ० ४८३, ४९९, ५३०, ५४९।

ठहरने की आज्ञा दी गई। किन्तु शहाबुद्दीन अपने वादे के अनुसार किले को नही ले सका। खान जहाँ भी सितम्बर १५ के लगभग रामसेज जा पहुँचा और उसने किले के घेरे के सचालन का भार उठा लिया एवं सितम्बर २६ के दिन शहाबुद्दीन को हुक्म मिला कि वह रामसेज क़िले के घेरे का सारा काम तथा वहाँ के सारे शाही तोपखाने को खान जहाँ को सम्हलवा कर आज्ञानुसार रामसेज से अन्यत्र चला जावे। तदनुसार सितम्बर २८ को शहाबुद्दीन रामसेज से चल पडा। इसी अवसर पर औरगजेब ने रामसिह राठौड़ और उसके सैनिको को भी रामसेज से हटा लिया, शहाबुद्दीन की सेना से बदल कर उनकी नियुक्ति शाहजादे मुईजुद्दीन की सेना मे की गई।[८९]

मरहठो का उपद्रव बढने लगा था, एव वे दूर दूर तक शाही प्रदेश पर चढाई कर लूट-मार करने लगे थे। उनका सामना कर उसका अन्त कर देने को औरगजेब प्रबन्ध करने लगा। शाहजादे शाहआलम के ज्येष्ठ पुत्र मुईजुद्दीन को उसने बुरहानपुर से बुलवाया था, वह सितम्बर १६ को औरगाबाद पहुँचा। सितम्बर २६ को औरगज़ेब ने उसे हुक्म दिया कि मरहठो को दबाने के लिए वह ससैन्य पेड़गाँव की ओर जावे। मुईजुद्दीन के साथ जाने वाले अन्य मनसबदार

---

[८९] जय० अख़्ब०, औरं०, २५, पृ० ५१४, ५२५; २६ (१), पृ० १०, २९, ४३, ९७, ११३, ११४, १२८।

औरंग०, ४, पृ० २९८ पर लिखा है कि शहाबुद्दीन जून (१६८२ ई०) में नासिक से बदल कर जुन्नर भेजा गया। परन्तु यह कथन ठीक नही है। शहाबुद्दीन सितम्बर २८, १६८२ ई० तक नासिक ज़िले के अन्तर्गत रामसेज के सामने ही डटा हुआ था। वहाँ से उसे पहिले अन्तूर जाने का हुक्म मिला, और बाद में वह अक्तूबर ३ और ७, १६८२ ई० को क्रमशः अहमदनगर तथा जुन्नर की ओर भेजा गया था। जय० अख़्ब०, औरं०, २६ (१), पृ० ११४, १२८, १४४, १५५।

सेनानायकों मे रामसिंह राठौड का भी नाम था। सितम्बर २८ को मुईजुद्दीन अपने साथियो तथा प्राप्य सेना को लेकर औरगाबाद से चल पड़ा। तब रामसिह राठौड रामसेज मे शहाबुद्दीन के साथ था, एवं उसके पास वहाँ हुक्म पहुँचा कि वह सीधा मुईजुद्दीन की सेना मे जाकर सम्मिलित हो जावे। इस समय रामसिह का मनसब डेढ हजारी जात-एक हजार सवारों का था, जिनमे से सात सौ सवार दो-अस्पा थे।[८७]

मुईजुद्दीन औरंगाबाद से पेडगाँव के लिए चल पडा, और रामसिह राठौड़ उसकी सेना में जा मिला। परन्तु अक्तूबर १२ को उसे आदेश हुआ कि वह पेडगाँव न जाकर अहमदनगर ही ठहरे और उस जिले की रक्षा का प्रयत्न करे। कुछ समय बाद नवम्बर ४, १६८२ ई० को उसे पुन पेडगाँव जाने का हुक्म मिला। उस ओर से शाही प्रदेश पर आक्रमण करने वाले मरहठो को रोकना और उन्हें मार भगाना ही अब उसका प्रधान कर्तव्य हो गया। मुईजुद्दीन के साथ रामसिह भी पेड़गाँव को चल पडा। नवम्बर के अन्तिम दिनो मे वे पेडगाँव पहुँचे एव मरहठो की देख-भाल करने को भीमा नदी पार कर उस प्रदेश मे घूमने लगे।[८८]

---

[८७] मा० आ०, पृ० २२२; जय० अख०, औरं०, २६ (१), पृ० ११३, १२०; औरग०, ४, पृ० २६८।

पेड़गाँव (बहादुरगढ)—अहमदनगर से कोई ४५ मील एवं श्रीगोण्डा से ६ मील दक्षिण में भीमा नदी के उत्तरी तीर पर स्थित यह स्थान उस समय मुगल साम्राज्य का एक महत्वपूर्ण सैनिक केन्द्र और युद्ध-सामग्री का बड़ा भण्डार था। खान जहाँ ने 'पेडगाँव' नाम बदल कर इसका नया नाम 'बहादुरगढ' रखा था, एवं तब कई स्थानो में इस नए नाम से भी उसका उल्लेख मिलता है।

[८८] मा० आ०, पृ० २२२; जय० अख०, औरं०, २६ (१), पृ० १८७, २३६ ३३२।

औरगजेब के विचारानुसार महाराष्ट्र में पुरन्धर किले की ओर शाही सेना भेजना आवश्यक हो गया था, एव दिसम्बर १८, १६८२ ई० को उसने मुगल खाँ के नाम, जो इस समय मुईजुद्दीन के साथ ही था, एक फरमान भेजा कि वह ३३१५ सवारो का एक दल लेकर पुरन्धर की ओर जावे तथा वहाँ मरहठे विद्रोहियो को दबावे। मुगल खाँ के साथ जाने वालो मे रामसिह राठौड को भी नियुक्त किया गया। इस शाही आज्ञानुसार मुगल खाँ अपने साथी सेनानायको को लेकर दिसम्बर २५ के दिन मुईजुद्दीन के पास से पुरन्धर के लिए चल पड़ा। रामसिह भी उसके साथ गया। मुगल खाँ अपने सवारो के साथ बडी तेजी से पुरन्धर जा पहुँचा; राह मे पडने वाले मरहठो के गाँव को लूटा और आग लगा कर उन्हे जला डाला, तथा उसका सामना करने वाले दलो को हरा कर मार भगाया। उसकी इस सारी कार्यवाही का विवरण जनवरी १, १६८३ ई० को उसी की अर्जी से औरगजेब को ज्ञात हुआ। तब उसने दूसरे दिन ही मुगल खाँ के नाम हुक्म भेजा कि वह औरगाबाद को लौट आवे। उसी दिन मकहूर खाँ को भी कहलाया गया कि वह कोई सवा तीन हजार सवारो के दल को साथ लेकर पेडगाँव से ५० मील के लगभग दक्षिण-पूर्व मे भीमा नदी के उत्तरी तीर पर स्थित तेम्भरणी नामक स्थान पर जाकर पड़ाव डाले। इस समय मकहूर खाँ के साथ जाने के लिए रामसिह और उसके सैनिको को भी हुक्म मिला। इस हुक्म के अनुसार रामसिह तेम्भरणी गया या नही इसका विवरण नहीं मिलता है।[८९]

---

[८९]जय० अख़०, औरं०, २६ (१), पृ० ३६७; २६ (२), पृ० ४०, ६०, ६६, १२६।

यो रामसिह को मकहूर खा के साथ तेम्भरणी भेजा गया था, परन्तु तब भी उसकी गणना मुईजुद्दीन की सेना के अन्तर्गत ही होती थी। किन्तु औरगजेब ने रामसिह को यहाँ भी अधिक दिन नही रहने दिया। जनवरी १८ के दिन उसने हुक्म दिया कि मुईजुद्दीन की सेना से बदल कर रामसिह को रुहेला खाँ की सेना मे नियुक्त किया जावे। तदनुसार जनवरी २१ के लगभग पेड़गाँव के पास से रवाना होकर वह जनवरी २४ को औरगाबाद पहुँचा तथा वहाँ रुहेला खाँ की सेना मे शामिल हो गया।[१०]

अक्तूबर, १६८२ ई० के दूसरे सप्ताह मे औरगजेब ने रणमस्त खाँ को ससैन्य तल-कोकण प्रदेश पर चढाई करने का हुक्म दिया था। तदनुसार वह महाजे दर्रे मे होकर तल-कोंकण मे उतर पडा, और राह में सामना करने वाले मरहठे दलो से निरन्तर लडता-भिडता, नवम्बर के अन्तिम दिनो मे वह कल्याण-भिवण्डी जा पहुँचा। वहाँ ठहर कर वह एक छोटा सा किला बनवाने लगा। रणमस्त खाँ चाहता था कि इस किले को पूरा कर वहाँ एक अच्छा शक्तिशाली थाना स्थापित करे और तब कोकण प्रदेश मे आगे बढे। किन्तु वह किला बन ही रहा था कि मरहठो के दल निरन्तर उस पर आक्रमण करने लगे। जनवरी, १६८३ ई० के प्रारम्भिक दिनो मे जाकर वह किला पूरा हो पाया, किन्तु तब तक रणमस्त खाँ की कठिनाइयाँ बहुत बढ गई थी। उसे निरन्तर मरहठे आक्रमणकारियो का सामना करना पड रहा था। वह कल्याड-भिवण्डी से आगे नही बढ सका।[११]

कोकण मे मरहठो का यह उपद्रव अधिकाधिक बढने लगा।

---

[१०] जय० अख०, औरं०, २६ (१), पृ० १३६, १५६।

[११] जय० अख०, औरं०, २६ (१), पृ० १६०, २४१, २५१, २६०, ३४३; २६ (२), पृ० ३, १०, ६५, ७४, १००। औरंग०, ४, पृ० २६६, ३००।

जनवरी के दूसरे सप्ताह में रणमस्त खॉ ने अपनी एक अर्जी मे औरगाबाद लिख भेजा कि मरहठो के जो दल कुछ ही समय पहिले बीजापुर से उत्तर मे धरूर के पास शाहजादे आजम का सामना कर रहे थे, वे भी अब कोंकण में उस पर आक्रमण करने के लिए वहॉ चले आए थे । रणमस्त खॉ को कई नए सैनिक भी रखना पड़े, उन्हे तनख्वाह चुकाने और सेना के अन्य व्यय के लिए भी रणमस्त खॉ के पास द्रव्य भेजना आवश्यक हो गया था । मरहठो के उपद्रव के कारण दूसरी राह खजाना भेजना खतरे से खाली नही था, एवं सूरत से ही उसे सीधा भिजवाने का आयोजन किया गया और इस खजाने के साथ जाने के लिए सैय्यद इज्जत खाँ, बीकानेर के राव करण का तीसरा पुत्र पदमसिह, आदि सेनानायको को नियुक्त किया गया । यह हुक्म जनवरी १९ को दिया गया था, परन्तु इज्जत खॉ, आदि फरवरी ५ से पहिले कल्याण-भिवण्डी के लिए रवाना नही हो सके । सूरत की ओर होते हुए वे रामनगर की राह कल्याण की ओर बढे ।[१२]

उधर खान जहॉ नासिक से औरगाबाद के पास होता हुआ जनवरी २० को बीजापुर की सीमा पर नान्देर की ओर चला गया था, एव उसके स्थान पर रुहेला खॉ जनवरी २५ के दिन नासिक

---

[१२] जय० अख०, औरं०, २६ (२), पृ० १४४, ६५, ७४, ९४, १३९, १४०, १४४, २३७ ।

रामनगर—वर्तमान धरमपुर राज्य में धरमपुर शहर से २४ मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित नगर नामक स्थान का प्राचीन नाम । मुग़ल काल में रामनगर ही इस राज्य की राजधानी था और इस शहर के नाम से ही यह राज्य भी 'रामनगर राज्य' कहलाता था । बम्बई गेजेटियर, १८८० का सस्करण, ६, पृ० २५६, २५७; मीरात्-इ-अहमदी, अंग्रेजी अनुवाद, सप्लीमेंट, पृ० १९३, १९७ ।

जाने के लिए औरगाबाद से बिदा हुआ। मुईजुद्दीन की सेना से रवाना होकर रामसिह राठौड और उसके सैनिक भी एक दिन पहिले ही औरगाबाद पहुँच कर रुहेला ख़ाँ की सेना मे शामिल हुए थे, एव वे भी रुहेला ख़ाँ के साथ ही जनवरी २५ को औरगाबाद से चल पडे और फरवरी ५ को नासिक पहुँचे। जनवरी २५ को कासिम खाँ के पास भी हुक्म भेजा गया था, एव तदनुसार वह भी ससैन्य नासिक मे रुहेला ख़ाँ की सेना मे जा मिला। किन्तु फरवरी १० को औरगजेब ने रुहेला ख़ाँ को वापस औरगाबाद बुलवाने की सोची और हुक्म भेजा कि कासिम खाँ को नासिक मे सारी सेना का भार सौप कर वह स्वय औरगाबाद लौट आवे। इसी सिलसिले मे तीन दिन बाद यह भी हुक्म भेजा गया कि रुहेला ख़ाँ के लौट आने पर भी रामसिह कासिम ख़ाँ के साथ ही नासिक मे रहे। फरवरी १७ को रामसिह को कासिम ख़ाँ की सेना से बदल कर मामूर खाँ की सेना मे नियुक्त किया गया, जो इस समय बीड़ के आस-पास मरहठो का सामना कर रहा था। सम्भवत दूसरे दिन ही यह हुक्म रद कर दिया गया और रामसिह नासिक मे कासिम खाँ के साथ ही बना रहा।[९३]

परन्तु कल्याण-भिवण्डी से जो समाचार आ रहे थे, वे किसी भी

---

[९३] मा० आ०, पृ० २२४; जय० अख़०, औंर०, २६ (२), पृ० १४८, १६१, १५६, २०१, १६१, २०५, २१६, २२६।

मामूर ख़ाँ के साथ इस समय की गई रामसिह की नियुक्ति को रद करने का उल्लेख अख़बारो में नहीं मिलता है। परन्तु इस हुक्म के बाद भी रामसिह कल्याण-भिवण्डी की चढ़ाई में रुहेला ख़ाँ के साथ था, एवं अनुमान यही होता है कि इस नियुक्ति के बाद ही उक्त चढ़ाई के लिए सेनानायको की नियुक्ति करते समय रामसिह को कासिम ख़ाँ के साथ ही बने रहने का हुक्म दिया गया होगा।

प्रकार सन्तोषप्रद न थे। औरगजेब को यह आवश्यक जान पडा कि रणमस्त खॉ की सहायता के लिए अधिक शाही सेना भेजी जावे। अतएव फरवरी १८ को उसने नासिक हुक्म भेजा कि रुहेला खॉ औरगाबाद को न लौटे तथा नासिक मे ही ठहरा रहे। सम्भवत. उसी दिन यह आज्ञा भी दी गई थी कि नासिक से सेना लेकर कासिम खॉ शीघ्र ही रणमस्त खॉ की मदद के लिए कोकण को चल पडे। किन्तु कासिम खॉ कोकण के प्रदेश से बिल्कुल ही अनभिज्ञ था, एव रुहेला खॉ ने जब यह बात औरगजेब को सूचित की तब उसने फरवरी २३ के दिन रुहेला खॉ को लिखवा भेजा कि वह स्वयं ही कासिम खॉ को साथ लेकर ससैन्य रणमस्त खॉ की सहायतार्थ कोकण जावे। औरगजेब चाहता था कि रुहेला खॉ जल्द ही रवाना हो जावे एवं ताकीद करने के लिए फरवरी २५ को पुन. एक दूत भेजा गया, जिसके फलस्वरूप फरवरी २८ के दिन रुहेला खॉ और कासिम खॉ ससैन्य नासिक से कोकण के लिए चल पडे। रामसिह राठौड भी रुहेला खॉ के साथ ही कोकण के लिए रवाना हुआ। रामसिह के भाई छत्रसाल और जेतसिह भी इस चढाई मे रुहेला खाँ के साथ थे।[९४]

रामसिह रुहेला खॉ के साथ कोंकण को जा रहा था, किन्तु उसकी आर्थिक कठिनाइयॉ अब भी उसे घेरे हुए थी। जालोर की फौजदारी मे ऊँटों की डाक-चौकी के रु० ५७५) और रास-उल्-माल के रु० ७००) अब भी रामसिह मे लेना रहे थे। इन रुपयो की वसूली के लिए शाही कार्य-कर्त्ता रामसिह को तग कर रहे थे, एव रामसिह ने इस बाबत रुहेला खॉ के जरिये एक अर्जी औरगजेब की सेवा मे भेजी

---

[९४]जय० अख़०, औरं०, २६ (२), पृ० २३७, २५१, २५६, २७३, ४०६, ३९९, ४१७।

जो मार्च ११, १६८३ ई० के दिन उसके सम्मुख पेश हुई। औरग-जेब ने हुक्म दिया कि रास-उल्-माल तो ले लो और बाकी रुपया शाही लेन-देन मे दाखिल कर दिया जावे।[९५]

रणमस्त खॉ कल्याण-भिवण्डी मे बैठा, अपनी सहायता के लिए आने वाली इन शाही सेनाओ की प्रतीक्षा मे था। मरहठो के आक्रमण उस पर होते ही रहते थे। हम्बीर राव के नेतृत्व मे मरहठो का एक बडा दल फरवरी २७ को कल्याण-भिवण्डी की ओर आया। रणमस्त खॉ ने उस पर हमला किया जिसमे हम्बीर राव स्वयं घायल हुआ, उसका साला मारा गया तथा अन्त मे मरहठे भाग खडे हुए। शाही सेना के भी बहुत से सैनिक मारे गए।[९६]

रुहेला खॉ और उसके सैनिको को राह मे अनेकानेक कठिनाइयो का सामना करना पड रहा था, जिससे वह धीरे-धीरे ही आगे बढ रहा था। मार्च ९ के लगभग वह अतगॉव नामक स्थान पर पहुँचा, जो कल्याण-भिवण्डी से केवल २४ मील की दूरी पर है। उधर इज्जत खॉ और पदमसिह, आदि भी रामनगर की राह कल्याण की ओर आ रहे थे। इस समय वे रुहेला खाँ से अधिक दूर न थे। उन्हे भी राह मे कई बार मरहठों का सामना करना पडा। पुर्तगालियों ने अवश्य बिना किसी प्रकार की रोक-टोक के अपने दमन प्रदेश में से होकर उन्हे निकलने दिया। मार्च १३ के लगभग इज्ज़त खॉ, आदि भी रुहेला खॉ की सेना मे सम्मिलित हो गए एव सब साथ ही कल्याण-भिवण्डी की ओर चले।[९७]

---

[९५] जय० अख़०, औरं०, २६ (२), पृ० ३१२।

[९६] जय० अख़०, औरं०, २६ (२), पृ० ३३४।

[९७] जय० अख़०, औरं०, २६ (२), पृ० ३५६, ३३१; औरंग०, ४, पृ० ३१६।

अपने इन साथियो तथा इस सम्मिलित सेना को लेकर फरवरी १३, १६८३ ई० के दिन रुहेला खॉ कल्याण पहुँचा और रणमस्त ख़ॉ के साथ जा मिला। रणमस्त ख़ॉ ने बहुत ही आग्रह किया कि रुहेला खॉ भी कल्याण के उस नये बने हुए किले मे जाकर वहॉ डेरा डाले, किन्तु किला छोटा था और रुहेला ख़ॉ के साथ की सेना इतनी अधिक थी कि वहॉ सब का समाना सम्भव नही था एव रुहेला खॉ ने उस किले के बाहर ही पड़ाव डाला। इस समय मरहठो का उपद्रव आस-पास बहुत था, एव दूसरे दिन (फरवरी १४) रणमस्त खाँ कल्याण मे चुपचाप बैठ रहना उचित न समझ एक सैनिक दल लेकर गश्त करने को निकला। राह मे उसकी मरहठों से मुठभेड हो गई, जिसमें अनेकों मरहठे मारे गए तथा अन्त में मैदान छोड कर वे भाग खडे हुए। पुन. रुहेला खॉ के नाम एक शाही फरमान उसी दिन कल्याण पहुँच रहा था, जिसकी पेशवाई के लिए रुहेला खॉ कल्याण से निकला। राह मे उसे भी मरहठो के दल का सामना करना पड़ा। रुहेला खॉ ने उसे मार भगाया, परन्तु इस युद्ध मे शाही सेना के भी कई सैनिक मारे गए।[९८]

इसी प्रकार शाही सेना को मरहठे दलो के साथ निरन्तर युद्ध करने पड रहे थे। रामसिह राठौड भी शाही सेना के साथ था। वह और उसके भाई भी यथा-सम्भव इन सारे युद्धों मे भाग ले रहे थे। इधर रुहेला ख़ॉ, आदि रणमस्त ख़ॉ की सेना को साथ लेकर नासिक वापस लौटने की तैयारी कर रहे थे। इसी अरसे मे मार्च १८ के लग-भग हम्बीर राव २०,००० सवार और १०,००० प्यादो को लेकर शाही सेना पर आक्रमण करने के लिए कल्याण-भिवण्डी के पास तक

[९८] जय० अख़०, औरं०, २६ (२), पृ० ३६४-५।

आ पहुँचा। रूपा भोंसले और माना मोरे भी हम्बीर राव के साथ थे। शाही सेना के पिछले भाग पर मरहठों ने हमला किया, तब तो चन्दावल के सेनानायक पदमसिह, आदि ने उनका सामना किया। घमासान युद्ध छिड़ गया। पदमसिह और उसके साथी बडी वीरता के साथ लड़े। हम्बीर राव, रूपा भोसला और माना मोरे तीनो घायल हुए। अन्त मे मरहठो के पाँव उखड गए और वे भाग खड़े हुए। इस युद्ध में मरहठो के दो सरदार और कोई २०० सैनिक खेत रहे। शाही सेना की ओर से पदमसिह बहादुरी के साथ लडता हुआ खेत रहा। अन्य कई सेनानायक भी मारे गए। रामसिह राठौड़ का एक भाई जेतसिह मारा गया और दूसरा भाई छत्रसाल घायल हुआ।[११]

---

[११] जय० अख०, औरं०, २६ (२), पृ० ४०५–७, ४२६, ३९९, ४१७, ४०९; दयालदास री ख्यात, २, पृ० २३३-२४१।

औरंग०, ४, पृ० ३०३ के अनुसार यह युद्ध कल्याण से सात मील उत्तर-पूर्व में तितवाला नामक स्थान पर हुआ था।

जेधे शकावली में रूपा भोसला को ही इस सेना का नायक बताया है (शिव चरित्र-प्रदीप, पृ० ३२), किन्तु अखबारों के अनुसार हम्बीर राव ही प्रधान सेनानायक था। इस युद्ध के समय कल्याण मे उपस्थित एक दूत के कथनानुसार ही अखबारों में उक्त उल्लेख किया गया है एवं वह अधिक विश्वसनीय है।

भीम० (१, पृ० १७२-३) में भूल से पदमसिह की मृत्यु सन् १६८२ ई० मे होना लिखा है।

इस युद्ध के बाद मार्च २२ के लगभग मरहठों के साथ एक और युद्ध हुआ था, जिसमें पीर गुलाम नामक शाही सेनानायक के नेतृत्व में शाही सैनिको ने कल्याण-भिवण्डी से कोई ७ कोस की दूरी पर मरहठे दल पर आक्रमण कर उसे मार भगाया था; जय० अख०, औरं०, २६ (२), पृ० ४२६। इस दूसरे युद्ध के अगले दिन मार्च २३ को ही रुहेला खाँ, आदि ससैन्य कल्याण से रवाना हो पाए।

दुर्भाग्य से इस दिन रामसिंह राठौड ज्वर से पीडित था, वह इस युद्ध मे भाग न ले सका; उसे बरबस अपने डेरे पर ही ठहरना पडा। युद्ध में पदमसिह के मारे जाने का विवरण जब रामसिह ने अपने डेरे मे सुना तो ज्वर से पीड़ित होते हुए भी जिरह-बख्तर पहिन कर युद्ध मे मरहठों का सामना करने के लिए जाने को वह तत्पर हुआ। किन्तु बीमारी की हालत मे इतना सारा परिश्रम वह सहन नही कर सका। उसका ज्वर बढ गया और जिरह-बख्तर पहिने हुए ही उसकी तत्काल मृत्यु हो गई।[100] अपने घर से सैकड़ो मील दूर, दुश्मनों से सर्वत्र घिरे हुए प्रदेश में यों रामसिह की मृत्यु हुई। वह युद्ध मे भाग नही ले सका था, परन्तु युद्ध-यात्रा के लिए तत्पर, वीर वेश में ही रामसिह का मरना कम गौरवपूर्ण नही था।

यद्यपि इस बात का कोई निश्चित विवरण नहीं मिलता है कि रामसिंह की दाह-क्रिया कहाँ हुई, अनुमान यही होता है कि पदमसिह, आदि उच्च पदस्थ सेनानायको के साथ ही रामसिंह की दाह-क्रिया भी कल्याण के पास उल्हास नदी के तीर पर कर दी गई होगी। रामसिंह की इस प्रकार कल्याण मे मृत्यु हुई, यह समाचार अप्रेल २

---

[100] जय० अख०, औरं०, २६ (२), पृ० ४०६।

गुरूजी० में सिर्फ यही लिखा है कि रामसिंह की कोंकण में मृत्यु हुई थी। उसकी बंधी हुई पाग को लेकर जिस दिन रतलाम में उसकी रानियाँ, आदि सती हुईं, उस तिथि को गुरूजी की पोथी में रामसिंह की मृत्यु-तिथि लिखी है। रतन०, पृ० ५५।

रामसिंह के युद्ध में मारे जाने के जो उल्लेख रतलाम० (पृ० ७) तथा सीतामऊ० (पृ० ३) में दिए गए है, वे दन्त-कथाओ के आधार पर ही थे, एव अख़बारों के समान समकालीन विवरणो की तुलना में सर्वथा अग्राह्य है। प्राचीन० (३, पृ० ३६५) का वृत्तान्त रतलाम० के ही आधार पर लिखा गया था।

के दिन औरंगजेब के पास औरंगाबाद पहुँचा, जहाँ से इसी वृत्तान्त को रतलाम पहुँचने मे पूरे पन्द्रह दिन और लगे।

रामसिंह के कई रानियाँ थी,[१०१] जिनमे विशेष रूपेण उल्लेखनीय ये है। पहली रानी चन्द्रावती श्याम कुँअर थी, जिसका पिता रामपुरा का सुजानसिंह बिट्ठलदासोत था। रामसिंह के ज्येष्ठ पुत्र शिवसिंह को इसी रानी ने जन्म दिया था।[१०२] दूसरी रानी शेखावत महासिंह उग्रसिंहोत की पुत्री मान कुँअर थी।[१०३] तीसरी रानी राजसिंह पृथ्वीराजोत झाला की पुत्री अमृत कुँअर थी।[१०४]

---

[१०१] रामसिंह के कुल कितनी रानियाँ थी, वे किन घरानो की और कहाँ-कहाँ की थीं यह निश्चित रूपेण कहना कठिन है। गुरूजी० में सिर्फ छः रानियो का उल्लेख है। राणी० में आठ रानियो के नाम मिलते है। बडवों की पोथियों में रानियो की सख्या आठ से दस तक दी है। विभिन्न ख्यातो में दिए गए रानियो और उनके पीहरों के नामो में बहुत ही कम मतैक्य पाया जाता है। जिन रानियों के नाम प्रायः सब ख्यातो या पोथियोमें मिलते है या जिनका विशेष रूपेण उल्लेख आवश्यक प्रतीत हुआ, उनका ही विवरण यहाँ दिया गया है।

[१०२] इस रानी के दूसरे नाम लाड़ कुँअर, राज कुँअर एवं सुख कुँअर भी मिलते हैं। राणी० के अतिरिक्त गुरूजी० तथा अन्य सारी ख्यातो में शिवसिंह को इसी रानी का पुत्र लिखा है।

[१०३] इस रानी के दूसरे नाम हर कुँअर, शिव कुँअर आदि मिलते है। राणी० के अनुसार शिवसिंह इसी रानी का पुत्र था, किन्तु राणी० का यह कथन सर्वथा अविश्वसनीय प्रतीत होता है। अन्य कोई भी ख्यात उसके इस उल्लेख का समर्थन नहीं करती है।

यह उग्रसेन नरसिंहदास लूणकर्णोत का पुत्र था। नैणसी०, २, पृ० ३३-३४।

[१०४] इस रानी के दूसरे नाम रतन कुँअर और मृग दे कुँअर भी मिलते है। गुरूजी० के अनुसार यह राजसिंह गगधार का था; राणी० में उसे गोगुन्दा का होना लिखा है। किन्तु इस नाम का व्यक्ति दोनो ही घरानो के प्रधान पुरुषों

चौथी रानी जैसलमेर की भटयाणी मनसुख दे कुँअर थी, जिसके पिता का नाम गोपालदास था। रामसिह का दूसरा पुत्र, केशवदास इसी भटयाणी रानी की सन्तान था।[१०५] पाँचवी रानी बूँदी के महाराज कुमार गोपीनाथ के चौथे पुत्र राजसिह की कन्या हाडी स्वरूप दे कुँअर थी।[१०६] छटवी रानी नरूका फतेहसिह की पुत्री चाँद कुँवर थी।[१०७] सातवी रानी भटयाणी राम कुँअर अथवा रम्भा दे कुँवर

में नहीं मिलता है (नैणसी०, २, पृ० ४७३-४; उदय०, २, पृ० ६०२-६०३)।

[१०५]यह गोपालदास जैसलमेर के रावल सबलसिह का चचेरा भाई था (नैणसी०, २, पृ० ३३७)।

राणी० में इस रानी के पिता का नाम सबलसिह लिखा है। यह सबलसिह जैसलमेर का शासक, रावल सबलसिह था, या उसी रावल के चचेरे भाई गोकुल-दास का पुत्र सबलसिह था, यह खुलासा राणी० में नहीं किया गया है (नैणसी०, २, पृ० ३३७, ४११, ३३६)।

[१०६]गुरूजी०; राणी०; वंश०, ३, पृ० २४५२-३।

इस रानी के अन्य नाम रस कुँअर, शिवसुख दे कुँअर और हस कुँअर मिलते है।

बड़वो की कुछ ख्यातो के अनुसार यह रानी बूँदी के किसी समरसिह या सुमेर-सिह की कन्या थी।

गुरूजी० तथा कुछ ख्यातों के अनुसार रामसिह की एक-मात्र कन्या, अमर कुँअर, इसी हाड़ी रानी की पुत्री थी।

[१०७]इस रानी के अन्य नाम भूर कुँअर, सज्जन कुँअर और बदन कुँअर मिलते हैं।

यह नरूका फतेहसिह किसका लड़का था, इसका कहीं भी खुलासा नही किया गया है। एक ख्यात में इस रानी को हरीसिह की पोती लिखा है।

गुरूजी० में इस रानी का नाम नहीं है, किन्तु राणी० तथा प्रायः दूसरी सब ख्यातो में उसका नाम मिलता है।

थी ।[१०८] इन रानियो मे से केवल दो रानियाँ ही रामसिह की मृत्यु होने पर सती हुई थी । उन दो के अतिरिक्त अन्य कितनी तथा कौनसी रानियाँ उस समय जीवित थी, यह निश्चित रूपेण ज्ञात नही है ।

कल्याण-भिवण्डी मे मार्च १८ के दिन रामसिह की मृत्यु होने का विवरण बुधवार, वैशाख सुदी २, सबत् १७४० वि० (अप्रेल १८, १६८३ ई०) को रतलाम पहुँचा । साथ ही रामसिह की बंधी हुई पाग भी रतलाम आई । तत्काल ही शिवबाग मे चिता रची गई और रामसिह की उस पाग को लेकर रामसिह की दो रानियाँ शेखावत मान कुँअर तथा भटचारी मनसुख दे कुँअर, एव रामसिह की कोई १९ उपपत्नियाँ, खवासिनें, आदि रतलाम मे उस दिन सती हुई ।[१०९]

---

[१०८] राणी० में इस रानी को बिशनसिंह भाटी की पुत्री लिखा है । सम्भवतः यह बिशनसिंह रामचन्द्र सुरताणोत जैसा भाटी का पुत्र था (नैणसी०, २, पृ० ३६०) ।

गुरूजी० में तो इस रानी का नाम ही नहीं है । बड़वों की ख्यातो के अनुसार यह रानी पदमसिंह की पुत्री थी ।

राणी० के अनुसार रामसिंह की एक-मात्र कन्या, अमर कुँअर, जिसका विवाह उदयपुर हुआ था, इसी रानी की पुत्री थी । राणी० में अमर कुँअर का नाम हर कुँअर दिया है ।

[१०९] गुरूजी०, राणी०, आदि में श्रावणादि संवत् १७३९ वि० दिया है, जिससे अब तक एक साल की भूल होती रही है ।

गुरूजी० तथा अन्य ख्यातो में लिखा है कि जहाँ यह सती हुई थी उसी स्थल के आस-पास बाद में रामसिह के उत्तराधिकारी शिवसिंह ने अपने नाम से एक बाग लगवाया था । किन्तु इस सती से पूरे छः साल पहिले लिखे हुए रसाल कवि कृत 'राम-चरित्र' काव्य में शिवबाग का वर्णन मिलता है, जिससे अनुमान यही होता है कि यह बाग रामसिंह ने ही सन् १६७७ ई० से पहिले लगवाया और

सती के इस स्थल पर रामसिह के ज्येष्ठ पुत्र एव उत्तराधिकारी शिवसिह ने लाल पत्थर का एक बड़ा चौतरा बनवाया। वह चाहता था कि उस पर वह एक सुन्दर छत्री भी बनवाए, किन्तु उसकी यह इच्छा पूरी नही हो सकी। शिवसिह का बनवाया हुआ वह चौतरा आज भी रतलाम के शिवबाग मे विद्यमान है।

रामसिह के घटनापूर्ण जीवन का इस प्रकार नाटकीय विफलता-मय अन्त हुआ। जीवन भर मृत्यु के साथ निस्सकोच आँख-मिचौनी खेलने वाले इस अनुभवी सेनापति ने भी अन्तिन समय भाग्य से धोखा खाया। शत्रुओ से चारों ओर घिरे हुए, प्रति दिन उनका सामना करते हुए, आठो पहर युद्ध-क्षेत्र मे रह कर भी खेत रहने का सौभाग्य उसे नही प्राप्त हो सका। युद्ध-क्षेत्र मे काम आने वाले नगण्य व्यक्तियों की वार्ता को सुनकर उनके प्रति उसने कितनी असीम ईर्ष्या का अनुभव किया होगा ? युद्ध से लौटे हुए आहत सैनिकों तक को उसने किस हसरत भरी नजर से ताका होगा ? वीर वेश मे पूरी तरह से सुसज्जित होकर भी सुदूर युद्ध-क्षेत्र को देखते हुए अपने डेरे मे ही चुपचाप मरने वाले उस सुप्रसिद्ध सेनानी ने कितने खेद के साथ अपनी इस मृत्यु को कोसा होगा ? कितनी अवर्णनीय विवशता का उसने अनुभव किया होगा ? गहरी कसक एवं तीव्र वेदना से पीडित वह वीर अपने अन्तिम क्षण तक वीर-मृत्यु के लिए तरसता ही रहा।

निरन्तर साधना के बाद भी भाग्य ने जीवितावस्था मे ही उससे

अपने ज्येष्ठ पुत्र के नाम पर इस नाम का नामकरण 'शिवबाग़' किया था। राम०, पृ० ८-९, ४४।

रामसिंह ने रतलाम में एक और बाग़ लगवाया था, जिसका नाम 'रामबाग़' रखा गया था। यह बाग़ आज तक विद्यमान है।

छल किया था, परन्तु इसके विपरीत यदा-कदा ही उसका स्नेह एवं आश्रय प्राप्त करने वाली देवी सरस्वती ने मृत्यु के बाद भी उसकी ओर से मुख नही मोडा। चिर-कुमारिका कीर्ति ने इस वीर की स्मृति को वर कर सन्तोष का अनुभव किया। रामसिह की वीरता और साहस के गीत सर्वत्र गाये जाने लगे; उसकी प्रशसा एव महत्त्व का वर्णन करने के लिए कवियों में होड़ पड़ गई। और काव्य-कल्पना की इस झीनी चादर ने रामसिह के दुर्भाग्य की उस कठोर कहानी पर ऐसा घना कुहरा छा दिया कि ख्यात-कार भी मन्त्रमुग्ध होकर अन-जाने ही अपनी पोथियों मे लिख बैठा—"कोकण की एक लड़ाई में रामसिह काम आया"।

परिशिष्ठ–५

रतनसिंह के अन्य इग्यारह पुत्रों का संक्षिप्त विवरण

रतनसिह के बारह पुत्र और कई पुत्रियाँ थी। पुत्रो मे रामसिह ज्येष्ठ था। वह रतलाम का अधिकारी हुआ। उसका पूरा-पूरा विवरण पिछले अध्याय में दिया जा चुका है। रामसिंह का विवरण लिखते समय उसके छोटे भाइयो का यत्किंचित् उल्लेख आवश्यकतानुसार स्थान-स्थान पर किया गया है। प्रत्येक भाई के जीवन का क्रम-बद्ध सक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

(१) रायसिंह

वह रतनसिह का दूसरा पुत्र था। सन् १६४० ई० (स० १६९७ वि०) में कछवाही रानी राजावती गुणरूप दे कुँअर मोहकमसिह प्रेमसिहोत की ने उसे जन्म दिया था। अपनी माता की वह एकमात्र संतान था। बाल्यकाल से ही वह निर्भय और साहसी था। केवल सत्रह वर्ष की वय में ही वह हठ कर रतनसिह के साथ उज्जैन गया और धरमत के युद्ध मे भी सम्मिलित हुआ। जिस वीरता के साथ रायसिह इस युद्ध मे लडा और युद्ध करता हुआ घायल होकर युद्ध-भूमि मे गिरा उसका पूरा-पूरा विवरण 'रतन रासो' और 'वचनिका०' मे सविस्तार दिया है।

सन् १६५९ ई० के लगभग रायसिह भी शाही मनसबदार बन

गया और बहुत करके इसी मनसब की जागीर में उसे आगर-कानड का परगना मिला होगा। गुरूजी० के आधार पर रतन० मे (पृ० ५३, ७४) लिखा है कि उक्त परगना रायसिह को सन् १६५२ ई० मे मिला था; किन्तु यह कथन पूर्णतया अविश्वसनीय है। गुरूजी० के अनुसार सन् १६६० ई० तक ही यह परगना रायसिह के अधिकार मे रहा। वहाँ यह भी लिखा है कि सन् १६५८ ई० के बाद रायसिह को बदनावर का परगना मिल गया था। सम्भव है कि सन् १६५९ ई० के बाद रायसिह को यह परगना मिला हो, किन्तु इस बारे मे कोई भी बात निश्चित रूपेण नही कही जा सकती है।

अप्रेल ७, १६६७ ई० को रायसिह का मनसब तीन सौ जात–एक सौ सवार का था। सम्भवत. इस समय तक वह उत्तरी भारत मे था, एव अब उसकी नियुक्ति दक्षिण मे शाही सेना के साथ की गई। शाहजादा मुअज्जम (शाह आलम) दक्षिण का सूबेदार था और उसकी सहायता के लिए जसवन्तसिह भी दक्षिण मे ही नियुक्त किया गया था। जय० अख०, और०, १० (१), पृ० १५; आ० ना०, पृ० १०३७; औरंग०, ४, पृ० १४७। रायसिह इस समय कब तक दक्षिण मे रहा, और वहाँ उसने क्या किया इसका कोई भी ब्यौरा नही मिलता है। सम्भवतः वह पिछले बरसो मे अपने ज्येष्ठ भाई रामसिह के साथ ही वह भी नियुक्त रहा होगा। सन् १६७९ ई० के पिछले महीनो मे रामसिंह के साथ वह भी दक्षिण मे शाहजादे मुअज्जम (शाह आलम) की सेना मे नियुक्त था। अप्रेल ८, १६८० ई० को रामसिह के साथ रायसिह को भी औरगजेब ने शाही दरबार मे अजमेर बुलवा भेजा था, और बहुत करके अक्तूबर १० को अपने अन्य छोटे भाइयो के साथ रायसिह भी शाही दरबार में उपस्थित हुआ था। जय० अख०, और०, २३ (१), पृ० २३२,

२३ (३), पृ० १६२, २३ (४), पृ० १३०, २४ (१), पृ० ४८।

गुरूजी० मे लिखा है कि सन् १६८१-२ ई० (१७३८ वि०) मे रायसिह अपने चौथे पुत्र महासिह के साथ ही दक्षिण मे युद्ध करता हुआ सोप (सूपा ?) नामक स्थान मे मारा गया। सभव है कि जुलाई ३१, १६८१ ई० को जब शाहजादा आजम एक बडी शाही सेना लेकर दक्षिण भारत के लिए अजमेर से भेजा गया तब उसके साथ ही रायसिह और उसके सैनिको की भी नियुक्ति कर दी गई हो। नवम्बर ११, १६८१ ई० को यह सेना औरगाबाद पहुँची, और अगले दो-तीन महीनों मे शाही सेना के दलों ने मरहठो के साथ अनेक छोटे-मोटे युद्ध किए। उन्ही मे से किसी भी एक युद्ध मे रायसिह मारा गया होगा। गुरूजी०; औरग०, ४, पृ० २९१-२९३, अख०, और०, २५, पृ० २६२, २७०।

रायसिह के पाँच पुत्र थे, जिनमे से पहिला सामतसिह बाल्यकाल ही मे मर गया था, एव उसका दूसरा पुत्र सुलतानसिह रायसिह का उत्तराधिकारी बना, और उसका ही वश आगे चला। रायसिह के तीसरे पुत्र को सकतसिंह ने दत्तक ले लिया था। चौथा पुत्र महासिह अपने पिता के साथ ही युद्ध मे मारा गया। उसके एव पाँचवे पुत्र मोहनसिह के कोई सन्तान न थी।

सुलतानसिह और उसका पुत्र पदमसिह विशेष उल्लेखनीय नही है। गुरूजी० मे लिखा है कि बदनावर का परगना सन् १७०६ ई० (स० १७६३ वि०) मे पदमसिह के अधिकार से निकल गया, किन्तु यह ठीक नही। सभव है कि बदनावर परगने का कोई थोडा-सा भाग उस समय तक रायसिह के उत्तराधिकारियों के अधिकार मे रह गया हो। बदनावर का परगना अक्तूबर, १६८१ ई० से बहुत पहिले ही रायसिह के अधिकार से निकल चुका होगा, क्योकि

सन् १६८१ ई० में रामसिंह को मिलने से पहिले यही परगना दिलेर ख़ाँ के अधिकार में था। गुरूजी०; अख़० औरं०, २५, पृ० २२९।

धार राज्य के अन्तर्गत काछी बड़ोदा ठिकाना आज भी सुलतानसिंह के वंशजों के अधिकार में है।

(२) नाहरसिंह

नाहरसिंह रतनसिंह का तीसरा पुत्र था। देवल्या की सीसोदणी रानी मनरूप दे कुँअर का वह इकलौता बेटा था। ख्यातों और पोथियों में उसके जीवन का कोई विवरण नहीं मिलता है। 'रतन रासो' में नाहरसिंह के नाम का उल्लेख है, परन्तु उसका कोई हाल उसमें नहीं दिया है (रासो०, पृ० ७९, १०२, १०८)।

नाहरसिंह भी शाही मनसबदार था, और अपने ज्येष्ठ भाई के साथ ही सन् १६७९ ई० में वह भी दक्षिण में शाहज़ादे मुअज़्ज़म (शाह आलम) की सेना में नियुक्त था। अप्रेल ८, १६८० ई० को रामसिंह के साथ ही उसे भी शाही दरबार में अजमेर बुलवाया गया था। जय० अख़०, औरं०, २३ (१), पृ० २३२; २३ (३), पृ० १६२; २३ (४), पृ० १३०।

नाहरसिंह निस्संतान ही मरा।

(३) करण

करण, जिसे गुरूजी० तथा अन्य ख्यातों में करणसिंह भी कहा है, रतनसिंह का चौथा पुत्र था। रानी कछवाही शेखावति सुखरूप दे कुँअर पुरुषोत्तमसिंह टोडरमलोत की ने करण को जन्म दिया। उक्त

रानी के पॉच पुत्रों मे करण सबसे बडा था। 'रतन रासो' मे करण का नाम मिलता है, परन्तु उसका कोई विशेष उल्लेख वहॉ नही किया गया है (रासो०, पृ० ७९, १०२, १०८)। ख्यातो में भी करण का कोई विवरण नही निलता है।

अपने पिता की मृत्यु के बाद अन्य भाइयो की तरह करण भी शाही मनसबदार हो गया, और बहुत करके इसी मनसब की जागीर मे उसे सीतामऊ, लदूना एव आस-पास के गॉव मिले थे। इस प्रदेश में पुण्यार्थ दी हुई जमीन की करण की दी हुई कुछ सनदे प्राप्य है।

करण ने शाही सेना मे रह कर ऐसी वीरता और साहस का परिचय दिया कि सन् १६६४ ई० तक उसकी गणना साम्राज्य के वीर सेनानायको में होने लगी थी। एवं सितम्बर ३०, १६६४ ई० को जब आम्बेर के मिर्जा राजा जयसिह को दक्षिण जाने के लिए हुक्म मिला तब अपने ज्येष्ठ भाई रामसिह के साथ ही करण राठौड भी इसी सेना के साथ नियुक्त किया गया। पूना पहुँच कर जयसिह ने मरहठो के विभिन्न किलो का घेरा डाल कर आक्रमण करने का आयोजन किया, और मार्च २९, १६६५ ई० को दिलेर खॉ के सेनानायकत्व में एक सेना पुरन्धर किले का घेरा डालने को भेजी गई जिसमे रामसिह राठौड़ और करण राठौड भी थे। औरग०, ४, पृ० ७५, ८०-८१, ८३-८४; आ० ना०, पृ० ८९१।

जून, १६६५ ई० मे शिवाजी ने जयसिह के साथ सधि कर ली। तब जयसिंह ने बीजापुर की ओर ध्यान दिया और नवम्बर १९,१६६५ ई० को पुरन्दर से वह ससैन्य बीजापुर की ओर बढा। करण भी जयसिह के साथ था। बीजापुर से लौटते समय जनवरी २२, १६६६ ई० को लोहरी नामक स्थान पर बीजापुरी सेना के साथ शाही सेना का युद्ध हुआ जिसमे करण ने बडी वीरता दिखाई। इसके बाद

कोई चार माह तक जयसिंह बीजापुर राज्य की उत्तरी सीमा पर ही घूमता रहा और इन महीनो मे करण उसके साथ बराबर बना रहा। बीजापुरी सेना के साथ शाही सेना की मुठभेड यदा-कदा हो ही जाती थी; मई ४, १६६६ ई० के युद्ध मे करण बडी वीरता के साथ लड़ता हुआ जख्मी हुआ। औरग०, ४, पृ० ९४-९५, १२९, १३९, १४१-१४२; आ० ना०, पृ० ९८८, १००५, १०१८।

मार्च, १६६७ ई० मे शाहजादा मुअज्जम (शाह आलम) और जसवन्तसिंह दक्षिण के सूबेदार नियुक्त हुए, एव जयसिंह उत्तरी भारत लौटने के लिए चल पडा। शाही सेना तब भी दक्षिण ही मे रही, एवं करण राठौड़ को भी अपने सैनिको के साथ औरगाबाद मे ठहरना पड़ा। इस समय भी सीतामऊ और आस-पास के गॉव उसकी ही जागीर मे थे, अतएव सीतामऊ के पास स्थित डाबड़ी गॉव उसने गुरुजी को पुण्यार्थ दिया (गुरुजी० की चैत सुदी १०, स० १७२४ वि० एव आसोज सुदी ९, १७२४ वि० की सनदें)। इस समय करण अधिक समय तक दक्षिण मे न रहा, मार्च १५, १६६९ ई० को वह शाही दरबार मे दिल्ली था (गगा-गुरु के सम्बन्ध मे चैत्र वि० ८, १७२५ वि० को लिखा हुआ करण का पत्र)।

अगले छ. साल तक करण ने क्या किया, इसका कोई वृतान्त प्राप्य नही है। सन् १६७६ ई० के मार्च महीने मे जव दक्षिण के सूबेदार बहादुर खाँ ने बीजापुर राज्य के गृह-युद्ध मे हस्तक्षेप करना प्रारम्भ किया तब करण राठौड दक्षिण मे राव राजसिह राठौड के साथ नियुक्त था। मई मास के अन्तिम दिनो मे बहादुर खाँ ससैन्य शोलापुर से बीजापुर की ओर बढा, राव राजसिह राठौड के साथ ही करण राठौड़ भी बहादुर खॉ की सेना मे जा मिला। बीजापुर से कोई ३० मील उत्तर-पूर्व मे अलियाबाद और

इन्दी के बीच के मैदान मे बीजापुर का शासक बह्लोल खाँ बहादुर खाँ के सामने आ डटा। मुगल सेना के बाएँ पहलू की तरफ अन्य राजपूत सेनानायकों के साथ ही करण राठौड भी नियुक्त था। राव रार्जसिह राठौड बीमारी के कारण एक दिन पहिले ही मर चुका था, एव उसके सैनिकों के सचालन का भार भी करण को ही उठाना पडा। अन्त में जब लड़ाई छिड गई तब, भीमसेन के शब्दो मे, करण 'मैदान मे अपने जौहर दिखाता हुआ जख़्मी हुआ, और अपने कारनामे दुनिया मे छोड गया'। यो करण भी लडाई मे वीरतापूर्वक युद्ध करता हुआ घायल होकर सुदूर दक्षिण मे ही मर गया। औरंग०, ४, पृ० १६४-१६५; भीम०, १, प० १४१-१४३।

इस युद्ध की तारीख़ के बारे मे मतभेद है। भीमसेन ने कोई तारीख नही दी है। अन्य फारसी इतिहास-ग्रन्थों के आधार पर सर यदुनाथ सरकार ने इस युद्ध की तारीख़ जून १३, १६७६ ई० निश्चित की है। परन्तु जेधे की शकावली मे यह युद्ध ज्येष्ठ (उत्तर भारतीय पंचाग के अनुसार आषाढ) वि० अमावस्या (जून १, १६७६ ई०) के दिन होना लिखा है। करण की जो छत्री सीतामऊ में विद्यमान है उसके शिलालेख मे भी करण की मृत्यु आषाढ वि० अमावस्या, सं० १७३३ वि० ही दी है। 'इण्डियन एफिमेरीज' और 'खरे जत्री' के अनुसार इस अमावस्या के दिन जून १, १६७६ ई० थी। एव इस युद्ध की ठीक तारीख निश्चित करने के लिए अधिक खोज की आवश्यकता है। मा० आ०, पृ० १५१; करण की छत्री का लेख, शिवचरित्र-प्रदीप, पृ० २८, औरग०, ४, पृ० १६५।

करण की दाहक्रिया तो दक्षिण मे ही कर दी गई, परन्तु उसकी मृत्यु के समाचार के साथ ही साथ दूत उसकी पाग लेकर सीतामऊ पहुँचे। करण की स्त्रियाँ उस पाग के साथ सती हुई। उस स्थान पर

बाद में एक सुन्दर छत्री बनवाई गई, जो आज भी सीतामऊ के 'छार बाग' मे विद्यमान है।

करण के केवल एक ही पुत्री थी जिसका विवाह देवलिया के रावत प्रतापसिह के साथ हुआ (गुरूजी०, प्रतापगढ राजघराने के बड़वों की पोथियाँ)। करण के कोई पुत्र न था।

करण बहुत ही वीर, साहसी और प्रतापी था। यदि उसकी मृत्यु इतनी कम उम्र मे न हो जाती तो अपने छोटे सहोदर भाई छत्रसाल की तरह वह भी यश प्राप्त कर ऊँचा मनसब प्राप्त करता। अपने निजी पत्रों मे वह स्वय को 'महाराज' लिखता था। सन् १०७६ हि० (सन् १६६५-६ ई०) मे उसने अपनी निजी फारसी मोहर बनवाई थी, जिस पर उसने अपने पूज्य पिता का नाम 'रतन राठौड' खुदवाया था। उसके पत्रों और सनदों पर इसी मोहर की छाप लगी मिलती है।

(४) छत्रसाल

छत्रसाल रतनसिंह का पाँचवाँ पुत्र और करण का सहोदर छोटा भाई था। 'रतन रासो' मे उसके नाम का उल्लेख अवश्य किया गया है, परन्तु उस ग्रन्थ में छत्रसाल के जीवन का कुछ भी विवरण नही दिया है (रासो०, पृ० ७९, १०२, १०८)। छत्रसाल का ठीक-ठीक जन्म-संवत् ज्ञात नही है, परन्तु अनुमान यही होता है कि धरमत के युद्ध के समय उसकी वय तेरह-चौदह वर्ष से अधिक की न होगी।

अपने पिता की मृत्यु के बाद कुछ वर्षों तक छत्रसाल घर पर ही बना रहा। वह अपने सहोदर भाई करण के साथ ही रहता था और करण की अनुपस्थिति मे घर का काम सभालता था। इन

दिनो छत्रसाल का निवास-स्थान सीतामऊ शहर से दो मील दक्षिण मे स्थित लदूना कस्बा था। तब करण और छत्रसाल का सारा कारोबार सम्मिलित ही चलता था एव करण की प्रारम्भिक सनदो मे करण के साथ छत्रसाल का नाम भी लिखा मिलता है।

जून, १६६७ ई० मे छत्रसाल शाही दरबार मे दिल्ली जा पहुँचा और जून ५ को उसने दरबार में हाजिर होकर औरगजेब को एक मोहर और नौ रुपए भेट किए (जय० अख०, और०, १० (१), पृ० २३५)। बहुत करके इसी के बाद वह शाही मनसबदार बन कर शाही सेना मे सम्मिलित होगया। गुरूजी० के आधार पर रतन०, पृ० ५४ पर लिखा है कि छत्रसाल को पहिले लदूना, आदि कुल बारह गाँव मिले थे। सभवतः इनमे से कुछ गाँव पहिले करण के अधिकार मे भी रहे हों, और बाद मे वे करण की जागीर में से निकाल कर छत्रसाल की जागीर में कर दिए गए हो। किन्तु शाही मनसबदार बनने से पहिले ये कोई भी गाँव निजी जमीदारी के रूप मे छत्रसाल के अधिकार मे रहे हो यह सम्भव नही जान पडता है। जिन दिनो लदूना छत्रसाल के अधिकार मे था तब वह एक छोटा सा गाँव ही था। गाँव के बीच मे अपने राजघराने के निवास के लिए छत्रसाल ने मकान बनवाए थे, जिनका बाहरी दरवाजा आज भी लदूना कसबे के बीच मे विद्यमान है।

मनसबदार बनने के बाद इन प्रारम्भिक ८-१० वर्षों मे छत्रसाल कहाँ रहा और उसने क्या किया, इसका कोई भी हाल नही मिलता है। सन् १६७९ ई० मे वह अपने ज्येष्ठ भाई रामसिह के साथ दक्षिण मे शाहजादे मुअज़्जम की सेना के साथ नियुक्त था। अप्रेल ८, १६८० ई० को रामसिह के साथ ही छत्रसाल को भी औरंगजेब ने शाही दरबार मे अजमेर बुलवा भेजा और बहुत करके अन्य भाइयों

के साथ वह भी अक्तूबर ८, १६८० ई० को औरगजेब के दरबार मे उपस्थित हुआ। जय० अख़०, और०, २३ (१), पृ० २३२, २३ (३), पृ० १६२, २३ (४), पृ० १३०, २४ (१), पृ० ४८।

सन् १६८१ ई० मे एक बडी शाही सेना लेकर दक्षिण-विजय के लिए जब औरगजेब अजमेर से चला तब छत्रसाल भी उसके साथ था। दिसम्बर १८, १६८२ ई० को रामसिह के साथ ही छत्रसाल को भी मुगल खॉ की सेना मे नियुक्त किया गया था, किन्तु जनवरी १८, १६८३ ई० को ये सब भाई रुहेला खाँ की सेना मे नियुक्त किए गए। रुहेला खॉ सेना लेकर जब रणमस्त खॉ की सहायतार्थ कल्याण-भिवण्डी के लिए रवाना हुआ तब छत्रसाल भी उसके साथ गया। मार्च १८, १६८३ ई० के लगभग रुहेला खॉ की सेना की मरहठों के साथ मुठभेड हो गई। इस युद्ध में छत्रसाल ने भी भाग लिया और लडाई मे वह घायल हुआ। मार्च, १६८३ ई० मे छत्रसाल का मनसब पॉच सदी–दो सौ सवारो का था। जय० अख, और०, २६ (१), पृ० ३६७; २६ (२), पृ० १३६, १५६, ३९४, ३९९, और०, ४, पृ० ३००-३०१, ३०३; दयालदास०, २, पृ० २३३-२४१।

इस युद्ध के बाद अगले डेढ वर्ष तक छत्रसाल ने क्या किया उसका विवरण प्राप्त नही है।[1] सन् १६८५ ई० मे जब बीजापुर का घेरा

---

[1] **रतलाम०, पृ० ८ पर लिखा है कि "सन् १६८४ ई० में छत्रसाल ने एक सनद द्वारा रतलाम परगने में कुछ जागीर एक गोसाई को दी थी। इस सनद में छत्रसाल ने स्वयं को 'महाराजाधिराज' और 'श्री हुजूर' लिखा है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि इस समय या तो तत्कालीन राजाओ के सारे खिताब छत्रसाल को प्राप्त हो गए थे या कम से कम वह अपने लिए उन सबका प्रयोग करने लगा था।"**

यहाँ दिए गए विवरण से स्पष्ट है कि सनद द्वारा रतलाम परगने में कोई भी जागीर देना सन् १६८४ ई० में छत्रसाल के लिए सम्भव न था; उस समय

डालने वाली शाही सेना को दुर्भिक्ष का सामना करना पडा, और जब औरगजेब के आदेश को ठुकरा कर शाहजादे आजम ने बीजापुर का घेरा न उठाने का निश्चय किया, तब आजम की सहायता के लिए औरगजेब ने गाजीउद्दीन खाँ बहादुर को बहुत सा धान्य और रुपया लेकर भेजा। गाजीउद्दीन की सेना मे उसके साथ जाने वालों में छत्रसाल भी था और इसी अवसर पर अगस्त १६, १६८५ ई० को उसे हाथ की एक पहुँची इनाम मे मिली थी। औरग०, ४, पृ० ३७९-८१, जय० अख०, और०, २९, पृ० ९४।

अगले छ वर्षो की छत्रसाल की कार्यवाही अज्ञात है। सन् १६९१ ई० मे वह पन्हाला किले का क़िलेदार और फौजदार था। यह किला दिसम्बर, १६८९ ई० के लगभग मुगलो के अधिकार में आया था, और सभवत उसी समय छत्रसाल की नियुक्ति इस पद पर हुई होगी। सन् १६९० ई० से ही महाराष्ट्र मे मरहठो की शक्ति

छत्रसाल का भतीजा, शिवसिंह, रतलाम का शासक था। एवं उक्त सनद स्पष्टतया अविश्वसनीय है।

रतलाम के प्रथम राज्य के इन अन्तिम बीस वर्षों के इतिहास सम्बन्धी बहुत कुछ अज्ञान अन्धकार अब तक फैला हुआ है। आवश्यक खोज और अध्ययन तथा प्रामाणिक इतिहास के अभाव में इस काल सम्बन्धी अनेकानेक अनहोनी भ्रान्तियाँ फैलीं, बहुत अधिक वाद-विवाद हुआ एवं ऐतिहासिक घटनाओ का मन-चाहा क्रम निर्धारित किया गया।

ऐसी अनेकों सनदें देखने में आती है जो इन २५-३० वर्षो में लिखी गई बताई जाती है, परन्तु अनैतिहासिक घटना-क्रम या अनहोनी भ्रान्तियो के आधार पर तैयार की जाने के कारण, उनमें अनेकानेक ऐसी भूलें हो गई है कि उन सनदों का अविश्वसनीयपन स्पष्ट हो जाता है। इस समय की सनदो या पत्रो को विश्वसनीय मानने से पहिले उनकी पूरी-पूरी जाँच होना अत्यावश्यक है।

बढने लगी थी और सन् १६९१ ई० मे तो उनका उपद्रव भी अधि-काधिक बढता जा रहा था। अगस्त माह के पिछले हफ्तो मे मरहठों का एक दल पन्हाला तक जा पहुँचा और वहाँ के करोडी को उन्होने मार डाला। छत्रसाल राठौड पन्हाला मे विद्यमान था, किन्तु वह उनका कुछ भी न कर सका। सितम्बर १२ को यह विवरण औरगजेब ने सुना और वह चुप रहा। दो सप्ताह बाद सितम्बर २७, १६९१ ई० को औरगजेब ने आज्ञा दी कि छत्रसाल की जागीर की आमदनी का ब्यौरा उसे पेश किया जावे। जय० अख०, और०, ३५, पृ० २४, २९-३०, औरग, ५, पृ० २९, ३२।

औरगजेब ने छत्रसाल को पन्हाला मे ही उसी पद पर रहने दिया। मरहठो का उपद्रव अधिकाधिक बढता जा रहा था, किन्तु छत्रसाल ने उसकी ओर ध्यान न दिया और न किले की सुरक्षा के लिए किसी भी प्रकार का विशेष प्रबन्ध ही किया। अन्त मे परशुराम के सेनापतित्व मे मरहठो के एक दल ने अगस्त, १६९२ ई० के प्रारम्भ मे पन्हाला किले को आ घेरा। तब छत्रसाल से कुछ करते-धरते न बना। मरहठो ने किले पर अधिकार कर लिया। तत्कालीन दूत के शब्दों मे तब छत्रसाल और उसके साथियो ने जौहर किया; वे वीरतापूर्वक लडते हुए किले से निकले, छत्रसाल के प्राय सारे साथी और सैनिक युद्ध मे कट मरे; छत्रसाल भी बुरी तरह घायल होकर युद्ध-क्षेत्र मे गिर पड़ा। पहिले तो सब दूर ख़बर फैल गई कि छत्रसाल भी इस युद्ध मे मारा गया, किन्तु बाद मे ज्ञात हुआ कि वह घायल हो गया था, मरा नही। गुरूजी० के अनुसार इस युद्ध मे छत्रसाल को तीस घाव लगे थे। जय० अख०, और०, ३६, पृ० १२९, मा० आ०, पृ० ४३५, औरग०, ५, पृ० ३२-३।

मुगलो के अधिकार मे से पन्हाला के निकल जाने का विवरण

औरगजेब ने अगस्त २९, १६९२ ई० को सुना। पन्हाला इस की पराजय का सारा दोष छत्रसाल के सिर पड़ा। इस समय उसका मनसब डेढ़ हजारी जात–बारह सौ सवारो का था (जय० अख०, ओर०, ३६, पृ० १२९)। इस अवसर पर छत्रसाल का मनसब कितना घटाया गया इसका निश्चित विवरण नही मिलता है, परन्तु अनुमान यही होता है कि मनसब बहुत अधिक घटा दिया होगा। और अब पन्हाला का किला मुगलो के अधिकार मे रहा ही न था, एव उसको किलेदारी के पद से पदच्युत किए जाने का प्रश्न उठता ही न था ।

परन्तु छत्रसाल को अधिक काल तक बेकार न रहना पडा। अक्तूबर, १६९३ ई० मे वह पेनुकुण्डा का किलेदार और फौजदार था। किन्तु छत्रसाल के विरुद्ध कुछ न कुछ शिकायत बनी ही रहती थी, एवं कुछ माह बाद उसे पेनुकुण्डा की इस किलेदारी और फौजदारी से अलग कर दिया गया। सम्भवत. इसी सिलसिले मे औरगजेब ने जून १८, १६९४ ई० को छत्रसाल के मनसब का ब्यौरा जानना चाहा था। छत्रसाल का मनसब इस समय एक हजारो जात–चार सौ सवारो का था। जून २०, १६९४ ई० को यद्यपि छत्रसाल की जागीर वहाल करने का हुक्म हो गया था, परन्तु उसके मनसब का कुछ भी तय नही हो पाया। अन्त मे जुलाई २८, १६९४ ई० को औरगजेब ने छत्रसाल को पुन. पेनुकुण्डा की किलेदारी दे दी। औरगजेब का पहिले इरादा हुआ कि छत्रसाल का मनसब आठ सदी जात–आठ सौ सवारो का कर दे, किन्तु बाद मे उसका मनसब केवल सात सदी–जात आठ सौ सवारो का किया, जिसमे से पॉच सौ सवार दो-अस्पा थे। जय० अख०, औेर०, ३६, पृ० १२९; अख० औेर०, ३७, पृ० १५३; ३८, पृ० ५२६, ५३४, १३४।

परन्तु दुर्भाग्य ने छत्रसाल का साथ न छोडा, वह अधिक समय तक पेनुकुण्डा मे न रह सका। सन् १६९५ ई० के अप्रेल महीने के लगभग उसे पुन इस किलेदारी से अलग कर दिया गया। छत्रसाल पेनुकुण्डा से शाही दरबार मे लौट आया और जून ९ को इस्लामपुरी मे औरगजेब की सेवा मे उपस्थित होकर एक मोहर और नौ रुपये भेट किए। दूसरे दिन औरगजेब ने छत्रसाल के मनसब का ब्यौरा जानना चाहा। इन्ही दिनो हमीदुद्दीन खॉ को इस्लामपुरी से पॉच हजार सैनिको के साथ भेजा जा रहा था कि वह शाही सेना के लिए घी लावे। जून १२ के दिन छत्रसाल को भी उसके साथ भेजा गया। पेनुकुण्डा की किलेदारी छूट जाने पर छत्रसाल का मनसब घट कर तीन सदी जात–पॉच सौ सवार दो-अस्पा का रह गया था। हमीदुद्दीन के साथ भेजे जाने के कारण जून १४ को उसका मनसब बढा कर चार सदी जात–७५० सवार दो-अस्पा कर दिया गया। किन्तु औरगजेब ने छत्रसाल को अधिक समय तक हमीदुद्दीन के साथ रहने न दिया, अगस्त २३, १६९५ ई० को हुक्म दिया कि छत्रसाल के बजाय सौ सवार हमीदुद्दीन की सेना मे भेज कर छत्रसाल को वापस शाही दरबार मे इस्लामपुरी बुला लिया जावे। अख० और०, ३९, पृ० १५, १८, २४, २८, ७०।[२]

हमीदुद्दीन की सेना से लौट आने के कुछ समय बाद छत्रसाल

---

[२]इन सब अखबारो में अखबार-नवीसो ने भूल से छत्रसाल राठौड़ को छत्रसाल बुन्देला लिख दिया है। छत्रसाल बुन्देला १६७० ई० से लेकर १७०४ ई० तक कभी भी शाही सेवा में न रहा। सर यदुनाथ सरकार लिखते है कि "शाही दरबार के अखबार-नवीसो ने यद्यपि हर बार छत्रसाल राठौड़ के पिता का नाम रतनसिह राठौड दिया है, उसका नाम लिखते समय कहीं तो उसे छत्रसाल बुन्देला और कही छत्रसाल राठौड़ लिखा है।" ऐसी ही गलती के फलस्वरूप

की नियुक्ति खास चौकी के दारोगा लुत्फुल्ला खॉ की सेना मे की गई। कोई साल भर तक इस प्रकार रहने के बाद फरवरी, १६९७ ई० के लगभग छत्रसाल सगर–नसरताबाद का किलेदार और फौजदार नियुक्त किया गया। यह स्थान बीजापुर से कोई ७२ मील पूर्व मे बीजापुर एव हैदराबाद के मध्य मे स्थित बेरड राज्य की राजधानी था। मा० आ०, पृ० ३८४, औरग०, ५, पृ० २१६-२१८, २२०। आगामी तीन वर्षो तक छत्रसाल इसी स्थान पर बना रहा, और कर्नाटक के तत्कालीन फौजदार, शेरदिल खॉ की पूरी-पूरी सहायता करता रहा। मरहठो के दलो का सामना करने मे छत्रसाल ने शेर-दिल ख़ॉ को भरसक सहयोग दिया। मार्च, १७०० ई० मे शेरदिल ख़ॉ ने छत्रसाल के इस सराहनीय सहयोग की पूरी-पूरी रिपोर्ट औरग-जेब की सेवा मे भेज दी और प्रार्थना की कि पन्हाला की पराजय के समय छत्रसाल के मनसब मे जो कमी की गई थी वह रद्द कर दी जावे। यह रिपोर्ट औरगजेब के पास अप्रेल ८, १७०० ई० को पहुँची। इसे पढ कर वह सन्तुष्ट हुआ। इस समय छत्रसाल का मनसब एक हजारी जात–७५० सवारो का था, औरगजेब ने उसे बढा कर डेढ हजारी जात–८५० सवारों का कर दिया। इन दिनो औरगजेब सतारा के किले का घेरा डाले वही डटा हुआ था। अप्रेल २१, १७०० ई० को सतारा के किले पर मुगलो का अधिकार हो गया और उसी दिन औरगजेब ने छत्रसाल को सगर से बदल कर सतारा का किलेदार नियुक्त किया। अख० और०, ४४, प० २१३ अ, मा० आ०, पृ० ४२४, औरग०, ५, पृ० १६६।

मा० आ० में (पृ० ४२५) भी छत्रसाल राठौड़ के स्थान पर छत्रसाल बुन्देला लिखा गया, और वहाँ से यह ग़लती मा० उ०, २, पृ० ५१२, एवं इर्विन कृत 'लेटर मुग़ल्ज़', २, पृ० २२६ पर दुहराई गई। औरग०, ५, पृ० ३६०-१।

अब छत्रसाल और उसके घराने का भाग्य-सितारा ऊँचा चढने लगा। पूरे साढे सात वर्षों के निरन्तर परिश्रम के बाद अब वह पन्हाला की पराजय के समय के मनसब को पुन प्राप्त कर पाया था। उसके बडे दो पुत्र हठीसिह और केसरीसिह भी शाही मनसबदार बन गए थे और मीर आतिश तरबियत खाँ के साथ शाही तोपखाने पर थे। तरबियत खाँ ने उन दोनो के काम से सन्तुष्ट होकर उनके मनसब मे भी वृद्धि के लिए प्रार्थना की। औरगजेब ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। हठीसिह का मनसब दो सदी—१५० सवारो का था, उसे बढा कर तीन सदी—२०० सवारो का कर दिया। केसरीसिह के ढाई सदी—५० सवारो के मनसब मे आधी सदी—५० सवारो की वृद्धि की गई। अख० और०, ४४, प० ३४२ अ।

सन् १७०१ ई० के प्रारम्भ मे औरगजेब ने पन्हाला के किले को पुन जीतने के लिए प्रयत्न प्रारम्भ किए और वह स्वय शाही सेना के साथ मार्च ९, १७०१ ई० को पन्हाला के सामने जा डटा और उस किले का घेरा डाला। इस घेरे के समय शाही सेना के साथ छत्रसाल भी पन्हाला आया था या नही, इस बारे मे निश्चित रूपेण कुछ भी ज्ञात नही है। ख्यातो मे छत्रसाल का वहाँ होने का उल्लेख मिलता है, परन्तु यह सम्भव नही जान पड़ता है। सतारा का किला कुछ ही महीनो पहिले जीता गया था, और वहाँ का शासन-प्रबन्ध और सुरक्षा का ठीक-ठीक आयोजन करना अत्यावश्यक था, अतएव छत्रसाल का तब सतारा ही ठहरना अधिक आवश्यक और उचित था। औरग०, ५, पृ० १७२-३।

छत्रसाल स्वय नही भी आया हो, किन्तु तरबियत खाँ के सेनापतित्वमे शाही तोपखाने के साथ छत्रसाल के दोनो पुत्र, हठीसिह और

केसरीसिह, पन्हाला आए, और पन्हाला पर गोलन्दाजी करने और वहाँ के युद्ध मे दोनो भाइयो ने पूरा-पूरा भाग लिया। अप्रेल ३०, १७०१ को गोलन्दाजी करते समय पन्हाला पर से किसी युरोपीय गोलन्दाज का निशाना हठीसिह के लगा और वह मारा गया (अख० औरं०, ४५, पृ० ५७ अ)। मई २८, १७०१ ई० को पन्हाला पर मुगलो का अधिकार हो गया, और हठीसिह के मारे जाने की घटना का विचार कर इस विजय की खुशी के अवसर पर मई ३०, १७०१ ई० के दिन औरगजेब ने हठीसिह के ज्येष्ठ पुत्र, वैरीसाल को नया मनसब देकर उसे तीन सदी जात–पचास सवारो का मनसबदार नियुक्त किया। हठीसिह के छोटे भाई केसरीसिह के मनसब मे भी वृद्धि की गई; तीन सदी जात–१५० सवारो का मनसब बढ कर अब चार सदी जात–२०० सवारो का हो गया। अख० औरं०, ४५, पृ० ७९ अ, ८१ अ; औरंग०, ५, पृ० १७६-१७७। छत्रसाल का ज्येष्ठ पुत्र मारा गया था, परन्तु इस अवसर पर उसके मनसब में कोई भी वृद्धि नही की गई, अगस्त, १७०१ ई० मे भी उसका मनसब वही डेढ हज़ारी जात–८५० सवारो का था।

पन्हाला के किले पर अधिकार होने के दूसरे दिन ही औरगजेब वहाँ से चल पडा, और वैरीसाल तथा केसरीसिह राठौड भी उसी के साथ पन्हाला से रवाना हो गए। जुलाई के अन्तिम सप्ताह के लगभग छत्रसाल राठौड़ और उसके पौत्र वैरीसाल की नियुक्ति मामूर ख़ॉ के साथ की गई थी, परन्तु अगस्त २३, १७०१ ई० को उन दोनो को मामूर ख़ॉ की सेना से बदल कर हुसैन कलीच ख़ॉ के साथ नियुक्त किया। अख० औरं०, ४५, पृ० १३० अ।

गुरूजी० मे लिखा है कि हठीसिंह के मारे जाने के बाद उसके इस महान त्याग के पारितोषिक के रूप मे छत्रसाल को रतलाम

परगना मिला, जिससे रतलाम के वर्तमान द्वितीय राज्य की स्थापना हुई। ऊपर दिए गए उल्लेखो से स्पष्ट है कि रतलाम का परगना अगस्त २३, १७०१ ई० तक तो छत्रसाल को नही मिला था। मई ३, १७०७ ई० मे छत्रसाल का मनसब दो हजारी जात–एक हजार सवारो का था (जय० अख०, आजम०, पृ० १२५)। छत्रसाल के मनसब मे यह वृद्धि कब हुई थी यह निश्चित रूपेण नही कह सकते। परन्तु ख्यातो के कथन एव अन्य सारी परिस्थिति को देखते हुए यही अनुमान होता है कि सन् १७०२ या १७०३ ई० के लगभग ही छत्रसाल के मनसब मे यह वृद्धि हुई होगी और उसी अवसर पर उसके इस नए मनसब की जागीर के सिलसिले मे रतलाम का यह परगना उसे प्राप्त हुआ होगा। जिस शाही सनद द्वारा छत्रसाल को रतलाम का यह परगना प्राप्त हुआ था, वह वर्तमान रतलाम राजघराने के अधिकार मे नही है। कहा जाता है कि वैरीसाल के वशजों के ही अधिकार मे वह शाही सनद रही। उक्त सनद के अभाव मे वर्तमान द्वितीय रतलाम राज्य की स्थापना का ठीक-ठीक सन्-सवत् निश्चित करना सम्भव नही।

सन् १७०१ ई० के बाद आगामी छ. वर्षो मे छत्रसाल कहाँ रहा और उसने क्या किया, इसका कही भी विवरण नही मिलता है। औरगजेब की मृत्यु के बाद जब अहमदनगर से आजम शाह सारी शाही सेना लेकर उत्तरी भारत की ओर लौटा तब छत्रसाल भी उसके साथ ही उत्तरी भारत को रवाना हुआ। मालवा के अन्तर्गत सिरोज शहर पहुँचने पर मई ३, १७०७ ई० को आजम ने छत्रसाल को भी जुल्फिकार खाँ के साथ आगे भेजा। जुल्फिकार खाँ के साथ रवाना होने से पहिले छत्रसाल का मनसब दो हजारी जात–दो हजार सवारों का कर दिया गया (जय० अख०,

आजम०, पृ० १२५)। किन्तु इसके कुछ ही सप्ताह बाद जाजव का युद्ध हुआ जिसमे आजम शाह मारा गया और यों उसकी दी हुई मनसव मे इस वृद्धि का पालन नही हुआ, छत्रसाल का मनसब दो हजारी जात–एक हजार सवार का ही बना रहा।

सन् १७०८ ई० मे बहादुर शाह ने जोधपुर पर चढाई की, तब छत्रसाल बहादुर शाह के साथ शाही सेना मे था। जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह ने बहादुर शाह की अधीनता स्वीकार कर ली और वह शाही दरबार मे उपस्थित हुआ, तब मार्च १०, १७०८ ई० को अजीतसिह ने छत्रसाल को चाँदी के साज वाला एक घोडा दिया (ख्यात०, २, पृ० १२३)। मारवाड से अजमेर होता हुआ बहादुर शाह दक्षिण मे अपने छोटे भाई कामबख्श के विरुद्ध सेना लेकर चला। बहादुर शाह के साथ छत्रसाल भी था। इस चढाई से लौटते समय फरवरी १२, १७०९ ई० को बहादुर शाह ने छत्रसाल के मनसब मे वृद्धि की। उसका मनसब दो हजारी जात–एक हजार सवारो से बढ कर ढाई हजारी जात–डेढ हजार सवारो का हो गया (जय० अख०, बहादुर०, ३, पृ० १०)। एक सप्ताह बाद फरवरी १९ को बहादुर शाह ने छत्रसाल को खिलअत और पुरस्कार दिए (जय० अख०, बहादुर०, ३, पृ० १०, १४)

छत्रसाल के मनसब मे यह अन्तिम वृद्धि थी। इसके बाद अखबारो, आदि मे छत्रसाल का कोई भी उल्लेख नही मिलता है। छत्रसाल की मृत्यु कब हुई इस बात पर बहुत मतभेद पाया जाता है। गुरूजी० एव अन्य ख्यातों के अनुसार छत्रसाल की मृत्यु सन् १७०५ ई० (१७६२ वि०) मे हुई थी। रतलाम० (पृ० ८) के अनुसार छत्रसाल की मृत्यु १७०९ ई० मे हुई। ऊपर दिए विवरण के अनुसार सन् १७०९ ई० के प्रारम्भिक महीनो मे तो छत्रसाल

शाही सेवा मे विद्यमान था। ख्यातो मे लिखा है कि छत्रसाल ने अपने जीवन के अन्तिम वर्ष धर्म-ध्यान और ईश्वर की आराधना मे बिताए थे। यदि इस कथन को ठीक माना जावे तो अनुमान यह होता है कि दक्षिण की इस चढाई से लौटने के बाद छत्रसाल ने सासारिक झझटो को छोड़ दिया और अपने राज्य का कार्य अपने पौत्र-पुत्रो को सौप कर कुछ वर्ष शान्तिपूर्वक बिताए। सन् १७१२ ई० के लगभग छत्रसाल की मृत्यु हुई होगी। सन् १७१३ ई० मे तो उसके पुत्रो का उल्लेख रतलाम के जमीदार के रूप मे होने लगा था (जय० अख०, फर्रुख०, २, पृ० २५)।

छत्रसाल वीर और साहसी था। साधारण परिस्थिति से जीवन प्रारम्भ कर वह अन्त मे ढाई हजारी जात–दो हजार सवारो का मनसबदार बना। जीवन मे कई बार उसे विफलता का सामना करना पडा। पन्हाला की पराजय ने उसकी उन्नति मे बहुत गहरा धक्का पहुँचाया था। उसने रतलाम के वर्तमान द्वितीय राज्य की स्थापना की। यो रतनसिह राठौड़ के पुत्रो मे रामसिह के बाद छत्रसाल को ही सबसे अधिक सफलता और ख्याति प्राप्त हुई।

छत्रसाल के वशजो को भी आगे चल कर पर्याप्त सफलता मिली; आज भी उसके वशज दूर-दूर तक फैले हुए है। जयपुर राज्य के अन्तर्गत एक जागीर, इन्दौर राज्य के अन्तर्गत ठिकाना बडवास और सीतामऊ राज्य के अन्तर्गत ठिकाना पतलासी अब भी छत्रसाल के पौत्र वैरीसाल के वशजों के अधिकार मे है। छत्रसाल के दूसरे पुत्र केसरीसिह के बडे लडके मानसिह के उत्तराधिकारी रतलाम के वर्तमान द्वितीय राज्य पर शासन कर रहे है। छत्रसाल के तीसरे लडके प्रतापसिह के कोई पुत्र न था, एव उसने केसरीसिह के दूसरे पुत्र जयसिंह

को दत्तक लिया जिसके उत्तराधिकारी वर्तमान सैलाना राज्य के शासक है।

(५) अखेराज

वह रतनसिह का छठा पुत्र था। वह करण और छत्रसाल का सहोदर भाई था। 'रतन रासो' मे उसका नाम मिलता है, परन्तु उसका कोई विवरण नही दिया गया है (रासो०, पृ० ७९, १०२, १०८)।

अपने अन्य भाइयो के समान वह भी शाही मनसबदार था। सम्भवत इसी मनसब की जागीर मे उसे डग-पडावा का परगना मिला था। गुरूजी० के आधार पर रतन०, पृ० ५४ और ७६ पर उसे यह परगना सन् १६५६-५७ ई० (स० १७१३ वि०) मे मिलने का उल्लेख किया गया है जो सम्भव नही था, सन् १६५८ ई० मे रतनसिह की मृत्यु के बाद ही उसे यह परगना मिला होगा। गुरूजी० के अनुसार यह परगना सन् १६६४-५ ई० (स० १७२१ वि०) मे उसके अधिकार से निकल गया। सभवत इसके बाद ही अखेराज को कोठडी-पडावा सरकार के अन्तर्गत डग-दुधालिया का परगना मिला होगा, जो सन् १६७९ ई० मे भी अखेराज के ही अधिकार में था (आईन०, २, पृ० २०९, गुरुजी के सग्रह मे रतन-पुरा गॉव की सनद—अप्रेल १४, १६७९ ई०=वैशाख सु० १४, स० १७३६ वि०)। अखेराज का ठीक २ मनसब क्या था? और भी कौन-कौन से परगने या गॉव उसके अधिकार मे रहे तथा उनमे कब तथा क्या परिवर्तन हुए, ये बाते निश्चित रूपेण ज्ञात नही है।

अपने अन्य भाइयो की तरह सन् १६७९ ई० मे अखेराज भी

अपने ज्येष्ठ भाई रामसिह के साथ दक्षिण मे शाहजादे मुअज्जम (शाह आलम) की सेना मे नियुक्त था। अप्रेल ८, १६८० ई० को रामसिह के साथ ही अखेराज को भी औरगजेब ने शाही दरबार मे अजमेर बुलवाया। जय० अख०, और०, २३ (१), पृ० २३२; २३ (३), पृ० १६२, २३ (४), पृ० १३०।

सन् १६८२ ई० मे अखेराज दक्षिण के सूबेदार खान जहाँ की सेना मे नियुक्त था। उसी साल के पिछले महीनो मे वह अपने छोटे भाई किशनसिंह को साथ लेकर खान जहाँ की सेना से निकल भागा। उन दिनो दुर्जनसिह हाड़ा मालवा मे बूँदी के आस-पास उपद्रव मचा रहा था, ये दोनो भाई उससे जा मिले । मालवा के सूबेदार खान जमान ने पत्र लिखकर इन दोनो भाइयो को समझाने की पूरा २ प्रयत्न किया, परन्तु उसे कोई सफलता न मिली। जय० अख०, और०, २६ (२), पृ० १६ ।

सन् १६८५ ई० के प्रारम्भिक महीनो मे अखेराज और किशन-सिह का उपद्रव फिर बढा। वे दुर्जनसिह का साथ दे रहे थे, और अब तो वे मालवा सूबा के अन्तर्गत रामपुरा राज्य से गाय-बैल आदि पशुओ को घेर-घेर कर उन्हे दुजनसाल के पास पहुँचाने लगे। राम-पुरा के गोपालसिह चन्द्रावत ने उनको रोकने के लिए सैनिक भेजे, जिनके साथ इन दोनो भाइयों और उनके सैनिको की मुठभेड हो गई। लडाई छिड गई, जिसमे किशनसिंह और उसके कुछ सैनिक मारे गए; अखेराज एव उसके साथी भाग निकले। यह घटना मार्च, १६८५ ई० के लगभग हुई । कुछ माह बाद शाही दरबार से मालवा के तत्कालीन सूबेदार मुगल खाँ और बूँदी के राव अनिरुद्ध-सिह के नाम हुक्म पहुँचा कि वे इन विद्रोहियो का पीछा कर उन्हे दबा दे। जय० अख०, और०, २८ (२) पृ० २४१ ।

सन् १६८६ ई० के अन्तिम महीनो मे अखेराज रतलाम और बदनावर के आसपास ही घूमता फिर रहा था। उसी समय शाहजादा अकबर को समुद्र-मार्ग से फारस रवाना कर दक्षिण से मेवाड-मारवाड की ओर जाता हुआ दुर्गादास राठौड मालवा मे होकर गुजरा। जब वह बदनावर और रतलाम पहुँचा, तब अखेराज उससे मिला और अखेराज ने तीन-चार दिन तक दुर्गादास राठौड का खूब आदर-सत्कार भी किया (ईश्वर०, प० ११९ अ)। रतलाम से रवाना होते समय दुर्गादास राठौड ने अखेराज को भो अपने साथ ले लिया। राह मे शाही प्रदेश मे लूट-मार करते हुए अन्त मे अप्रेल २२, १६८७ ई० को उन्होने मालपुरा लूटा, जिसमे अखेराज ने भी साथ दिया। ख्यात०, २, पृ० ८०-१, राजरूपक, पृ० ३०४; औरंग०,५,२७२, जोधपुर०,२,पृ०५०७।

इस समय कोई डेढ-दो साल तक अखेराज दुर्गादास के साथ जोधपुर की राठौड सेना मे ही बना रहा। अक्तूबर २४, १६८७ ई० को सेहरगढ(शेरगढ ?) के लिए राठौड सुजानसिह के साथ होने वाले युद्ध मे अखेराज ने भी भाग लिया एव उसके कई साथी काम आए (ख्यात०, २, पृ० ८१-२)। अब जोधपुर राज्य मे नियुक्त मुसलमान अफसरों एव आस-पास के अन्य सेनानायको के साथ राठौड सैनिको की यत्र-तत्र मुठभेड होने लगी थी, जिनमे अखेराज भी बराबर भाग ले रहा था। मार्च ४, १६८८ ई० को जोधपुर शहर के कायमखानियो के साथ युद्ध हुआ जिसमे अखेराज के एक तीर लगा, जिससे वह घायल हो गया (ख्यात०, २, पृ० ८३-८४)। मदसौर और उज्जैन के फौजदारो के साथ अप्रेल ४, १६८८ ई० को युद्ध हुआ, और एक सप्ताह बाद अप्रेल ११, को रामसर नामक स्थान पर शाही सेना की राठौडों के साथ दूसरी मुठभेड़ हुई। अखेराज इन दोनो युद्धो मे शाही सेना के विरुद्ध

लडा। ख्यात०, २, पृ० ८२-३, जोधपुर०, २, पृ० ५०९। इधर अखेराज और चोडावतो मे आपसी बैर हो गया था, चारण करणदास ने बीच मे पडकर दोनो मे मेल कराया। यह घटना मार्च २६, १६८८ ई० को हुई (ख्यात०, २, पृ० ८५)।

इसके बाद के अखेराज के जीवन का कोई विवरण प्राप्त नही है। ऐसा अनुमान होता है कि जोधपुर की इस राठौड सेना के साथ कुछ समय और बिता कर अखेराज पुनः मालवा की ओर लौट आया था। क्योंकि गुरूजी० मे लिखा है कि अन्त मे अखेराज कुशलगढ ठिकाने के अन्तर्गत रामझर सरवा नामक स्थान पर युद्ध करता हुआ मारा गया। वही उसकी दाह-त्रिया की गई और उस दाह-स्थान पर आज भी उसका चौतरा स्मारक के रूप मे विद्यमान है।

अखेराज के अनेक पुत्र थे। जावरा राज्य के अन्तर्गत आम्बा एव सीतामऊ राज्य के अन्तर्गत डाबडी ठिकाने आज भी अखेराज के वशजो के अधिकार मे है।

(६) पृथ्वीराज

पृथ्वीराज रतनसिह का सातवाँ पुत्र था। वह छत्रसाल का सहोदर भाई था। ख्यातो और पोथियो मे पृथ्वीराज के जीवन का कुछ भी विवरण नही मिलता है। 'रतन रासो' मे उसका नाम कही भी नही लिखा मिलता है।

पृथ्वीराज भी शाही सेना मे मनसबदार था, और प्राय उसकी नियुक्ति भी उसके ज्येष्ठ भाई रामसिह के साथ ही होती रही। सन् १६७९ ई० मे वह दक्षिण मे शाहजादे शाह आलम की सेना मे नियुक्त था। अप्रेल ८, १६८० ई० को रामसिह के साथ ही उसे भी शाही दरबार मे अजमेर बुलवाया गया था। जय० अख०, और०, २३

(१), पृ० २३२, २३ (३), पृ० १६२, २३ (४), पृ० १३०।
पृथ्वीराज के कोई पुत्र न था।

(७) जेतसिंह

जेतसिह रतनसिह का आठवाँ पुत्र था। वह भी छत्रसाल का सहोदर भाई था। 'रतन रासो' मे उसका नाम मिलता है, परन्तु उसका विशेष हाल वहाँ नही दिया है (रासो०, पृ० ७९, १०२, १०८)। गुरूजी० मे लिखा है कि उसे वर्तमान सीतामऊ राज्य के अन्तर्गत स्थित भगोर एव उसके आस-पास के गॉव जागीर मे मिले थे, इसके अतिरिक्त उसका कोई भी विवरण ख्यातो और पोथियो मे नही मिलता है।

अपने अन्य भाइयो की ही तरह जेतसिह भी शाही सेना मे मनसबदार था। सन् १६८३ ई० मे मृत्यु के समय उसका यह मनसब बढते-बढते छ. सदी जात–५० सवार का हो गया था, जय० अख०, और०, २६ (२), पृ० ४१७। इस मनसब की जागीर मे उसे भगोर और आस-पास के गॉव मिले थे या नही यह कहना कठिन है, परन्तु सीतामऊ शहर के पास ही एक समाधि पर के शिला-लेख से ज्ञात होता है कि मई २३, १६७७ ई० को सीतामऊ जेतसिह की जागीर मे था (मोरी बावडी के पास की समाधि का शिला-लेख)। सभवत सन् १६७६ ई० मे करण की मृत्यु के बाद सीतामऊ के साथ ही आस-पास के गॉव भी जेतसिह को जागीर मे मिले होगे।

जेतसिह की भी नियुक्ति उसके ज्येष्ठ भाई रामसिह के साथ ही हुआ करती थी। सन् १६७९ ई० मे जेतसिह रामसिह के साथ दक्षिण मे शाहजादा शाह आलम की सेना मे नियुक्त था। पुन॰ अप्रेल ८, १६८० ई० को रामसिह के साथ ही उसे भी शाही दरबार मे अजमेर

बुलवाया गया था। जय० अख०, और०, २३ (१), पृ० २३२, २३ (३), पृ० १६२, २३ (४), पृ० १३०।

सन् १६८१ ई० मे शाही सेना लेकर दक्षिण-विजय के लिए जब औरगजेब अजमेर से चला तब रामसिह और उसके कई भाई, जिनम जेतसिह भी था, उसके साथ थे। दिसम्बर १८, १६८२ ई० को रामसिह के साथ जेतसिह भी मुगल खॉ की सेना मे नियुक्त किया गया, किन्तु अपने अन्य भाइयो के समान जेतसिह भी जनवरी १८, १६८३ ई० को वहाँ से बदल कर रुहेला खॉ की सेना मे नियुवत किया गया। नासिक से सेना लेकर रणमस्त खॉ की मदद के लिए जब रुहेला खॉ कल्याण-भिवण्डी पहुँचा, तब जेतसिह भी उसके साथ था। मार्च १८ के लगभग हम्बीर राव के नेतृत्व मे मरहठो की एक बड़ी सेना ने कल्याण-भिवण्डी के आस-पास ही जब शाही सेना के चन्दावल पर हमला किया तब पदमसिह, आदि के साथ उनका सामना करनेवालों मे जेतसिह भी था। इस युद्ध मे वीरतापूर्वक लडता हुआ वह काम आया। इस प्रकार उसके खेत रहने का विवरण अप्रेल ५, १६८३ ई० को औरगजेब के पास औरगाबाद पहुँचा। मृत्यु के समय जेतसिह का मनसब छ सदी जात–५० सवार का था। जय० अख०, और०, २६ (१), पृ० ३६७, २६ (२), पृ० १३६, १५६, ३९४-५, ४०५-७, ४१७।

जेतसिह के कोई पुत्र न था, एव उसका वश आगे नही चला।

(८) किशनसिंह

वह रतनसिंह का नवॉ पुत्र था। रतनसिह की देवडी रानी रैण-सुख दे चॉदा पृथ्वीराजोत की के चार पुत्र हुए जिनमे किशनसिह सबसे बड़ा था। ख्यातों और पोथियों मे किशनसिह के जीवन का कोई भी विवरण नही मिलता है। 'रतन रासो' मे किशनसिह का नाम अवश्य

दिया गया है, परन्तु उसका कुछ भी हाल वहाँ नही मिलता (रासो०, पृ०, ७९, १०२, १०८)।

अपने अन्य भाइयो की तरह किशनसिह भी शाही सेना मे मनसबदार था। उसका मनसब कितना था, और मनसब की जागीर मे उसे कौन से गाँव मिले थे, इसका कोई भी उल्लेख कही नही मिलता है। शाही सेना मे उसकी नियुक्ति प्राय उसके ज्येष्ठ भाई रामसिह के साथ ही की जाती थी। सन् १६७९ ई० मे किशनसिह रामसिह के साथ ही दक्षिण मे शाहजादे मुअज्जम (शाह आलम) की सेना मे नियुक्त था। रामसिह के साथ किशनसिह को भी अप्रेल ८, १६८० ई० को शाही दरबार मे अजमेर बुलवाया गया था। जय० अख०, और०, २३ (१), पृ० २३२, २३ (३), पृ० १६२; २३ (४), पृ० १३०।

सन् १६८२ ई० मे वह दक्षिण के सूबेदार खान जहाँ की सेना मे नियुक्त था, परन्तु उसी साल के पिछले महीनो मे अपने भाई अखेराज के साथ ही वह भी खान जहाँ की फौज से निकल भागा और बूँदी राज्य मे जाकर वहाँ के विद्रोही दुर्जनसिह हाडा से जा मिला। उस समय खान जमान मालवा का सूबेदार था, उसने किशनसिह को एक पत्र लिखा और उसे लूट-खसोट न करने और विद्रोहियो का साथ न देने के लिए आग्रह किया, परन्तु किशनसिह ने दुर्जनसिह हाडा का साथ न छोडा। (जय० अख०, और०, २६ (२), पृ० (१६)। १६८५ ई० के प्रारम्भिक महीनो मे किशनसिह का उपद्रव बहुत बढा। रामपुरा राज्य मे से गाय-बैल आदि पशुओं को घेर-घार कर उन्हे दुर्जनसिह के पास वह ले जाने लगा, तब तो रामपुरा से गोपालसिह चन्द्रावत ने उसको रोकने के लिए सैनिक भेजे। अखेराज, किशनसिह एव उनके साथियो ने रामपुरा के इन सैनिको का सामना किया। किशनसिह युद्ध करता हुआ मारा गया। मार्च, १६८५ ई० के लगभग इस प्रकार किशनसिह

की मृत्यु हुई। जय० अख०, और०, २८ (२), पृ० २४१।

किशनसिह के कोई पुत्र न था, एव उसका वश आगे नहीं चला।

(६) सूरसिंह

सूरसिह रतनसिह का दसवॉ पुत्र था। किशनसिह का वह सहोदर भाई था। ख्यातो और पोथियो मे सूरसिह के जीवन का कुछ भी हाल नही मिलता है। 'रतन रासो' मे उसके नाम का उल्लेख भी कही नही है।

अखबारो मे जो उल्लेख मिलते है, उनसे ज्ञात होता है कि अन्य भाइयो के समान सूरसिह भी शाही सेना मे मनसबदार था, और प्राय अपने ज्येष्ठ भाई रामसिह के साथ ही नियुक्त किया जाता था। सन् १६६५ ई० मे शिवाजी के विरुद्ध चढाई के समय भी सूरसिह शाही सेना के साथ दक्षिण गया था और वहॉ युद्धो मे उसने बडी वीरता दिखाई थी (आ० ना०, पृ० ८९१, १००५)। पुन सन् १६७९ ई० मे भी वह रामसिह के साथ दक्षिण मे शाहजादे शाह आलम की सेना मे नियुक्त था। अप्रेल ८, १६८० ई० को रामसिह के साथ ही उसे भी शाही, दरबार मे अजमेर बुलवाया गया था। जय० अख०, और०, २३ (१) पृ० २३२, २३ (३), पृ० १६२, २३ (४) पृ० १३०। सूरसिह का मनसब क्या था और उसकी जागीर कहॉ थी, आदि बातो का कोई भी विवरण नही मिलता है।

सूरसिह का वश भी आगे न चला।

(१०) धीरतसिंह

धीरतसिह रतनसिह का इग्यारहवॉ पुत्र था। रतनसिह की देवडी रानी रैणसुख दे चॉदा पृथ्वीराजोत की का वह तीसरा पुत्र था। ख्यातों

और पोथियो मे उसके जीवन का कुछ भी हाल नही मिलता है। 'रतन रासो' मे तो उसके नाम का भी उल्लेख नही किया गया है।

अखबारो के उल्लेखो से ज्ञात होता है कि अन्य भाइयो के समान धीरतसिह भी शाही सेना मे मनसबदार था और प्राय वह अपने ज्येष्ठ भाई रामसिह के साथ ही रहता था। सन् १६७९ ई० मे रामसिह के साथ वह भी दक्षिण मे शाहजादा शाह आलम की सेना मे नियुक्त था। अप्रेल ८, १६८० ई० को रामसिह के साथ उसे भी शाही दरबार मे अजमेर बुलवा भेजा था। जय० अख़०, और०, २३ (१), पृ० २३२, २३ (३), पृ० १६२, २३ (४), पृ० १३०।

धीरतसिंह के कोई पुत्र न था।

(११) सकतसिंह

सकतसिह रतनसिह का बारहवाँ पुत्र था। वह धीरतसिह का सहोदर भाई था। गुरूजी० के अनुसार उसका जन्म सन् १६४८-४९ ई० (स० १७०५ वि०) मे हुआ था। ख्यातो और पोथियो मे उसके जीवन का विशेष हाल नही मिलता है। 'रतन रासो' मे उसके नाम का उल्लेख अवश्य है, किन्तु उसके बारे मे कोई विवरण नही दिया गया है (रासो०, पृ० ७९, १०२, १०३)।

अपने अन्य भाइयो की तरह सकतसिह भी शाही सेना मे मनसबदार था और सन् १६७९ ई०मे रामसिह के साथ ही दक्षिण में शाहजादा शाह आलम की सेना मे नियुक्त था। अप्रेल ८, १६८० ई० को रामसिह के साथ औरगजेब ने सकतसिह को भी शाही दरबार मे अजमेर बुलवाया था। अपने अन्य आठ भाइयो के साथ अक्तूबर १०, १६८० ई० को वह शाही दरबार मे उपस्थित हुआ और औरगजेब की सेवा मे पन्द्रह रुपए नजर किए। जय० अख०, और०, २३(१), पृ० २३२,

२३ (३), पृ० १६२, २३ (४), पृ० १३०, २४ (१) पृ० ४८।

सकतसिह के कोई लडका न था, एव उसने अपने बडे भाई रायसिह के तीसरे पुत्र अनूपसिह को गोद ले लिया था, जिससे सकतसिह का वश आगे चला। धार राज्य के अन्तर्गत मुलथान ठिकाना आज भी अनूपसिह के वशजो के अधिकार मे है।

सकतसिह का मनसब क्या था, मनसब की जागीर मे उसे कौन से गॉव मिले थे इनका ठीक-ठीक ऐतिहासिक विवरण नही मिलता है। पोथियो के आधार पर रतन० पृ० ५४ और पृ० ७२ पर लिखा है कि सकतसिह को प्रारम्भ से ही बदनावर परगने के अन्तर्गत मुलथान एव आसपास के गॉव मिले थे। किन्तु यह कथन ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक नही जान पडता है। बदनावर का परगना सन् १६८१ ई० मे रामसिह को जागीर मे मिला था (अख० और०, २५, पृ० २२९)। बाद मे यही परगना बनेडा ठिकाने के सस्थापक भीमसिह को जागीर मे मिला और मालवा मे मरहठो का आधिपत्य स्थापित होने तक भीमसिह के वशजो के ही अधिकार मे रहा था (मालवा मे युगान्तर, पृ० ८९-९०, ३२२)। बदनावर परगने एव वहॉ के आस-पास के प्रदेश मे खोज करने पर ही इस प्रश्न पर विशेष प्रकाश पड सकेगा।

अध्याय ६

शिवसिंह

(१६८३—१६९१ ई०)

१. प्रारम्भिक वर्ष—चान्दा पर चढ़ाई; मई, १६८३—मार्च, १६८५ ई०

सुदूर दक्षिण मे समुद्र-तट के निकट ही जब कल्याण-भिवण्डी मे रामसिह की मृत्यु हुई, उस समय उसका ज्येष्ठ पुत्र एव उत्तराधिकारी, शिवसिह रतलाम मे ही था। शिवसिह का जन्म सोमवार, श्रावण शु० ८, स० १७२९ वि० (जुलाई २२, १६७२ ई०) को हुआ था[1], एव इस समय उसकी उम्र पूरे इग्यारह वर्ष की भी न थी किन्तु आश्चर्यजनक चतुरता के साथ वह अपने इस नये उत्तरदायित्व को सभालने मे लग गया। अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिलने के कोई एक माह बाद शुभ मुहूर्त देख कर सोमवार, मई २१, १६८३ ई० (ज्येष्ठ शुक्ला ५,

---

[1] गुरूजी०। बड़वो की ख्यातों में शिवसिंह के जन्म की अलग-अलग तिथियाँ दी है। कई ख्यातो में सिर्फ उसका जन्म सवत् १७१९ वि० (१६६२-१६६३ ई०) दिया है। एक ख्यात के अनुसार चैत्र वि० ७, स० १७१९ वि० (गुरुवार, फ़रवरी १९, १६६३ ई०) ही उसकी जन्म-तिथि थी। दूसरी ख्यात में कार्तिक शु० ८, १७२४ वि० (सोमवार, अक्तूबर १४, १६६७ ई०) के दिन शिवसिह का जन्म होना लिखा है। किन्तु इन सब में गुरूजी० द्वारा दी गई तिथि को ही ठीक मान कर उसे स्वीकार किया गया है।

शिवसिंह

स० १७४० वि०)[२] को वह रतलाम राज्य की गद्दी पर बैठा। ऐसा अनुमान होता है कि इसी अवसर पर औरगजेब ने शिवसिह को ६ सदी जात–५०० सवारो का मनसब दिया था, जिनमे से ४०० सवार दो-अस्पा थे।[३] अपने राज्य के शासन का ठीक-ठीक प्रबन्ध कर सन् १६८४ ई० के प्रारम्भ मे शिवसिह सम्राट् की सेवा मे दक्षिण जा पहुँचा। जून १५, १६८४ ई० को शिवसिह रामगढ का थानेदार नियुक्त

---

[२]गुरूजी० ने जो वार, तिथि और माह दिये हैं वे सन् १६८३ ई० के ही हैं, किन्तु वहाँ सवत् १७३६ वि० दिया है। सम्भवतः यह श्रावणादि सवत् हो जिससे यह एक साल का अन्तर हो गया। आगे इस विषय में भ्रम न हो जावे, इसी विचार से संवत् चैत्रादि कर दिया गया है।

सवत् वाला यह भेद बडवो की ख्यातो में भी मिलता है। प्रायः गुरूजी० द्वारा दी गई तिथि ही उनमें लिखी है। किन्तु एक ख्यात में शिवसिह के राज्यारोहण का दिन भाद्रपद शु० ४, स० १७३६ वि० (बुधवार, अगस्त १५, १६८३ ई०) दिया है।

[३]जय० अख़्ब०, औरं०, २७, पृ० १२६ पर जून, १६८४ ई० में उसके मनसब में की गई वृद्धि का उल्लेख करते समय शिवसिह के जिस पिछले मनसब का विवरण दिया है वह मनसब उसके पिता की मृत्यु पर ही शिवसिह को मिला होगा।

बाल्यावस्था में गद्दी बैठने के कुछ ही समय बाद, केवल बारह बरस की उमर में ही, शिवसिह का शाही सेवा में जाना और वहाँ महत्त्वपूर्ण किले की थानेदारी पाना, आश्चर्यजनक अवश्य जान पड़ता है; किन्तु मुग़ल साम्राज्य के लिए यह अनोखी बात न थी। वंशपरम्परागत मनसबदारो में यदि कोई शासक योग्य होता तो कम उमर में भी उसे बड़े उत्तरदायित्व का काम सौपा जाता था। जुलाई १०, १६६६ ई० को जब बीकानेर के शासक राजा स्वरूपसिह को औरंगज़ेब ने राजाराम के बाल-बच्चों को शाही दरबार मे लाने का हुक्म दिया उस समय स्वरूपसिह की उमर केवल दस वर्ष की थी। बीकानेर०, १, पृ० २६१-२; मा० आ०, पृ० ४०७।

किया गया और इसी अवसर पर उसके मनसब मे एक सौ सवार बढाए गए।[४]

शिवसिह को अपना यह पद सभाले अधिक दिन बीते न थे कि उसे शाही सेना मे सम्मिलित होने चान्दा जाना पडा। चान्दा के जमीदार रामसिह से औरगजेब अप्रसन्न हो गया था, एव अक्तूबर, १६८३ ई० मे औरगजेब ने रामसिह को चादा की जमीदारी से अलग कर उसके भाई किशनसिह को वह जमीदारी दे दी। पहिले तो रामसिह ने इस हुक्म का विशेष खयाल न किया, किन्तु जून, १६८४ ई० के प्रारम्भ मे जब औरगजेब ने किशनसिह को बुलवा भेजा, तब तो रामसिह बहुत ही क्रुद्ध हुआ और चार-पॉच हजार सवारो को एकत्रित कर चांदा के आस-पास उपद्रव मचाने लगा। किशनसिह जब दरबार मे पहुँचा तो जुलाई ३०, १६८४ ई० को औरगजेब ने उसे चादा की जमीदारी पर नियुक्त किया, और एतकाद खाँ को हुक्म हुआ कि वह ससैन्य जाकर किशनसिह को जमीदारी का अधिकार दिला दे, तथा रामसिह को दण्ड देकर उसके उपद्रव का अन्त कर डाले।[५] सेना लेकर जब एतकाद खॉ चान्दा के लिए रवाना हुआ तो उसने अपनी सहायतार्थ रामगढ से शिवसिह को भी बुलवा भेजा।

नवम्बर, १६८४ ई० के प्रारम्भ मे एतकाद खॉ की सेना चादा के

---

[४]जय० अख०, औरं०, २७, पृ० १२६।

यह रामगढ़ सूबा बरार में स्थित सुप्रसिद्ध रामगढ़ किला ही होगा। आईन०, २, पृ० २२८, २३०; इण्डिया०, पृ० lxxix, ५०, १४४। किस वर्तमान जिले में यह क़िला तब होगा, यह बताना कठिन है। सम्भवतः मध्य-प्रदेश के अन्तर्गत २२° ७′ उत्तर ८१° पूर्व में स्थित मण्डला जिले का रामगढ शहर ही हो, किन्तु वहाँ अब कोई भी किला नहीं रह गया है।

सन् १७०५ ई० में अली मर्दान खाँ हैदराबादी इसी रामगढ किले का किलेदार

पास पहुँची; शिवसिंह और उसके सैनिक भी एतकाद खाँ के साथ थे। नवम्बर १० को रामसिह ने एतकाद खाँ के साथ युद्ध किया जिसमे रामसिह की हार हुई और वह भागकर शेरगढ की तरफ पहाडो मे जा छिपा।[६] विजयी शाही सेना नवम्बर १५ को चान्दा जा पहुँची। वहाँ किशनसिह को राजा बनाकर एतकाद खाँ ने शाही टीका निश्चित किया। नवम्बर १९ को रामसिह तीन साथियो को लेकर चान्दा आ पहुँचा और किले के अदर घुसने का प्रयत्न किया किन्तु पहरेदालो ने उसे मार डाला।[७] चान्दा से लौट कर एतकाद खाँ शाही दरबार मे अहमदनगर आया। शिवसिह भी उसके साथ था। एतकाद खाँ के साथ ही शिवसिह भी दिसम्बर २७, १६८४ ई० को औरगजेब के सम्मुख उपस्थित हुआ और उसने नौ मोहरे नजर की।[८] चादा की इस चढाई मे शिवसिह ने शाही सेना की बहुत-कुछ सहायता की थी, एव उससे प्रसन्न होकर दिसम्बर २९, १६८४ ई० को शिवसिह के मनसब मे एक सौ जात–५० दो-अस्पा सवारो की वृद्धि की गई, जिससे अब शिवसिह का

था, एवं उसके मरने के बाद उसी के पुत्र मुहम्मद रजा को यह किलेदारी मिली। मा० आ०, पृ० ५१६; मा० उ०, २, पृ० ८२५।

[५]मा० आ०, पृ० २३६; जय० अख०, औरं०, २७, पृ० ८६, १५१, १५७; औरंग०, ५, पृ० ४०६।

[६]अखबारों के अनुसार यह युद्ध नवम्बर १० (१२ ज़िल्हिज) को हुआ; जय० अख०, औरं०, २८ (१), पृ० २३७, २३६। किन्तु मा० आ० (पृ० २५०) के अनुसार यह युद्ध नवम्बर २ (४ ज़िल्हिज) को हुआ था; औरंग०, ५, पृ० ४०७।

[७]जय० अख०, औरं०, २८ (१), पृ० २३७, २६५; मा० आ०, पृ० २५०; औरंग०, ५, पृ० ४०७।

[८]जय० अख०, औरं०, २८ (१), पृ० ३४५-६।

मनसब सात सौ जात—छ सौ दो-अस्पा सवारो का हो गया।[९]

चादा की चढाई के समय शिवसिह एव उसके सैनिको की गिनती एतकाद खॉ की सेना मे हो रही थी। दिसम्बर २९, १६८४ ई० को औरगजेब ने आज्ञा दी कि शिवसिह एव उसके सैनिक अब गाजीउद्दीन खॉ की सेना मे नियुक्त किए जावे, और वह तत्काल ही शिवापुर के खजाने के सैनिकों को अपने साथ ले जावे।[१०] गाजीउद्दीन इस समय राइरी (रायगढ) किले को जीतने का प्रयत्न कर रहा था।[११] शिवसिह अहमदनगर से रवाना होने भी न पाया था कि दूसरे ही दिन (दिसम्बर ३०, १६८४ ई०) औरगजेब ने आज्ञा दी कि शिवसिह गाजीउद्दीन के पास न जावे, किन्तु अहमदनगर मे ही शाही सेना के साथ रहे। इस प्रकार औरगजेब के साथ ही रहने की आज्ञा पाने पर शिवसिह ने औरगजेब की सेवा मे उपस्थित होने की प्रार्थना की। शिवसिह पीढियो से शाही मनसबदार तथा रतलाम राज्य का अधिकारी था, एव औरगजेब ने उसे अपने सैनिक हथियारो के साथ दीवान-इ-खास (जिसे प्राय गुसलखाना भी कहते थे) मे आने की आज्ञा दे दी।[१२]

---

[९]जय० अख०, और०, २८ (१), पृ० ३५६-३६०।

[१०]जय० अख०, और०, २८ (१), पृ० ३५६।

शिवापुर—पूना से कोई १४ मील दक्षिण-पूर्व में स्थित एक गॉव था, जो राइरी (रायगढ़) की राह में पड़ता था। औरग०, ४, पृ० २६५।

[११]मा० आ०, पृ० २४८-२४६, २५२; औरंग०, ४, पृ० ३५६।

[१२]जय० अख०, औरं०, २८ (१), पृ० ३६०, ३६५।

अकबर का दीवान-इ-खास उसके गुसलखाने (स्नानागार) से लगा हुआ था, एव तब से अखबारों, पत्रो एव अन्य सरकारी कागजो में भी दीवान-इ-खास का उल्लेख करते समय उसे 'गुसलखाना' ही लिखते रहे हे। सर यदुनाथ सरकार कृत 'स्टडीज इन मुग़ल इण्डिया', पृ० ६, फु० नो०।

सन् १६८३ ई० मे जब शिवसिह गद्दी पर बैठा तब उसके राज्य पर बीस हजार रुपये से भी अधिक कर्जा हो रहा था। गद्दी पर बैठने के दूसरे साल ही वह शाही सेना मे सम्मिलित होने के लिए दक्षिण चला गया, और उसकी अनुपस्थिति मे रतलाम राज्य की आर्थिक परिस्थिति सुधारने के लिए विशेष प्रयत्न नही किया जा सका। इधर सन् १६८३-८४ ई० मे फसले भी बहुत अच्छी नही हुईं, एव सारे प्रयत्न किए जाने पर भी उक्त बीस हजार मे से केवल पॉच हजार रुपये वसूल हो पाए थे। बाकी रहे रुपयो की वसूली के लिए मालवा सूबे के दीवान ने सन् १६८४ ई० के अन्तिम महीनो मे पुन ताकीद की। करजे के रुपये चुकाने का ठीक प्रबन्ध न हो सकने की हालत मे वह राज्य के कुछ भागो पर शाही अधिकार करने की भी सोच रहा था। अतएव शिवसिह ने जनवरी २८, १६८५ ई० को एक प्रार्थना-पत्र द्वारा औरगजेब से निवेदन किया कि उस वर्ष भी केवल पॉच हजार रुपए ही वसूल किए जाने का हुक्म हो।

इसी प्रार्थना-पत्र मे शिवसिह ने यह भी चाहा था कि तनख्वाह के बदले मे उसे बदनावर का परगना व्यक्तिगत रूपेण दे दिया जावे। दिसुम्बर २९, १६८४ ई० को शिवसिह के मनसब मे वृद्धि हुई थी, जिसके फलस्वरूप उसकी व्यक्तिगत जागीर मे वृद्धि होती, किन्तु दिसम्बर ३०, १६८४ ई० की आज्ञानुसार शिवसिह की नियुक्ति औरगजेब के साथ रहने वाले सैनिक दल मे हो गई थी, एव नियमानुसार उसे मनसब की वृद्धि के लिए नई जागीर न मिल कर नकद तनख्वाह ही मिलने वाली थी। किन्तु शिवसिह इस नकद तनख्वाह के बदले नई व्यक्तिगत जागीर प्राप्त करने के लिए उत्सुक था। बदनावर का परगना रतलाम राज्य से लगा हुआ ही था, तथा पहिले भी रतनसिह और रामसिह के अधिकार मे रह चुका था, एव उसी परगने

को पुन अपने अधिकार मे करने के लिए शिवसिह का प्रयत्नशील होना स्वाभाविक ही था।

औरगजेब ने इस प्रार्थना-पत्र पर हुक्म दिया कि इन दोनो प्रश्न सम्बन्धी विशेष बाते वजीर जुमदतुलमुल्क असद खॉ औरगजेब की सेवा मे निवेदन करे।[१३] शिवसिह की इन प्रार्थनाओ पर औरगजेब की अन्तिम आज्ञा क्या हुई इसका कोई भी विवरण नही मिलता है।

२. दक्षिणी युद्धों में शिवसिंह का सम्मिलित होना; औरंगजेब की अप्रसन्नता एवं शिवसिंह की मृत्यु (सन् १६६१ ई०)

शिवसिह मार्च, १६८५ ई० तक औरगजेब की निजी सेवा मे शाही सेना के साथ अहमदनगर मे बना रहा, किन्तु उसके कुछ ही काल बाद उसकी वहॉ से बदली हो गई। कुछ वर्षो से औरगजेब तथा बीजापुर के सुलतान आदिल शाह के बीच मनमुटाव निरन्तर बढता जा रहा था। औरगजेब चाहता था कि शभाजी के विरुद्ध लडने वाली शाही सेना को आदिल शाह भी पूरी-पूरी मदद करे परन्तु आदिल शाह तो मुगलो के विरुद्ध शभाजी की सहायता कर रहा था। सन् १६८५ ई० के प्रारम्भ मे मुगलो और आदिल शाह के बीच लड़ाई छिड गई तथा मार्च महीने मे मुगल सेनाएँ बीजापुर के पास तक जा पहुँची।[१४]

---

[१३]जय० अख०, औरं०, २८ (२), पृ० १३-१४; इर्विन०, पृ० १४-१५।

[१४]बसातीन०, पृ० ५३३-४; मा० आ०, पृ० २५५-२५६; औरंग०, ४, पृ० ३६४-३७१।

बीजापुर के विरुद्ध सेना भेजने के लिए मार्च, १६८५ ई० के प्रारम्भ से ही तैयारियाँ होने लगी। रुहेल्ला खाँ के सेनापतित्व मे एक बडी मुगल सेना भेजने का निश्चय हुआ, और मार्च १४ को औरगजेब ने हुक्म दिया कि शिवसिह एव उसके सैनिक भी रुहेल्ला खाँ की सेना के साथ बीजापुर भेजे जावे। किन्तु मार्च १६ को जब रुहेल्ला खाँ शाही सेना के साथ अहमदनगर से रवाना हुआ तब औरगजेब ने शिवसिह को रुहेल्ला खाँ के साथ न जाने दिया, एव मार्च २१, १६८५ ई० को हुक्म दिया कि शिवसिह का नाम एतकाद खाँ के सेनापतित्व मे रहने वाली सेना के साथ रखा जावे, तथा आगामी एक माह तक शिवसिह गजनफर खाँ के साथ ही रहे।[१५] इस समय एतकाद खाँ पारनेर और सगमनेर के प्रदेश मे मरहठे आक्रमणकारियो का सामना कर उन्हे मार भगाने मे लगा हुआ था।[१६] गजनफर खाँ भी इस समय अहमदनगर मे न था एव औरगजेब की आज्ञानुसार शिवसिह को गजनफर खाँ के पास जाना पडा होगा।[१७] वह गजनफर खाँ के पास गया या नही, एव उसके साथ एक माह रहने के बाद शिवसिह को कहाँ जाने का हुक्म मिला, इसका कोई विवरण नही मिलता है। यह बात निश्चित रूपेण अवश्य कही जा सकती है कि शिवसिंह एतकाद खाँ की सेना मे तो सम्मिलित नही हुआ।[१८]

---

[१५] जय० अख०, औरं०, २८ (२), पृ० १५५, १८२; मा० आ०, पृ० २५४।

[१६] मा० आ०, पृ० २५२।

[१७] अप्रेल २, १६८५ ई० को अहमदनगर से एक शाही दूत भेजे जाने पर ही गजनफर खाँ अप्रेल ७ को शाही दरबार में पहुँचा। जय० अख०, औरं०, २८ (२), पृ० २३१, २४६।

[१८] एतकाद खाँ मई २४, १६८५ ई० को जफराबाद भेजा गया था और अक्तूबर १०, १६८५ ई० को इन्दी भेजे जाने तक वह वहाँ ही रहा, किन्तु शिव-

रुहेल्ला खॉ और खान जहॉ बहादुर ने मुगल सेना के साथ अप्रेल १, १६८५ ई० को बीजापुर का घेरा डाला। युद्ध-क्षेत्र से बहुत दूर न रहने के लिए उत्सुक औरगजेब भी अहमदनगर से अप्रेल २६ को रवाना होकर मई २४ को शोलापुर आगया, और एक साल भर तक यहाँ से ही सेनाओ का सचालन करता रहा। जून १४ को शाहजादा आजम भी एक बडी सेना के साथ बीजापुर के पास जा पहुँचा और कुछ दिन बाद घेरा डालने वाली शाही सेना मे सम्मिलित होकर घेरे का सचालन करने लगा। इसी समय गोलकुण्डा राज्य से भी मुगल साम्राज्य की बिगड़ गई थी, एव शाहजादे शाह आलम को ससैन्य गोलकुण्डा पर आक्रमण करने के लिए भेजा जा रहा था। खान जहॉ बहादुर इस समय शोलापुर-बीजापुर राह मे इन्दी नामक स्थान पर नियुक्त इस राह को खुली रखने मे प्रयत्नशील था। औरगजेब की आज्ञानुसार वह जून २८ को इन्दी से रवाना होकर शाह आलम की सेना मे सम्मिलित हो गया। रुहेल्ला खॉ की भी नियुक्ति अहमदनगर हो गई एव बीजापुर से रवाना होकर जुलाई १५ को वह शोलापुर पहुँचा। जुलाई १९ को औरगजेब ने शाहजादे शाह आलम और उसके पुत्र बेदार बख्त को कुछ वस्तुएँ उपहार-स्वरूप भेजी।[१९] इन्ही तीन महीनो मे शिवसिह और उसके सैनिक भी बीजापुर के घेरे मे भाग लेने को वहॉ भेज दिए गए थे।[२०]

सिह एतकाद खॉ से कई मास पहिले ही बीजापुर पहुँच गया था। मा० आ०, पृ० २५९, २६६; औरग०, ४, पृ० ३८२, मेहता०, अगस्त ३०, १६८५ ई० का पत्र।

[१९] मा० आ०, पृ० २५५-६, २५८, २५९-२६०, २६१; बसातीन०, पृ० ५३६; औरंग०, ४, पृ० ३७४, ३७५, ३७६, ४०८।

[२०] मेहता०; शिवसिह ने रविवार, अगस्त ३०, १६८५ ई० (भाद्रपद

बीजापुर का घेरा चलता ही गया, और ख़ान जहाँ बहादुर के इन्दी से रवाना होने के बाद शोलापुर-बीजापुर राह खुली न रह सकी। खाने-पीने का सामान लाने में निरन्तर कठिनाइयाँ होने लगीं और बीजापुरी सैनिक राह रोक कर युद्ध भी करने लगे, जिससे बीजापुर के आस-पास दुर्भिक्ष पड़ गया, और वहाँ का घेरा डालने वाली सारी शाही सेना भूखों मरने लगीं। शाहज़ादा आज़म के साथ ही साथ शिवसिंह को भी ये सारी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। अपने पुत्र एवं शाही सेना को बचाने के लिए उत्सुक औरंगज़ेब ने आज़म को कहला भेजा कि वह अपनी सारी सेना के साथ बीजापुर से लौट आवे, किन्तु आज़म ने बीजापुर से लौटना स्वीकार न किया और उन सारी कठिनाइयों के होते हुए भी वहीं डटा रहा।[२१]

तब तो औरंगज़ेब ने विवश होकर ग़ाज़ीउद्दीन फ़िरोज़ जंग के सेनापतित्व में एक बड़ी सेना एकत्रित की और खाने-पीने का बहुत सा सामान लेकर उसे अक्तूबर ४, १६८५ ई० को शोलापुर से रवाना किया। बीजापुर से कोई तीस मील (भीमसेन के कथनानुसार केवल १२ मील ही) की दूरी पर शर्ज़ा ख़ाँ के नेतृत्व में बीजापुरी सेना ने फ़िरोज़ जंग की राह रोकी, और उसके साथ का कुछ सामान भी लूट ले गए, किन्तु अन्त में फ़िरोज़ जंग ने उन्हें मार भगाया। यों लड़ता-भिड़ता खाद्य सामग्री लेकर जब फ़िरोज़ जंग आज़म से जा मिला, तब तो वहाँ सेना में दुर्भिक्ष का अन्त हो गया। शोलापुर-बीजापुर राह को खुली रखना अत्यावश्यक था एवं अक्तूबर

शुक्ला ३०, सं० १७४२ वि०) को एक पत्र बीजापुर से लिखा था।

[२१] मा० आ०, पृ० २६१, २६३-४; भीम०, १, पृ० १६८; बसातीन०, पृ० ५३६; औरंग०, ४, पृ० ३७६-३८१।

१०, १६८५ ई० को एतकाद खाँ इन्दी का थानेदार नियुक्त कर वहाँ भेजा गया। इन्दी और बीजापुर के बीच मे नागथाणा नामक स्थान मे भी कुछ सेना रखना आवश्यक जान पड़ा, अतएव वहाँ शिवसिह और उसके सैनिको को नियुक्त किया गया।[२२]

किन्तु बीजापुर के घेरे का जल्द ही अन्त न हुआ। सवा साल के घेरे के बाद भी जब बीजापुर पर अधिकार होता न देख पड़ा, तब तो औरगजेब स्वय ससैन्य जुलाई ३, १६८६ ई० को बीजापुर जा पहुँचा और वह शाहजादे शाह आलम को भी, जो तब तक गोलकुण्डा से लौट आया था, अपने साथ लेता आया। अन्त में रविवार, सितम्बर १२, १६८६ ई० को अन्तिम आदिल शाही सुलतान ने आत्म-समर्पण कर दिया, और बीजापुर पर मुगल सेना का अधिकार हो गया।[२३] बीजापुर के इस सारे घेरे के समय शिवसिह नागथाणे मे ही रहा, बीजापुर चला आया था या और कही भेज दिया गया था, इसका कोई भी उल्लेख नही मिलता है।

इस प्रकार जब शिवसिह सुदूर दक्षिण मे शाही सेना के साथ

---

[२२]मा० आ०, पृ० २६५-६; भीम०, १, पृ० १६६; खफी०, २, पृ० ३१७; औरग०, ४, पृ० ३८१-२। मेहता०; शिवसिह ने बुधवार, नवम्बर १८, १६८५ ई० (मार्गशीर्ष, शुक्ला २, स० १७४२ वि०) को एक पत्र नागथाणा से लिखा था।

नागथाणा—१६° ५६′ उत्तर ७५° ५१′ पूर्व में स्थित है। यह स्थान बीजापुर से ११ मील उत्तर-पूर्व एवं इन्दी से १६ मील दक्षिण-पश्चिम में है। भीम०, १, पृ० ५६, १६६।

[२३]मा० आ०, २७६-७, २७८, २७६-८०; ईश्वर०, प० १०० अ-१०४ ब; भीम०, १, पृ० २००-२०३; बसातीन०, पृ० ५३७-५४०; औरग०, ४, पृ० ३८३-३८६।

बीजापुर जीतने के प्रयत्न मे लगा हुआ था, मालवा मे रतलाम राज्य का शासन-प्रबन्ध सांचोरा चौहान भगवानदास के ज्येष्ठ पुत्र मानसिंह के हाथ मे था। साचोरा चौहान अमरदास का चौथा लडका माधोसिह एव मेहता नाथा राज्य कार्य मे मानसिह की पूरी-पूरी सहायता कर रहे थे।[२४] ये नियुक्तियाँ बहुत करके सन् १६८९ ई० के प्रारम्भ तक रही जब ये सब अलग कर दिए गए, और उनके स्थान पर साचोरा चौहान मानसिह का दूसरा छोटा भाई पृथ्वीराज प्रधान मन्त्री बना और सहरूप नामक एक और कर्मचारी उसका सहकारी नियुक्त किया गया।[२५] राज्य-कर्मचारियो मे ये परिवर्तन क्यो किए गए यह

---

[२४]मेहता०, अगस्त ३०, एवं नवम्बर १८, १६८५ ई० को लिखे गए पत्र। ये नियुक्तियाँ शिवसिह के गद्दी बैठने के समय सन् १६८३ ई० में ही हुई थी या बाद में, यह कहना कठिन है; परन्तु अनुमान यही होता है कि सन्१६८३ ई० में ही ये नियुक्तियाँ हुई होगी।

साचोरा चौहान मानसिह सन् १६६३ ई० में मर गया (पचेड़ ठिकाने का इतिहास, पृ० ७३)। उसके ज्येष्ठ पुत्र सुरताणसिह या सुलतानसिह को सन् १७०२ ई० के बाद वर्तमान पचेड़ ठिकाना छत्रसाल ने दिया।

साचोरा चौहान माधोसिह, वीर अमरदास का चौथा पुत्र था। वह पहिले रामसिह और बाद में उसी के पुत्रो की सेवा करता रहा। केशवदास के अधिकार से जब रतलाम परगना चला गया तब भी माधोसिह ने केशवदास का साथ न छोड़ा। सीतामऊ राज्य की स्थापना पर केशवदास ने उसे जागीर प्रदान की। सीतामऊ राज्य के अन्तर्गत दीपाखेड़ा और मोरखेड़ा ठिकाने आज भी माधोसिह के वंशजों के अधिकार में है। मेहता नाथा के वशज आज भी विद्यमान है और सीतामऊ राज्य के सुप्रतिष्ठित कर्मचारी समझे जाते है; मेहता०।

[२५]मेहता०, मई १६, १६८९ ई० को लिखा गया पत्र। सांचोरा चौहान पृथ्वीराज, भगवानदास का तीसरा पुत्र था। पृथ्वीराज के वंशज कई साल पूर्व तक वर्तमान रतलाम राज्य के अन्तर्गत गॉव मातासुला में थे।

निश्चित रूपेण कहा नही जा सकता है। इसी समय एक ऐसी घटना अवश्य घटी, जिसका इस परिवर्तन से कोई सम्बन्ध होना सम्भव हो सकता है।

ईश्वरदास लिखता है कि "उज्जैन से सम्राट् के पास यह सूचना पहुँची कि रतलाम के जमीदार शिवसिह के गुमाश्ते ने दो हाथियो को लडाया। रतलाम की यह जमीदारी उज्जैन सूबे के अन्तर्गत थी। हाथियो की लडाई कराना केवल सम्राट् का ही विशेष अधिकार है, एव जमीदार के मनसब मे पॉच सौ सवार घटा दिये गये। पुन: असद और अन्य दो गुर्जबरदार भेजे गए कि वे उन दोनो हाथियों तथा उस गुमाश्ते को अपने साथ शाही दरबार में पेश करे, जिससे कि उस गुमाश्ते को अपनी इस धृष्टता के लिए उचित दण्ड दिया जा सके।" यह घटना दिसम्बर, १६८८ ई० या जनवरी, १६८९ ई० के लगभग हुई थी।[२६] यह गुमाश्ता कौन था, जिसने इस प्रकार हाथी लडा कर अपने स्वामी को औरगजेब का कोपभाजन बनाया, और यों शिवसिह के मनसब मे कमी करवा दी, यह बताना कठिन है, किन्तु इस मूर्खतापूर्ण धृष्टता की बहुत कुछ जिम्मेवारी शिवसिह के तत्कालीन प्रधान कर्मचारी मानसिह साचोरा पर ही पडती है क्योकि उसके मन्त्रित्व मे ऐसी घटना घटी। उक्त गुमाश्ता शाही दर-

---

[२६] ईश्वर०, प० १४४ ब-१४५ अ। ईश्वरदास ने अपने ग्रन्थ में विभिन्न घटनाओं के सन्-संवत् नहीं दिए है। परन्तु इस विवरण से पहिले एवं बाद में दी गई घटनाओ में से जिनकी तारीखें अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थों के आधार पर निश्चित की जा सकी है, उन्हें देखते हुए भी इस घटना का उपर्युक्त समय निश्चित किया गया है।

हाथियों की लड़ाई करवाना एक-मात्र मुग़ल सम्राट् का ही विशेष अधिकार माना जाता था। सम्राट् भी इस बात के लिए बहुत ही जागरूक एवं प्रयत्नशील

बार मे ले जाया गया या नही, एव उसे क्या दण्ड मिला, इसका कोई विवरण नही मिलता है। इस घटना से सम्बद्ध दोनों हाथी तो शिवसिह की मृत्यु के बाद तक भी रतलाम ही रहे; अक्तूबर १, १६९१ ई० को उन्हे शाही दरबार मे भिजवा देने का पुन. हुक्म हुआ था।[२७]

रतलाम मे हाथियो को लडाया गया और औरंगजेब शिवसिह के उस उद्दण्ड गुमाश्ता को सजा देने के लिए शाही दरबार मे दक्षिण बुलवा रहा था। किन्तु शिवसिह तो दक्षिण मे निरन्तर शाही सेवा मे बना रहा। सितम्बर, १६८६ ई० मे बीजापुर पर मुगलो का अधिकार हो जाने के बाद शिवसिह कहाँ रहा, उसने क्या-क्या सेवाएँ की और उसका मनसब क्या था इसका कोई भी प्रामाणिक विवरण नही मिलता है। शिवसिह के बारे में इन बरसों की जो एक-मात्र सूचना मिलती है, वह है उसके राइरी (रायगढ) होने की।

सितम्बर, १६८७ ई० मे गोलकुण्डा को जीत कर औरगजेब मरहठा राजा शम्भाजी के विरुद्ध अपनी सेना सचालित करने लगा।

रहते थे कि उनके इस विशेष अधिकार का उनके शाहजादे तक कभी भूल कर भी उपयोग न करें। एक बार जब ससैन्य प्रयाण करते समय शाहजादे शाह आलम ने राह में हाथियों को लड़ाया था, तब औरंगजेब ने उसे बहुत फटकारा और शाह आलम ने उत्तर में यह हास्योत्पादक सफाई पेश की कि हाथी स्वयं ही लड़ पडे थे।

सरकार कृत 'मुगल एड्मिनिस्ट्रेशन', तीसरा सस्करण, पृ० १४२-५५; सरकार कृत 'एनेक्डोट्स आफ औरगजेब', दूसरा सस्करण, पृ० ५९-६०।

[२७]जय० अख०, और०, ३५-३६, पृ० ३७

दिसम्बर, १६८८ ई० मे शाहजादा आजम ससैन्य शम्भाजी के विरुद्ध बढा, और पूना के उत्तरी जिले मे चाकण नामक स्थान पर पड़ाव किया। शैख निजाम हैदराबादी, जो अब मुकर्रब खॉ कहलाता था, पन्हाला के किले का घेरा डालने के लिए भेजा गया। इसी समय एतकाद खॉ को भी एक बडी सेना के साथ राइरी (रायगढ) किला जीतने के लिए रवाना किया। एतकाद खॉ के साथ शिवसिह और उसके सैनिक भी भेजे गए।[२८]

मुकर्रब खॉ ने बडी चतुराई से फरवरी १, १६८९ ई० को शम्भाजी को पकड़ कर कैद कर लिया। तब तो फरवरी ८ को मरहठे नेताओं ने शम्भाजी के सौतेले छोटे भाई राजाराम को, जो शम्भाजी की आज्ञा से कैद था, छुडाया और उसे रायगढ में मरहठों की राजगद्दी पर बिठाया। औरगजेब ने इधर मार्च ११ को भीमा के तीर पर कोरेगॉव मे शम्भाजी को मरवा डाला। एतकाद के सेनापतित्व मे जो सेना रायगढ के विरुद्ध भेजी गई थी, वह अब तेजी से उस ओर बढी और उस किले को जा घेरा। शिवसिह और उसके सैनिक भी एतकाद खॉ की सेना के साथ थे। शाही सेना की सारी सावधानता के होते हुए भी अप्रेल ५, १६८९ ई० को राजाराम योगी का भेष बना कर रायगढ से निकल भागा। राजाराम के भाग जाने से औरगजेब का प्रधान विरोधी रायगढ मे न रह गया, फिर भी एतकाद खाँ किले को घेरे ही रहा और अन्त मे अक्तूबर १९, १६८९ ई० को उस पर अधिकार कर लिया।[२९]

---

[२८]मा० आ०, पृ० ३१६, ३२६, ३२०; औरंग०, ४, पृ० ४५२, ४८१, ४७५-६, ४८१; मेहता०।

[२९]मा० आ०, पृ० ३२०-३२२, ३२५, ३२७, ३३१; खफ़ी०, २, पृ० ३८६,

शिवसिंह के शासनकाल का जो अन्तिम पत्र मिलता है, वह मई १६, १६८९ ई० (गुरुवार, ज्येष्ठ शुक्ला ८, स० १७४६ वि०) का है । उस समय शिवसिह राइरी (रायगढ) किले के घेरे मे भाग ले रहा था ।[30] उसके बाद शिवसिह कब तक जीवित रहा यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता है । ख्यातों और पुरानी पोथियो मे शिवसिह की मृत्यु के जो सन्-सवत दिए है वे सर्वथा गलत है ।[31] एव जो कुछ भी दूसरी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्य है उसी के आधार पर शिवसिह की मृत्यु का सन्-सवत् निश्चित करना पडता है । ऊपर जो विवरण दिया है उससे स्पष्ट है कि शिवसिह की मृत्यु मई १६, १६८९ ई० के बाद ही हुई होगी । पुन शिवसिह के उत्तराधिकारी, उसके छोटे भाई, केशवदास सम्बन्धी जो विवरण अख़बारों मे मिलता है उसमे ज्ञात होता है कि सितम्बर १८, १६९१ ई० के दिन केशवदास रतलाम का शासक था । पुन. शिवसिह के हाथियों सम्बन्धी अक्तूबर १, १६९१ ई० के अखबार मे शिवसिह को मृत

३८६; ईश्वर०, प० १५२ अ-१५४ अ; भीम०, २, प० ६६ ब-६७ ब; मेहता०, औरंग, ४, पृ० ४७६-४८२।

[30]मेहता० ।

[31]गुरूजी, राणी० और कुछ बडवों की ख्यातो के अनुसार शिवसिंह की मृत्यु सं० १७४५ वि० में (मार्च ११, १६८९ ई० से पहिले) हो गई थी । एक बडवे की ख्यात में तो आसोज सु० ७, स० १७४५ वि० (बुधवार, सितम्बर ११, १६८९ ई०) को केशवदास के गद्दी बैठने का भी उल्लेख मिलता है । इन्हीं सारे कथनो के आधार पर रतन० में स० १७४५ वि० मे ही शिवसिंह की मृत्यु होना लिखा है ।

कहीं-कही शिवसिंह की मृत्यु का सन् १६८४ ई० (सं० १७४१ वि०) में होना बताया जाता है । सीतामऊ० (पृ० ४) में न जाने किस प्रकार इसी सन्

लिखा है ।[३२] इससे यह बात निर्विवाद हो जाती है कि सितम्बर, १६९१ ई० से पहिले ही शिवसिह की मृत्यु हो चुकी थी ।

आवश्यक ऐतिहासिक सामग्री के अभाव मे यह निश्चित करना कि अप्रेल १६८९ के बाद और सितम्बर १६९१ ई० से पहिले इन २९ माह के लम्बे काल मे शिवसिह कब मरा, सम्भव नही । किन्तु शिवसिह के हाथियों सम्बन्धी अखबार से इतना अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है कि शिवसिह की मृत्यु सन् १६९१ ई० के प्रारम्भिक (स० १७४७ वि० के अन्तिम) महीनो मे हुई होगी । शिवसिंह की मृत्यु तथा केशवदास के गद्दी बैठने का विवरण जब सर्वत्र ज्ञात हुआ तब ही शिवसिह के जब्त किए जाने वाले दोनों हाथियों का प्रश्न पुन उठा और उन्हे रतलाम से शाही दरबार मे मँगवाने का प्रबन्ध होने लगा । इन सब बातो मे पाँच-छ माह लग जाना स्वाभाविक ही जान पडता है । अतएव अनुमान यही होता है कि शिवसिह की मृत्यु फरवरी-मार्च, सन् १६९१ ई० के लगभग हुई होगी ।

बडवो की पोथियों मे लिखा है कि शिवसिंह दक्षिण मे काम आया । यह युद्ध कहाँ हुआ था, कब हुआ था और किसके विरुद्ध हुआ था, इन प्रश्नों का कोई भी उत्तर उन पोथियों मे नही मिलता है । अतएव आवश्यक विवरण के अभाव मे इस युद्ध के बारे मे कोई भी अनुमान नही लगाया जा सकता है । केवल यही कह सकते

को सही माना है, और उसी आधार पर रेऊ ने भी इसी सन् को स्वीकार किया है (प्राचीन०, ३, पृ० ३९५) ।

किन्तु प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर जो विवरण ऊपर दिया है उससे ये दोनों ही सन्-संवत् गलत प्रमाणित हो जाते है ।

[३२]जय० अख़०, औरं०, ३५-३६, पृ० ८, ३७ ।

है कि दक्षिण मे ही किसी युद्ध में शिवसिंह मारा गया ।[३३]

इस प्रकार अठारह वर्ष की अवस्था में ही अपने पूर्वजो के समान शिवसिह भी खेत रहा। वह केवल इग्यारह वर्ष की उमर में रतलाम राज्य का अधिकारी बना और उसके कुछ ही माह बाद वह सीधा शाही सेवा मे दक्षिण जा पहुँचा, जहाँ वह मृत्यु पर्यन्त छ-साढ़े छ: वर्ष तक निरन्तर बना रहा। इस थोडे समय मे ही उसको शाही दरबार मे पर्याप्त सम्मान तथा महत्त्व प्राप्त होने लगा था। उसकी अनुपस्थिति मे घटने वाली, हाथियों की लडाई की दुर्घटना से शिवसिह को बहुत हानि हुई होगी, परन्तु उसके लिए वह व्यक्तिगत रूपेण उत्तरदायी नही बनाया जा सकता था, अतएव सम्भव था कि यदि जीवित रहता तो वह जल्द ही अपने पिछले मनसब को पुन: प्राप्त कर लेता तथा उसमे और भी वृद्धि होती।

शिवसिह को मुगल साम्राज्य की ओर से 'राजा' या इसी प्रकार का कोई भी दूसरा खिताब नही मिला था। अखबारों में सिर्फ उसका नाम ही लिखा है, उसके साथ कोई भी ख़िताब नही दिया गया। ईश्वरदास ने तत्कालीन प्रचलित तरीके के अनुसार उसका उल्लेख करते समय 'रतलाम परगने का जमीदार' शब्द लिखे है।[३४] किन्तु उसके समय के जो तीन पत्र प्राप्त हुए है उनमें उसने स्वयं को 'महाराजाधिराज महाराज' लिखा है।[३५]

---

[३३]बडवो की पोथियाँ। गुरूजी० और राणी० में शिवसिंह के बाद केशवदास के गद्दी पर बैठने का ही उल्लेख है। शिवसिंह कहाँ मरा और किस प्रकार उसकी मृत्यु हुई, इन बातो का उन दोनो में ही कोई खुलासा नहीं किया गया है।

[३४]ईश्वर०, प० १४४ ब।

[३५]मेहता०।

शिवसिंह का एक विवाह हुआ था,[३६] किन्तु उसके कोई पुत्र न हुआ। अतएव शिवसिंह के बाद उसका सौतेला भाई, केशवदास, उसका उत्तराधिकारी एव रतलाम का शासक बना।

---

[३६] शिवसिंह की यह रानी कहाँ की थी इस बारे में मतभेद पाया जाता है। गुरूजी० के अनुसार वह जेसलमेर की भटयाणी थी एवं उसका नाम जस कुँअर था। राणी० तथा बड़वों की पोथियो में उसे नरवर के सुप्रसिद्ध राजा अमरसिंह (मा० उ०, २, पृ० २२६-८) के पुत्र राजा अनूपसिंह की पुत्री होना लिखा है, जो अधिक विश्वसनीय जान पड़ता है। राणी० में उसका नाम नवरंग दे कुँअर दिया है, और बड़वों के अनुसार उसका नाम सुख दे कुँअर था।

केशवदास

अध्याय ७

केशवदास

(१६६१-१६६४ ई०)

१. केशवदास का प्रारम्भिक जीवन; उसके रतलाम की गद्दी पर बैठना तथा दक्षिण में उसकी सेवाएँ; अमीन-इ-जजिया का रतलाम में मारा जाना एवं रतलाम राज्य का अन्त; १६६१—जून, १६६४ ई०

शिवसिंह के कोई पुत्र न था, एवं उसकी मृत्यु पर उसका छोटा सौतेला भाई, केशवदास, शिवसिंह का उत्तराधिकारी बन कर रतलाम का शासक बना। उम्र में केशवदास शिवसिंह से कोई दो वर्ष के लगभग छोटा था। रामसिंह की जैसलमेर वाली रानी मनसुख दे कुँअर भटचाणी ने सन् १६७४ ई० (सं० १७३१ वि०) में केशवदास को जन्म दिया था।[1] इस प्रकार पिता की मृत्यु के समय केशवदास की उम्र कोई ९-१० वर्ष की ही थी। परन्तु केशवदास बाल्यकाल से ही निडर, साहसी और चंचल प्रकृति का था। पिता की मृत्यु के कुछ ही समय बाद स्वतन्त्र जीविका उपार्जन के उद्देश्य से केशवदास रतलाम से चल दिया।

---

[1]गुरूजी०; राणी०, बड़वो की ख्यातें। कुछ ख्यातों के अनुसार केशवदास का जन्म कार्तिक विदि २, सं० १७३१ वि०=गुरुवार, अक्तूबर ६, १६७४ ई० को हुआ था। जय० अख़०, औरं०, २८, पृ० १३-१४।

केशवदास रतलाम से बाहर जाने की सोच रहा था, उन्ही दिनो (अप्रेल-मई, १६८३ ई०) दुर्जनसिह हाडा, बूँदी पर बलपूर्वक अपना अधिकार जमाए, उस प्रदेश मे उपद्रव मचा रहा था। उस प्रदेश की इस अराजकतापूर्ण परिस्थिति से लाभ उठाने के उद्देश्य से केशवदास ने बूँदी की राह ली। परन्तु बहुत करके उसके बूँदी पहुँचने से पहिले ही औरगजेब की आज्ञानुसार मुगल सेनापति मुगल खाँ ने बूँदी पहुँच कर दुर्जनसिह को वहाँ से मार भगाया था (जुलाई, १६८३ ई०)।[२]

योगायोग से इसके कुछ ही माह बाद चादा मे वहाँ का पदच्युत राजा रामसिह विद्रोह की तैयारी करने लगा (अक्तूबर, १६८३ ई०)। अपना भाग्य आजमाने के उद्देश्य से केशवदास बूँदी से चादा जा पहुँचा, किन्तु वहाँ भी भाग्य ने उसका साथ नही दिया। नवम्बर, १६८४ ई० मे एतकाद खाँ ने चादा पहुँच कर विद्रोही रामसिह के उपद्रव का अन्त कर दिया। एतकाद खाँ के साथ केशवदास का बड़ा भाई शिवसिह भी चादा गया था।[३] बहुत करके इसी अवसर पर चादा या वही कही केशवदास से मिल कर शिवसिह ने उसे इस प्रकार यत्र-तत्र मारे-मारे न फिरने की सलाह दी। अराजकता से स्थायी लाभ उठाने मे कठिनाइयाँ तथा ऐसे लाभों की अस्थिरता व्यक्त कर शिवसिह ने केशवदास को शाही सेना मे सम्मिलित होने के लिए राजी कर लिया।

---

[२]मा० आ०, पृ० २२६, २२७, २३५; वश०, ३, पृ० २८७३-२८८३; औरंग०, ५, पृ० २७७।

[३]मा० आ०, पृ० २३९, २५०; जय० अख०, औरं०, २८ (१), पृ० २३७, २३९, २६५, ३४५-६; औरंग०, ५, पृ० ४०६-७। विशेष विवरण के लिए पहिले देखो, 'अध्याय ६–§१ चादा पर चढ़ाई'।

अतएव चादा की इस चढाई से लौटने के बाद जब शिवसिह को औरगजेब की सेवा मे अहमदनगर रहने का अवसर मिला तब जनवरी, २८ १६८५ ई० को शिवसिह ने औरगजेब की सेवा में निवेदन करवाया––"मेरा सौतेला भाई केशवदास एक-डेढ साल से बूदी और चांदा मे मारा-मारा घूम रहा है। शाही सेना मे मनसब प्रदान किए जाने के लिए केशवदास की प्रार्थना है।" औरगजेब ने इस प्रार्थना को स्वीकार कर आज्ञा दी कि शाही सेना मे सम्मिलित होने के लिए केशवदास शाही दरबार में उपस्थित होवे।[४] शिवसिह ने केशवदास को अहमदनगर आने के लिए कहला भेजा। मार्च, १६८५ ई० के अन्तिम दिनों मे केशवदास अहमदनगर आ पहुँचा और अप्रेल १, १६८५ ई० को दरबार मे औरगजेब के सामने उपस्थित होकर उसने शाही सेवा स्वीकार की, तथा एक मोहर और नौ रुपये औरगजेब की सेवा मे नजर किए, किन्तु औरगजेब ने केशवदास की इस नजर को स्वीकार नही किया।[५] इस प्रकार अपनें बड़े भाई के जीवन-काल मे ही केशवदास शाही मनसबदार बन कर मुगल सेना मे सम्मिलित हो गया था। किन्तु इस समय केशवदास का मनसब क्या था, इन प्रारम्भिक वर्षो मे उसे क्या कार्य सौपा गया था अथवा वह कहाँ किस सेनापति के साथ कब तक रहा, इन बातों का कोई विवरण नही मिलता है।

शिवसिंह की जब मृत्यु हुई, तब उसी के समान केशवदास भी सुदूर दक्षिण में शाही सेना के साथ शाही सेवा मे रत था। शिवसिह की मृत्यु होने पर केशवदास उसका उत्तराधिकारी बन कर रतलाम

---

[४] जय० अख०, औरं०, २८ (२), पृ० १३-१४।

[५] जय० अख०, औरं०, २८ (२), पृ० २२८।

का शासक बना। रतलाम राज्य सम्बन्धी सारे अधिकार उसे प्राप्त हुए, और इसी अवसर पर उसे रतलाम परगने के इस राज्य के शासक के अनुरूप मनसब भी मिला जो सभवत तीन सदी जात–पॉच सौ सवारो का था, जिनमे से चार सौ सवार दो-अस्पा थे।[६] परन्तु केशवदास के लिए यह सभव न था कि वह रतलाम लौट कर वहॉ गद्दी बैठने आदि की सारी रस्मो को पूरा कर सके। मुगल साम्राज्य के दृष्टिकोण से इन सारी व्यक्तिगत निजी रस्मो का कोई भी महत्त्व न था, एवं उनके लिए औरगजेब से मालवा जाने के लिए छुट्टी पाना असभव था; केशवदास ने भी रतलाम लौटना अनावश्यक ही समझा।

राज्य का अधिकार पाने के कुछ ही बाद केशवदास औरंगजेब के दरबार में बीजापुर पहुॅचा। कुछ दिन शाही सेवा में उपस्थित रहने के बाद केशवदास की नियुक्ति शाहजादे आजम की सेना मे की गई, तथा केशवदास को आजम की सेना तक पहुँचाने के लिए सितम्बर १८, १६९१ ई० को फरमान द्वारा गुर्जबरदारो की नियुक्ति की गई।[७] आजम इन दिनो भीमा नदी से लेकर महाराष्ट्र तक के

---

[६]जून, १६६४ ई० में केशवदास का उपर्युक्त मनसब था। अख़्ब० और०, ३८, पृ० ५२८, ६६, ५३७। गद्दी बैठने के समय प्राप्त मनसब में तदनन्तर विशेष वृद्धि का न तो कोई उल्लेख ही मिलता है और न इतनी जल्दी मनसब में ऐसी कोई वृद्धि होना सम्भव ही जान पड़ता है, अतएव यही अनुमान होता है कि यह सारा मनसब उसे रतलाम राज्य के साथ ही मिला होगा।

ख्यातो में लिखा है कि जब केशवदास रतलाम का शासक था, तब मालवा सूबे के अन्तर्गत जावरा, चोली महेश्वर और उज्जैन परगनो से भी सायर महसूल वसूल करने का अधिकार उसे प्राप्त था। बढ़ते हुए मनसब की अधिक आय का प्रबन्ध करते समय ही यह अधिकार उसे शाही दरबार से दिया गया होगा।

[७]जय० अख़्ब०, और०, ३५-३६, पृ० ८।

सारे प्रदेश मे निरन्तर उठने वाले मरहठे विद्रोहों को दबाने का प्रयत्न कर रहा था। सितम्बर मास (सन् १६९१ ई०) मे पहिले तो वह पेडगॉव (बहादुरगढ) गया और बाद मे सताजी घोरपडे के नेतृत्व मे लूट-खसोट करने वाले मरहठों को मार भगाने के उद्देश्य से वह सितारा जिले की ओर बढा।[८] इस समय केशवदास आजम की सेना मे सम्मिलित हुआ या नही, एव आजम के साथ वह कहॉ-कहॉ गया और क्या-क्या किया इसका कोई विवरण नही मिलता है। अगर वह इस समय आजम की सेना मे जा पहुँचा था तो बहुत करके जून १६९४ ई० मे जुल्फिकार खॉ की सेना मे नियुक्त होने से पहिले ही वह आजम की सेना से लौट कर शाही दरबार मे उपस्थित हो गया होगा।[९]

रतलाम की गद्दी पर बैठने के समय केशवदास दक्षिण मे ही था, और बाद मे भी रतलाम लौट कर अपने राज्य के शासन-प्रबन्ध को देखने भालने का अवसर ही उसे नही मिला। शिवसिह के पिछले वर्षों मे रतलाम का जो शासन-प्रबन्ध था उसमें केशवदास ने विशेष परिवर्तन किए होगे, यह सम्भव नही जान पडता है। इस समय भी साचोरा चौहान पृथ्वीराज और सहरूप ही रतलाम मे प्रधान

---

[८]जय० अख़०, और०, ३५-३६, पृ० ४९।

[९]अख़० औरं०, ३८, पृ० ५२८।

जब कभी किसी भी सेनानायक को एक सेनापति की सेना से दूसरे की सेना मे बदला जाता था तब अख़बार में प्रायः दोनो के नाम दिए जाते थे। जून १९, १६९४ ई० के जिस अख़बार में केशवदास की जुल्फिकार ख़ाँ की सेना में नियुक्ति का उल्लेख है उसमें इस बात का कोई जिक्र नही है कि वह किस सेनापति की सेना में तब तक था, एवं यह अनुमान होता है कि उस समय वह शाही दरबार ही में उपस्थित होगा।

मत्री थे या दूसरे कोई यह निश्चित रूपेण कहा नही जा सकता है ।

शिवसिह के शासन-काल के प्रारम्भिक वर्षो की आर्थिक कठिनाइयो का विवरण पहिले किया ही जा चुका है। शिवसिह के समय मे भी यह परिस्थिति विशेष रूप से सुधरी होगी ऐसा विश्वास नही होता है । पिछले वर्षो मे तो हाथी लडाने की दुर्घटना के फलस्वरूप जब शिवसिह का मनसब घटा दिया गया था, तब ये कठिनाइयाँ और भी अधिक बढ गई होंगी । पुन. शासको के निरन्तर बाहर रहने से शासन मे ढिलाई आ जाना स्वाभाविक ही था । पिछले १२-१३ वर्षो से रतलाम के शासक ससैन्य दक्षिण मे ही रहे । अतएव जहाँ एक ओर अनेकानेक कारणो से राज्य की आमदनी घट रही थी, और आर्थिक परिस्थिति बिगडती जा रही थी, वही सुदूर दक्षिण मे रतलाम के शासक के साथ ही उसकी सेना के भी निरन्तर युद्ध मे लगे रहने से राज्य पर आर्थिक भार निरन्तर बढ़ता ही जा रहा था । इसका अन्त होने की या उसमे कुछ भी कमी की कोई भी सम्भावना न थी । मरहठो के विरुद्ध औरगजेब का युद्ध समाप्त होता नही देख पड़ रहा था ।

शिवसिह की मृत्यु के बाद जब केशवदास गद्दी पर बैठा तो उसका मनसब भी रतलाम के शासक के अनुरूप न्यूनतम दरजे से प्रारम्भ हुआ, जिससे सन् १६९१ ई० मे राज्य की कुल आमदनी पुन. घट गई । अतएव केशवदास के शासन-काल के इन प्रारम्भिक वर्षो मे रतलाम राज्य की आर्थिक अवस्था बहुत ही बिगड गई थी । केशवदास और उसके सैनिको के लिए दक्षिण मे आवश्यक द्रव्य की माँग मे किसी भी प्रकार की कमी नही हो सकती थी, वहाँ द्रव्य भेजना पूर्णतया आवश्यक था । नतीजा यह होता था कि राज्य की ओर से मुगल साम्राज्य को दिए जाने वाले कर आदि सूबे में

स्थित उज्जैन के शाही खजाने मे ठीक समय पर जमा नही कराए जा सकते थे ।

अन्य करो के साथ ही साम्राज्य में बसने वाले इस्लाम से इतर अन्य धर्मावलम्बियों पर लगाया हुआ धार्मिक कर 'जजिया' भी राज्य की ओर से चुकाना पडता था । जजिया वसूल करने मे शाही अधिकारी औरगजेब की आज्ञानुसार पूरी-पूरी तत्परता एव बड़ी ही कडाई दिखाते थे । जजिया वसूल करने मे किसी भी प्रकार नरमी दिखाना या कर की निश्चित रकम में कुछ भी कमी करना सर्वथा अनहोनी बाते थी ।[10]

सन् १६९४ ई० के अप्रेल मास के पिछले सप्ताहो मे[11] रतलाम परगने से जजिया कर वसूल करने वाला अमीन, नसिरुद्दीन पठान, जब रतलाम पहुँचा तो राज्य की आर्थिक परिस्थिति ठीक न होने के कारण वह जजिया का कुछ भी रुपया वसूल न कर सका । किन्तु नसिरुद्दीन यो टलने वाला न था । उसने ऐसी किसी तदबीर से काम

---

[10]यह जजिया कर अकबर ने मार्च, १५६४ ई० में बन्द कर दिया था। अप्रेल २, १६७६ ई० से औरंगजेब ने यह कर पुनः लगा दिया। अकबर०, २, पृ० ३१६; मा० आ०, १७४।

इस कर की दर, इसे वसूल करने सम्बन्धी औरंगजेब की नीति, आदि के विशेष विवरण के लिए देखो—औरंग०, ३, पृ० २६८-२७५।

[11]अमीन-इ-जजिया, नसिरुद्दीन के मारे जाने की तारीख या माह का कहीं भी निश्चित उल्लेख नहीं मिलता है। जून १६, १६९४ ई० को यह समाचार बीजापुर के पास ही गलगला नामक स्थान पर औरगजेब के पास पहुँचा। ऐसे समाचार भिजवाने में अनावश्यक देरी होना सम्भव नहीं था, एवं मालवा से वहाँ तक खबर पहुँचने में ६-७ सप्ताह से अधिक नहीं लगे होगे। इसी से यह अनुमान किया गया है कि यह दुर्घटना अप्रेल के अन्तिम सप्ताहों में हुई।

लेने का निश्चय किया जिससे रतलाम राज्य के स्थानीय कर्मचारी कर का पूरा-पूरा रुपया शीघ्र ही चुका दे। ख्यातो मे लिखा है कि तीन दिन के निरन्तर प्रयत्न के बाद भी जब नसिरुद्दीन जजिया वसूल नही कर पाया, तब चौथे दिन उसने पानी भरने को पनघट पर जाती हुई राजघराने की दासियो के घडे छिनवाकर मँगवा लिए। इस समय राजघरानेका कोई भी मर्द व्यक्ति रतलाम मे नही था, राजपरिवार की स्त्रियाँ ही वहाँ थी। राजधानी एव राजपरिवार की रक्षा के लिए साचोरा वीर भगवानदास के वशज[१२] वहाँ नियुक्त थे। घडे छिन जाने पर जब उन दासियो ने रनिवास में जाकर नसिरुद्दीन की इस अनुचित कार्यवाही की शिकायत की तब रानियो ने पृथ्वीराज चौहान तथा सुलतानसिह चौहान को उचित प्रबन्ध करने के लिए कहलवाया। ये राजपूत वीर क्रोध के मारे उबल पडे और आगा-पीछा सोचे बिना ही अपने राजपूत साथियों को लेकर नसिरुद्दीन तथा उसके सवारो पर टूट पडे। नसिरुद्दीन और उसके कुछ साथी मारे गए[१३] और बाकी बचे हुए सवार भाग

[१२]ख्यात० में कोई नाम नहीं दिए है, केवल 'भगवानदास के वंशज' ही लिखा है; सम्भव है कि भगवानदास का तीसरा पुत्र, चौहान पृथ्वीराज, जो सन् १६८६ ई० में शिवसिंह का प्रधान मन्त्री था, इस समय भी उसी पद पर नियुक्त हो। भगवानदास के ज्येष्ठ पुत्र, मानसिंह की मृत्यु सन् १६९३ ई०(स० १७५० वि०)में हो गई थी, एव इस समय मानसिंह का ज्येष्ठ पुत्र सुलतानसिंह भी राजघराने और राजधानी की रक्षा के लिए रतलाम में नियुक्त होगा।

[१३]ख्यातोंमें लिखा है कि जिस समय चौहानों ने नसिरुद्दीन पर यह हमला किया उस समय वह रतलाम के राजकीय महलों के पास ही अपने घोड़े पर चढ रहा था। राजपूतो ने नसिरुद्दीन का सिर काट डाला जो महलो के पास गिरा, और धड़ को लिए हुए घोड़ा भाग खड़ा हुआ; वह धड़ आगे जाकर रतलाम शहर के बाजार में गिरा। नसिरुद्दीन के सिर और धड़ जहाँ गिरे थे वहाँ ही उन्हें दफना

खडे हुए। राजपूतो ने दासियों के घडे राजरानियों की सेवा में प्रस्तुत कर सन्तोष का अनुभव किया होगा। किन्तु उनकी इस पूर्णतया विवेकविहीन कार्यवाही का जो भयकर परिणाम हुआ, सम्भवत तब उन्हे उसकी आशका भी न हुई थी।

रतलाम मे यह दुर्घटना घटी, तब केशवदास अपने सैनिकों के साथ शाही दरबार में ही उपस्थित था। औरगजेब इस समय पिछले दो वर्षो से बीजापुर से कोई ३२ मील दक्षिण-पश्चिम में कृष्णा नदी के किनारे गलगला नामक स्थान पर डेरा डाले ठहरा हुआ था।[१४] ऐसा अनुमान होता है कि जून, १६९४ ई० के प्रारम्भिक दिनो मे औरगजेब केशवदास से प्रसन्न एव उसकी सेवाओ से सन्तुष्ट था, जिससे जून, १८, १६९४ ई० को उसने हुक्म दिया कि केशवदास के मनसब तथा पद का पूरा-पूरा ब्यौरा पेश किया जावे।[१५] परन्तु केशवदास का दुर्भाग्य यो विफल होने वाला न था। दूसरे ही दिन औरगजेब को रतलाम मे अमीन-इ-जजिया (नसिरुद्दीन) के मारे जानेका व्रिवरण ज्ञात हुआ। केशवदास के गुमाश्ते की ऐसी कार्य-वाही का फल केशवदास को भुगतना पडा। औरगजेब इस उद्दण्डता का वृत्तान्त सुन कर बहुत ही क्रुद्ध हुआ और उसने केशवदास को तत्काल ही रतलाम की जागीर और जमीदारी से अलग कर दिया। रतलाम का परगना जब्त कर शाही इलाके मे मिला दिया गया। शाह-जादा आजम इस समय मालवा का सूबेदार था, अतएव रतलाम परगने की

दिया, और दोनो स्थानो पर दो अलग-अलग कब्रे बनवाई गई, एक तो महलो के पास और दूसरी शहर में। कुछ समय पहिले तक ये दोनो कब्रें रतलाम में विद्यमान थीं। गुरूजी०।

[१४] मा० आ०, पृ० ३४५, ३७०।

[१५] अख़० और०, ३८, पृ० ५२६।

यह जब्त जागीर और जमीदारी आजम को जागीर मे दे दी गई तथा आजम के कार्यकर्ताओ को उस पर अधिकार कर लेने का हुक्म हुआ। केशवदास का मनसब इस समय तीन सदी जात-पॉच सौ सवारो का था, जिनमे से चार सौ सवार दो-अस्पा थे। औरगजेब ने इसमे भी एक सदी जात–पाँच सौ सवारो की कमी कर दी और हुक्म दिया कि केशवदास अपने सैनिकों के साथ जुल्फिकार खॉ की सेना मे सम्मिलित हो जावे।[१६] जून, १६९४ ई० मे जुल्फिकार खॉ सुदूर दक्षिण मे पालमकोटा स्थान पर घेरा डाले पडा हुआ था। जून के अन्तिम सप्ताह मे पालम-

---

[१६]अख़० औरं०, ३८, पृ० ५२८, ६६, ५३७।

केशवदास का जो मनसब यहाँ दिया है, वह जून १९ और २०, १६९४ ई० के अख़बारो के अनुसार है। अख़० औरं०, ३८ पृ० ९९ के अनुसार इस समय केशवदास का मनसब पाँच सदी जात-चार सौ सवारो का था। अख़० औरं०, ४०, पृ० ५९-६०, पर यह मनसब पॉच सदी जात-पाँच सौ सवार होना लिखा है। इनमें से कौनसा उल्लेख ठीक है यह निश्चित करना आवश्यक हो जाता है।

रतलाम परगना जब्त होते समय केशवदास का मनसब ५ सदी ज़ात का था, यह बात जुलाई, १६९४ ई० और सितम्बर १६९६ ई० में औरंगजेब को निवेदन की गई थी, और इसी बात को ध्यान में रख कर औरंगजेब ने सन् १६९६ ई० में केशवदास का मनसब पुन: पॉच सदी जात का कर दिया था। इन सबसे यह स्पष्ट हो जाता है कि जून १९ और २०, १६९४ ई० को अर्ज़ की गई तीन सदी जात के मनसब की बात ठीक न थी।

मेरे ग्रन्थ 'मालवा में युगान्तर' के पृ० ८६ पर रतलाम परगने का सन् १६९५ ई० में जब्त होना, एवं इन अख़बारो की तारीखें जून ८ और ९, १६९५ ई० लिखी है। किन्तु यह ठीक नही। जुलूसी सन् को ईसवी सन् मे पलटते समय तब पूरे एक वर्ष की भूल हो गई थी।

अख़बारों में अमीन-इ-जजिया का नाम नहीं दिया है, किन्तु ख्यातों से ज्ञात होता है कि उसका नाम नसिरुद्दीन था।

कोटा जीत कर वह तिरुवाडी होता हुआ शाही सेना के केन्द्र वाण्डीवाश को लौटा।[१७] अतएव केशवदास भी शाही आज्ञानुसार गलगला से अपने सैनिकों के साथ वाण्डीवाश की ओर रवाना होने के लिए तैयार हुआ। इस दुर्घटना के लिए केशवदास ने किसे दोषी ठहराया तथा उसे क्या दण्ड दिया गया इसका कोई भी विवरण कही नही मिलता है। एक बात अवश्य निश्चित रूपेण कही जा सकती है कि इस घटना के बाद साचोरा वीर भगवानदास के वशज केशवदास का साथ छोड कर रतनसिह के पॉचवे पुत्र, एव केशवदास के काका, छत्रसाल के पास जा पहुँचे। तब से उस घराने के साथ उनका सम्बन्ध आज तक बराबर बना हुआ है।[१८]

रतलाम परगने की जब्ती के हुक्म की सूचना अगस्त, १६९४ ई० के प्रारम्भिक दिनो मे रतलाम पहुँची। राजपरिवार और उनके हितैषियों मे गहरा शोक छा गया। अब आगे उनका रतलाम मे रहना सभव न था,

---

[१७] औरंग०, ५, पृ० ९९-१००।

[१८] सन् १७०२ ई० के लगभग वर्तमान रतलाम राज्य की स्थापना के अनन्तर ही छत्रसाल ने भगवानदास के ज्येष्ठ पुत्र मानसिंह के बडे लड़के सुलतानसिंह को पंचेड़ की जागीर दी थी, जो आज भी सुलतानसिंह के वशजो के अधिकार में है।

रतलाम०, पृ० १४८-९, पर लिखा है कि रतनसिह ने भगवानदास को पचेड़ की वर्तमान जागीर दी थी, तब से इस ठिकाने की स्थापना हुई; किन्तु यह कथन ठीक नहीं। उन दिनों अपने सामन्तो को इस प्रकार वशपरम्परागत जागीरे देने की प्रथा प्रचलित न थी। पुनः यदि रतनसिह या उसके उत्तराधिकारियो ने यदि ऐसी कोई जागीरें भगवानदास या उसके वशजों को सन् १६९४ ई० से पहिले रतलाम परगने में दी भी होगी तो सन् १६९४ ई० मे रतलाम परगना जब्त होने पर वे सब भी आप ही आप जब्त होकर खालसा हो गई होगी। मुग़ल शासन-पद्धति का यही नियम था एवं उसका पालन इस मामले में भी अवश्य हुआ होगा।

भगवानदास के तीसरे पुत्र, पृथ्वीराज को भी छत्रसाल ने माथालूला की जागीर दी थी, परन्तु अब यह गॉव पृथ्वीराज के वंशजों के अधिकार में नहीं रहा।

एवं केशवदास के घराने ने रतलाम से रवाना होने की तैयारी प्रारम्भ कर दी। रतनसिह के साथ जालोर से कई घराने रतलाम आए थे। पुरोहित और व्यास, कुल-गुरु और अन्य नेगी, सैनिक और सेनानायक, राज्य-कर्मचारी एव वणिक्, नाई तथा बारी, सुथार और भगियो के इन घरानो मे से कोई भी प्रधान व्यक्ति केशवदास के घराने का साथ छोडने को तैयार न थे। जसराज बारहठ, खडिया जगा एव अमरदास चौहान के उत्तराधिकारी वशजो ने भी रतलाम से मुख मोड लिया। ये सव रतलाम से राजघराने के साथ ही चलने को उतारू हो गये।[१०]

अगस्त १४ या १५, १६९४ ई० के लगभग, मालवा के सूबेदार शाहजादा आजम के कार्यकर्ता भी परगने पर अधिकार करने को रतलाम आ पहुँचे। केशवदास के राजपरिवार के रवाना होने की तैयारियाँ अब तक पूरी न हो पाई थी। किन्तु आजम के कर्मचारियों को सब्र न हुई, वे ताकीद करने लगे कि राजमहलों को छोड कर केशवदास का राजपरिवार शीघ्रातिशीघ्र रतलाम से रवाना हो जावे। बातचीत मे इसी प्रकार तीन-चार दिन बीत गए, किन्तु कोई भी निश्चय नही हो पाया। अन्त मे अगस्त १८, १६९४ ई० का प्रातकाल हुआ। उस

---

[१०]मारवाड़ से जालोर होकर रतलाम साथ आने वाले इन सब घरानो की प्रायः सब प्रधान शाखाओ के मुखिया केशवदास की सेवा में थे, और उसी के राजघराने के साथ ही उन्होंने भी रतलाम छोड़ दिया। इन घरानो के कई एक छोटे भाई-बेटे तथा अन्य सगे-सम्बन्धी रतनसिंह के अन्य छोटे पुत्रो के समान ही छत्रसाल की सेवा में भी थे। छत्रसाल ने जब इस वर्तमान रतलाम राज्य की स्थापना की तब वे सब भी रतलाम में आ बसे। रतलाम०, पृ० १५, पर मारवाड से साथ आकर रतलाम में बस जाने वाले जिन घरानों का उल्लेख है, वे सब यों सन् १७०२ ई० के बाद ही रतलाम में बसे थे, उससे पहिले नहीं। पहिले बसने वाले प्रायः सब घराने तब तक वहाँ से चल दिए थे।

दिन भाद्रपद कृष्ण १२ थी, वह वत्स-पूजा का दिन था। प्रात काल की शुभ वेला मे गाय और बछडे की पूजा के लिए केशवदास की रानियाँ तैयारियाँ करने लगी। किन्तु आजम के कर्मचारियो को अब धैर्य न रहा, वे केशवदास की रानियो को पूजा भर के लिए भी रतलाम के राजमहलो मे ठहरने देने के लिए अब तैयार न थे। शाही कार्यकर्ताओ के आगे बेबस रानियो की कुछ न चली, वे वत्स-पूजा न कर सकी। पूजा का शुभ मुहूर्त ही रतलाम के महलो से उनकी बिदाई की करुण वेला बन गया। पूजा के लिए किए हुए शृगार मे ही उन रानियो ने राजमहलो को त्याग दिया। वे शोकमग्ना रानियाँ इस प्रकार अपने साथियो के साथ अगस्त १८, १६९४ ई० के दु खपूर्ण प्रभात मे रतलाम से चल दी। केशवदास के राजपरिवार के साथ ही रतनसिह के उत्तराधिकारियो के साथियो, सेनानायको, कर्मचारियो तथा भृत्यो के कुटुम्बियो ने भी रतलाम से बिदा ली।[२०]

रतनसिह ने मई, १६५६ ई० मे जिस रतलाम राज्य की स्थापना की थी, पूरे ३८ वर्ष बाद जून, १६९४ ई० मे उसका अन्त हो गया। अमीन-इ-जजिया के मारे जाने की दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटना के फलस्वरूप रतलाम के इस प्रथम राज्य का अस्तित्व ही मिट गया। रतलाम परगना जब्त हो कर शाही खालसा इलाके मे मिला दिया गया, पिछले अडतीस वर्षों की परम्परा का अन्त हो गया। सात-आठ साल तक वह खालसा ही रहा।

सन् १७०२ ई० के बाद जब यही परगना रतनसिह के पाँचवे पुत्र, छत्रसाल को जागीर मे मिला, तब रतलाम के वर्तमान एव इस दूसरे राज्य की नए सिरे से स्थापना हुई। एक बार इसके जब्त

[२०] गुरूजी०; राणी०; बड़वों की अन्य ख्याते।

हो जाने के बाद छत्रसाल इस बात के लिए अवश्य ही उत्सुक रहा होगा कि रतलाम का जो परगना उसके प्रतापी पिता, पूज्य बड़े भाई और प्यारे भतीजो के अधिकार मे बरसो रहने के बाद दुर्भाग्यवश जब्त हो गया था, उसी पर अब पुन उसका आधिपत्य हो जावे। अतएव अपने नए मनसब की जागीर चुनते समय उसने रतलाम के लिए विशेष रूपेण आग्रह किया होगा। रतलाम परगने को लेकर ही क्रमश ये दो राज्य बारी २ से स्थापित हुए, परन्तु इस कौटुम्बिक सम्बन्ध के अतिरिक्त छत्रसाल के इस दूसरे राज्य की रतनसिंह द्वारा स्थापित पहिले राज्य के साथ कोई राजनैतिक एकता या सम्बन्ध तथा किसी भी प्रकार की ऐतिहासिक परम्परा नही पाई जाती। किन्तु परम्परागत दन्तकथाएँ तथा अनैतिहासिक विश्वास आसानी से नष्ट नही होते। आख्यायिकाओ, ख्यातो तथा जन-साधारण मे प्रचलित भ्रमपूर्ण धारणाओ का घना कुहरा कठोर ऐतिहासिक सत्य को आच्छादित कर उसे धुँधला, अस्पष्ट और भ्रान्तिपूर्ण बना देता है। केशवदास और छत्रसाल के कौटुम्बिक सम्बन्ध ने अनायास ही इन गलत भावनाओ को अधिकाधिक सुदृढ बना कर राजनैतिक परम्परा तथा श्रृंखलाबद्ध ऐतिहासिक एकता के इस काल्पनिक और पूर्णतया अस्तित्व-विहीन सूत्र को एक मूर्त सत्य एव विश्वसनीय तथ्य का-सा रूप प्रदान किया, जिससे ही विगत दो शताब्दियो मे प्रचलित अनेकानेक भ्रान्तिपूर्ण भावनाओ और अनैतिहासिक मिथ्यावाद का जन्म हुआ और यों ऐतिहासिक सत्य की पुनीत धारा कलुषित हो गई।

२. राज्य-विहीन केशवदास; दक्षिणी भारत में उसकी सेवाएँ और सीतामऊ राज्य की स्थापना; १६६४-१७०१ ई०

रतलाम परगने की जब्ती और केशवदास के राजघराने के रत-

लाम छोडने के साथ ही रतलाम के इस प्रथम राज्य का अन्त हो गया, किन्तु रतलाम के पदच्युत राजघराने का इतिहास चलता ही गया। रतलाम परगना खोकर, अपने मनसब मे कमी होने पर भी केशवदास शाही सेना मे बराबर बना रहा। केशवदास के राजघराने को रतलाम के अपने पैतृक राजमहल छोड़ने पडे, किन्तु अपने रहने के लिए उन्होंने अन्यत्र व्यवस्था कर ही ली। और जब तक केशवदास ने अपने नए राज्य की स्थापना न कर ली वह रतलाम का पदच्युत शासक ही कहलाता रहा। पदच्युत शासक का इतिहास उसके भूतपूर्व राज्य के इतिहास का ही अग होता है, एव रतलाम के पदच्युत शासक राज्य-विहीन केशवदास के इन सात वर्षो का विवरण रतलाम के प्रथम राज्य के इतिहास के उपसहार के रूप मे ही यहाँ दिया गया है।

अमीन-इ-जजिया के मारे जाने की दुर्घटना से क्रुद्ध होकर औरगजेब ने जून १९, १६९४ ई० को रतलाम परगना जब्त कर शाहजादे आजम को जागीर मे दिए जाने का हुक्म दिया था। केशवदास का मनसब घटा दिया गया था और शाही दरबार मे उपस्थित न रहने का भी हुक्म मिल चुका था। अमीन-इ-जजिया के मारे जाने की सगीन घटना की पूरी-पूरी हकीकत ठीक समय पर न मिलने के अपराध मे रतलाम परगने के खबर-नवीस को भी बदल दिया गया और बहरोज के लडके अफरासियाब को मालवा का अमीन-इ-जजिया नियुक्त किया।[२१] इसी समय औरगजेब को ज्ञात हुआ कि जून मास मे केशवदास का जो मनसब उसे निवेदन किया गया था, वह ठीक न था, उसका मनसव पॉच सदी जात था, किन्तु उस समय उसका मनसब केवल तीन सदी जात ही अर्ज किया गया था। औरगजेब ने एक बार उसका पुराना

---

[२१] अख्ब० औैर०, ३८, पृ० २२, ६६, १०२।

मनसब बहाल रखने की सोची, परन्तु अन्त मे उसने अपना इरादा बदल दिया और रतलाम परगने की जब्ती आदि का हुक्म न बदला।[२२] यों अब केशवदास का मनसब घट कर केवल दो सदी जात का ही रह गया था। किन्तु वह शाही सेना मे उसी तत्परता के साथ बना रहा।

केशवदास को हुक्म मिला था कि वह जुल्फिकार खॉ की सेना मे सम्मिलित हो जावे। जुल्फिकार खाँ इस समय सुदूर दक्षिण मे पालम-कोट जीत कर वाण्डीवाश लौट रहा था। फरवरी, सन् १६९८ ई० मे जिजी का किला जीतने के बाद तक जुल्फिकार खॉ वही बना रहा।[२३]

---

[२२]अख़० औरं०, ३८, पृ० ९९। जुलाई १५, १६९४ ई० को औरंगजेब को निवेदन किया गया कि केशवदास का असल मनसब पॉच सदी जात का था। इसी अख़बार में रतलाम परगना बहाल रखने और केशवदास के मनस्ब में एक सदी जात–५०० सौ सवारों की वृद्धि करने की बात का भी उल्लेख है। जब्ती के हुक्म के कुछ ही सप्ताह बाद मनसब में वृद्धि की यह बात कुछ आश्चर्यजनक अवश्य है और इतिहासकार के लिए एक उलझी हुई गुत्थी उपस्थित कर देती है।

परन्तु जुलाई १५, १६९४ ई० के अन्य अख़बारो मे इस अखबार में दिए गए अन्य सब इनामो और तरक्कियो के साथ केशवदास सम्बन्धी इस उल्लेख को नहीं दुहराया गया, जिससे यह आशंका उत्पन्न हो जाती है कि केशवदास सम्बन्धी यह निर्देश बाद में हुक्म के रूप में परिणत नहीं किया गया (अख० और०, ३८, पृ० ९९-१०२)। पुनः अख़० औरं०, ४०, पृ० ५९-६० के अनुसार सितम्बर ३, १६९६ ई० से कुछ ही पहिले केशवदास को पॉच सदी जात–दो सौ सवारो का मनसब पुनः मिल गया था। एव यह स्पष्ट हो जाता है कि जुलाई १५, १६९४ ई० (पृ० ९९) के अख़बार में दी गई बहाली और मनसब में तरक्की की बात केवल इरादा-मात्र ही रह गई, और उस सम्बन्धी कोई निश्चित हुक्म तब नहीं दिया गया था।

[२३]औरग०, ५, पृ० ९९-१०९।

सन् १६९४ या सन् १६९५ ई० मे लिखे हुए केशवदास के कोई पत्र या सनदें प्राप्य नही है, एव उसकी तत्कालीन गति-विधि पर कोई भी प्रकाश नही पडता है। एव जून, १६९४ ई० या उसके बाद केशवदास जुल्फिकार खाँ की सेना मे सम्मिलित हुआ या नही यह बात निश्चित रूपेण नही कही जा सकती। यदि वह उस सेना मे शामिल भी हुआ होगा तो सन् १६९६ ई० मे उसकी वहाँ से वदली हो गई होगी, क्योकि अक्तूबर, सन् १६९६ ई० मे केशवदास अहमदनगर मे था।[२४]

उधर अगस्त १८, १६९४ ई० को रतलाम के राजमहलो को त्याग कर केशवदास की रानियाँ, राजपरिवार एव सगी-साथी वहाँ से चल दिए। ख्यातो मे लिखा है कि कुछ समय तक वे यह निश्चित न कर पाए कि उन्हे कहाँ जाना चाहिए। यह सारी आपत्ति इतनी अचानक आ पड़ी थी कि उन्हे कोई राह सूझती न थी और न केशवदास ही उन्हे कोई स्पष्ट आदेश दे सकता था। सन् १६९५ ई० इसी प्रकार कठिनाइयो मे यत्र-तत्र बिताया और अन्त मे उन्होने सीतामऊ मे रहने का निश्चय कर वहाँ की राह ली। रतनसिह के घराने के साथ इस स्थान का बहुत सम्बन्ध रहा था। केशवदास के काका करणसिह और जेतसिह का क्रमश. इस स्थान और उसके आस-पास के प्रदेश पर आधिपत्य भी रह चुका था। यो जनवरी १४, १६९६ ई० (माह विदि ५, १७५२ वि०) को केशवदास के राजकुटुम्ब ने सीतामऊ पहुँच कर वहाँ अपना डेरा डाला।[२५]

सन् १६९६ ई० केशवदास के लिए लाभदायक प्रमाणित हुआ। उसका राजकुटुम्ब सीतामऊ मे निवास कर वहाँ अपना कौटुम्बिक कारो-

---

[२४] राजव्यास०, कार्तिक सु० १३, सं० १७५३ वि० (अक्तूबर २८, १६९६ ई०) को लिखे गए सनद एव पत्र।

[२५] गुरूजी०; वडवो की अन्य ख्यातें।

बार सगठित करने का आयोजन करने लगा। इन्ही दिनो केशवदास का मनसब पुन बढा कर पॉच सदी जात–दो सौ सवारों का कर दिया गया।[२६] इसी अवसर पर उसे अपने मनसब के अनुरूप नई जागीर भी मिली थी। उसे कुछ जागीर तो धार परगने मे प्राप्त हुई थी और बहुत करके इसी समय उसे नाहरगढ का परगना भी मिला था।[२७] रतलाम का परगना एक बार खोकर केशवदास उसे दूसरी बार पुन. प्राप्त न कर पाया। अमीन-इ-जजिया के मारे जाने के अपराध मे जो परगना जब्त हुआ था वह उसे ही पुन किस प्रकार मिल सकता था ? वह परगना खालसा ही रहा।

---

[२६] अख० औ़र०, ४०, पृ० ५९-६०। सितम्बर ३, १६९६ ई० के अख़बार के अनुसार केशवदास को यह मनसब हाल ही में प्राप्त हुआ था। यद्यपि केशवदास की इस पुनः नियुक्ति को बहुत समय न बीता था, तथापि सब दूर इसका विवरण फैल जाने इतना काल अवश्य ही बीत चुका था। एव अनुमान होता है कि केशवदास को यह मनसब सन् १६९६ ई० के प्रारम्भिक महीनो में ही प्राप्त हुआ होगा।

[२७] केशवदास ने धार परगने में बगड़ी और वाकली गॉव अपने कर्मचारियो को जागीर में दिए थे, जिससे अनुमान होता है कि केशवदास को धार परगने का कुछ प्रदेश जागीर में मिला होगा। मेहता०; राजव्यास०।

नाहरगढ़ का कस्बा वर्तमान ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत मन्दसौर शहर से कोई १२ मील उत्तर-पूर्व में स्थित है। अकबर के समय उस नाम का कोई भी अलग परगना न था; बहुत करके वह कयामपुर परगने का ही एक हिस्सा रहा हो (आइन०, २, पृ० २०८)। परन्तु केशवदास को जब नाहरगढ़ और उसके पास के प्रदेश जागीर में मिले तब वह एक अलग ही परगने के रूप में संगठित हो गया था। केशवदास को नाहरगढ़ परगना जागीर में शाही सनद के साथ औरगजेब के समय में मिला था। मरहठो के आक्रमणों के समय यह परगना सीतामऊ राज्य के अधिकार से निकल गया। उस परगने की वह शाही सनद भी सीतामऊ राज-

नया मनसब और नई जागीर पाकर केशवदास ने अपना कौटुम्बिक प्रबन्ध और जागीर का शासन सगठित करने के लिए व्यास प्रतापसिह को अपना प्रधान मत्री नियुक्त किया और सारा शासन-प्रबन्ध उसे सौप दिया। प्रतापसिह व्यास हरी और व्यास रघुनाथ का वशज और उत्तराधिकारी था, एव इसी सुअवसर पर केशवदास ने उसे अपने राजघराने का राजव्यास नियुक्त कर व्यास घराने के परपरागत नेग-दस्तूरों की सनद लिख दी और उसे धार परगने मे स्थित वाकली गॉव पुण्यार्थ दिया।[२८] पुन. यद्यपि केशवदास को नाहरगढ परगना प्राप्त हो गया था, किन्तु उसने अपने राजघराने को सीतामऊ ही बने रहने का आदेश दिया।

केशवदास का भाग्य-सितारा पुनः ऊँचा चढ रहा था। पॉच सदी जात-दो सौ सवारो का मनसब उसे प्राप्त हो चुका था, किन्तु वह चाहता था कि रतलाम परगना जब्त होने से पहिले उसका जो मनसब था वह उसे पुनः प्राप्त हो जावे। सितम्बर ३, १६९६ ई० को औरंगजेब की सेवा मे किशनगढ राज्य के तत्कालीन शासक मानसिह राठौड़ की[२९]

घराने के सग्रह में न रही। एवं इस परगने की प्राप्ति का ठीक सन्-संवत् ज्ञात नहीं हो सका है।

सन् १६९६ ई० में केशवदास को जब पुनः पॉच सदी जात–दो सौ सवारो का मनसब प्राप्त हुआ, तब उसके अनुरूप एक बड़ी जागीर अवश्य ही उसे प्राप्त हुई होगी। एव सब कुछ विचार करने पर यही अनुमान होता है कि नाहरगढ का यह परगना केशवदास को इसी अवसर पर प्राप्त हुआ होगा।

[२८] राजव्यास०।

[२९] मानसिह राठौड जोधपुर के मोटे राजा उदयसिंह के आठवें पुत्र किशनसिंह का प्रपौत्र था एवं दूर के रिश्ते से केशवदास उसका चचेरा भतीजा होता था। अतएव केशवदास की सहायता करने के लिए उसका प्रयत्नशील होना स्वाभाविक ही था।

एक अर्जी पहुँची, जिसमे उसने केशवदास के मनसब मे वृद्धि के लिए विशेष रूप से प्रार्थना की थी। मानसिह राठौड की इस सिफारिश पर विचार कर औरगजेब ने केशवदास के मनसब मे दो सौ सवार और बढा दिए, जिससे अब उसका मनसब पॉच सदी जात—चार सौ सवारो का हो गया।[३०] इस बढे हुए मनसब की जागीर के लिए दिए जाने वाले गॉवो का मई, १६९७ ई० तक कुछ भी खुलासा नही हो पाया था। मुगल शासन मे बहुत कुछ ढिलाई आ गई थी, और रिश्वत आदि भी बहुत चलती थी, अतएव केशवदास ने एक पत्र मे अपने प्रधान मत्री व्यास प्रतापसिह को लिखा था, "और आगे तो उज्जैन में अपनी जेब से पैसे खर्च करना होगे। इस प्रकार उज्जैन मे अपने पैसे जो खर्च करने पड़े वे खर्च करो और अपना भविष्य ठीक तौर पर निश्चित करवा लो। कही ऐसा न होने पावे कि अच्छे-अच्छे गॉव तो सारे ही हाथ से निकल जावे और वे ही गॉव हमे मिले जिनमे सिर्फ टिटहरियॉ ही बैठी हो (याने जहॉ सारी जमीन पडत हो और नाम-मात्र को भी खेती-बाडी न हो)।"[३१] गॉवो का यह मामला बहुत जल्द तय नही हुआ और सम्भवत: जनवरी, १६९९ ई० तक चलता ही रहा। जनवरी २४ के एक पत्र में केशवदास ने लिखा था—"अब सीतामऊ जागीर मे मिला है, जिसका परवाना लेकर (दूत) आ रहा है।" इसी के बाद केशवदास ने सीतामऊ

इन दिनों मानसिह राठौड़ को शाहजादे मुअज्जम की सेना में सम्मिलित होने का हुक्म मिला था। मुलतान की सूबेदारी पर नियुक्त होने पर शाहजादे मुअज्जम को औरगजेब की आज्ञानुसार जुलाई १३, १६९६ ई० के दिन आगरा से मुलतान के लिए रवाना होना पड़ा (मा० आ०, पृ० ३८२) एव मानसिह को भी इस समय मुलतान ही जाना पड़ा होगा।

[३०]अख़० औरं०, ४०, पृ० ५९-६०।

[३१]राजव्यास०।

के पास के कुछ गाँव अपने प्रधान मत्री व्यास प्रतापसिह को जागीर में दिए थे ।[३२]

इधर पिछले साल-दो साल से कोकण मे मरहठो का विशेष उपद्रव न था। मरहटा राजा राजाराम जिजी के किले मे घिरा हुआ था और मरहठे सेनापति सता घोरपडे और धन्ना जादव कर्नाटक और दुडेरी के आस-पास उलझे हुए थे। परन्तु सन् १६९५ ई० के अन्तिम दिनों मे मुगल सेनापतियो को कई युद्धो मे विफलता का सामना करना पडा था, एव कोकण मे पुनः मरहठो के उपद्रव की आशका बढ रही थी, जिससे फरवरी, १६९६ ई० मे औरगजेब ने शाहजादा आजम को ससैन्य इस्लामपुरी से पेडगाँव की ओर भेजा। आजम ने जुन्नर परगने का दौरा किया और अन्त मे उसने पेडगाँव (बहादुरगढ) को अपना प्रधान सैनिक केन्द्र बनाया। आगामी तीन वर्षो तक आजम पेडगाँव मे ही बना रहा। इस समय इस प्रदेश की सुरक्षा और सैनिक प्रबन्ध के सिलसिले मे ही सम्भवतः केशवदास को भी अहमदनगर भेज दिया गया था, और अक्तूबर, १६९६ ई० के अन्तिम दिनो मे केशवदास वही था ।[३३]

किन्तु कर्नाटक मे तब तक जिजी का किला मुगलों के अधिकार मे नही आया था। जुल्फिकार खाँ की सेना का औरगजेब के साथ निरन्तर

---

[३२]सीतामऊ राजघराने के सग्रह में प्राप्य पत्र; राजव्यास० ।

सितम्बर ३, १६९६ ई० के बाद अप्रेल-मई, १६९९ ई० में ही केशवदास का मनसब बढ़ाया गया, एव अनुमान यही होता है कि सीतामऊ और आस-पास के गाँवो का परवाना सितम्बर, १६९६ ई० में की गई वृद्धि के सिलसिले में ही जारी किया गया होगा। यह परवाना प्राप्त होने के बाद ही केशवदास ने अपने प्रधान मन्त्री और राजव्यास प्रतापसिंह को चगत्या और चीकला गाँव अक्तूबर १८ और दिसम्बर ५, १६९९ ई० को क्रमशः दिए। राजव्यास० ।

[३३] औरंग०, ५, पृ० १२३-४; राजव्यास० ।

लगाव रह नही पाता था। जुल्फिकार खाँ के लिए भेजा जानेवाला खजाना भी कई बार राह मे लूट लिया जाता था। समय समय पर सता घोरपडे अपने दल-बल के साथ इस ओर धावा कर देता था। सन् १६९६ ई० के पिछले दिनो मे औरगजेब ने शाहजादे आजम के पुत्र बेदार बख्त को ससैन्य भेजा था कि मरहठो को तुगभद्रा के उत्तरी किनारे से मार भगावे। जुल्फिकार खाँ भी अर्काट से उत्तर की ओर बढा और बगलोर से कोई ७५ मील उत्तर मे स्थित पेनुकुण्डा नामक स्थान मे बेदार बख्त से आ मिला, किन्तु तब तक मरहठे सैनिको के दल युद्ध किए बिना ही भाग खडे हुए थे।[३४] यो इस बार तो आपत्ति टल गई थी, किन्तु उसका अन्त नही हो सका था।

और फरवरी, १६९८ ई० मे जिजी का किला जीत कर भी जब मरहठे के विरोध का अन्त न हुआ तब तो औरगजेब कोकण मे उन पर पूरे दल-बल के साथ चढाई करने की तैयारी करने लगा, उस समय उसने कर्नाटक की राह को खुली रखने का प्रबन्ध करना आवश्यक समझा। इन प्रयत्नो मे पेनुकुण्डा जैसा महत्वपूर्ण किला किसी विश्वसनीय सेनानायक को सौपना आवश्यक जान पडा, एव केशवदास को सन् १६९८ ई० के अन्तिम दिनो मे पेनुकुण्डा का किलेदार और फौजदार नियुक्त किया। केशवदास इस पद पर आगामी पाँच वर्षो तक निरन्तर बना रहा।[३५]

---

[३४] औरंग०, ५, पृ० १०४।

[३५] औरंग०, ५, पृ० १०६, १३०।

केशवदास की नियुक्ति पेनुकुण्डा में कब हुई यह निश्चित रूपेण ज्ञात नहीं हो सका है। केशवदास के पेनुकुण्डा होने की प्रथम सूचना वहाँ से लिखे गए उसके जनवरी २४, १६९९ ई० के पत्र से मिलती है। (सीतामऊ राजघराने के संग्रह में प्राप्य पत्र)। अप्रेल-मई १६९९ ई० के अखबार से ज्ञात होता है कि वह

केशवदास जिस समय पेनुकुण्डा मे नियुक्त था तब अप्रेल, १६९९ ई० के प्रारम्भिक दिनो मे एक दिन पेनुकुण्डा मे नियुक्त सारे सैनिको ने बहुत उपद्रव मचाया। मुहम्मद जाफर खानाजाद ने उन सैनिको से कहा था कि उन्हे आतिश खॉ से जो कुछ भी मिला उस सब की रसीद वे उसे दे दे, जो सैनिको को मजूर न था। मुहम्मद जाफर की इस मॉग के विरोध मे उन सैनिको ने उसके घर को जा घेरा। केशवदास ने इन विद्रोही सैनिको को दबाने मे पूरी-पूरी सहायता दी, और उसने ऐसा प्रवन्ध किया कि उन सैनिको को न तो आग प्राप्त हो सकी और न पीने को पानी ही मिला। विवश होकर विद्रोही सिपाहियो ने मुहम्मद जाफर द्वारा चाही गई रसीद लिख कर उसे दे दी। इस अवसर पर केशवदास ने मुहम्मद जाफर की जो सहायता की उसका विवरण जब औरगजेब को ज्ञात हुआ तो उसने केशवदास का मनसब बढा दिया। इस समय उसका मनसब पॉच सदी जात—चार सौ सवारो का था, जिनमे से तीन सौ सवार दो-अस्पा थे। इस मनसब मे एक सदी जात—एक सौ सवारो की तरक़्क़ी दी गई।[३६]

ढाई साल पहिले सितम्बर, १६९६ ई० मे केशवदास के मनसब मे जो वृद्धि हुई थी, उसकी जागीर का मामला भी अब तक तय नही हो

उस क़िले का फौजदार और क़िलेदार था। (अख़्ब० औरं०, ४३, पृ० १०)। उसके बाद पेनुकुण्डा से लिखे हुए केशवदास के कई पत्र मिलते है। इन सब पत्रों में पेनुकुण्डा को 'पीलगुण्डा' लिखा है। वहॉ से लिखा हुआ अन्तिम प्राप्य पत्र अक्तूबर ३, १७०३ ई० का है। मेहता०; राजव्यास०।

पेनुकुण्डा का यह सुदृढ दुर्ग आजकल अनन्तपुर ज़िले के अन्तर्गत है। अनन्त-पुर से बगलोर जाने वाली रेलवे पर यह एक स्टेशन है।

[३६]अख़्ब० औरं०, ४३, पृ० १०।

आतिश ख़ाँ और मुहम्मद जाफर के बारे में कोई भी विशेष जानकारी प्राप्त

पाया था कि उसे यह और तरक्की मिल गई। पिछली तरक्की के सिलसिले मे सीतामऊ के आस-पास के कई गाँव केशवदास को मिले थे। अतएव अब इस वृद्धि को पाकर उसने अपनी जागीर का एकीकरण कर उसे ठीक तरह संगठित करने के लिए केशवदास प्रयत्नशील हुआ। पिछले तीन वर्षो से उसका राजकुटुम्ब सीतामऊ मे निवास कर रहा था। इस प्रदेश मे उसे बहुत कुछ जागीर भी प्राप्त हो गई थी। अपनी पुरानी रतलाम वाली जागीर पुन. मिलने की उसे कोई आशा भी न रही थी। औरगजेब उसे वही रतलाम का परगना फिर दे देगा यह एक दुराशा-मात्र थी। एव अपने मनसब मे इस नई वृद्धि की जागीर चुनते समय उसने यही चाहा होगा कि सीतामऊ के आस-पास का सारा परगना ही उसे प्राप्त हो जावे। इन पिछले पचास वर्षो मे यद्यपि सीतामऊ कस्बे का सापेक्षिक महत्व बढ गया था, किन्तु अब भी इस परगने का केन्द्र तीतरोद मे ही था, और यह प्रदेश तीतरोद परगने के नाम से ही कहलाता था। एव केशवदास तीतरोद परगने की प्राप्ति के लिए प्रयत्न-शील हुआ। पूरे ढाई साल बाद अक्तूबर, १७०१ ई० मे कही उसका यह प्रयत्न सफल हुआ और अक्तूबर ३१, १७०१ ई० को तीतरोद परगने की सनद केशवदास के नाम लिखी गई। इससे पहिले केशवदास की जागीर ३०,२०,४०० दामो की थी, अब उसे सन् १७०१-२ ई० की रबी फसल से ही ७, ८०,००० दामो की आमदनी वाला तीतरोद का यह नया परगना जागीर मे मिला, जिससे उसकी सारी जागीर की आमदनी ३८,००,४०० दामो (रु० ९५,०१०) की हो गई। यह नई जागीर मिलने पर केशवदास ने पहिले की निश्चित रकम के सिवाय रु० १०,०००) और पेशकश के रूप मे देना स्वीकार किये। इनमें

नही हो सकी। सम्भवतः वे क्रमात् इस परगने के कोई उच्च अधिकारी या क़िले के कोषाध्यक्ष रहे होंगे।

से आधे रुपए मालवा सूबे के खजाने मे और बाकी रहे रु० ५,००० शाही पडाव के खजाने मे जमा करते रहने का उसे आदेश मिला।[३७]

इस समय भी केशवदास पेनुकुण्डा के फ़ौजदार और किलेदार के पद पर ही नियुक्त था। सन् १७०० ई० मे जब केशवदास को ज्ञात हुआ कि उसके नए मनसब की जागीर का मामला शीघ्र ही तय होने वाला है तब अपनी इस नई जागीर के प्रबन्ध सम्बन्धी आदेश देने के हेतु उसने अपने मत्री व्यास प्रतापसिह को अक्तूबर, १७०० ई० मे दक्षिण बुलवा भेजा, और उसकी अनुपस्थिति मे मालवा मे मन्त्रित्व का काम करने के लिए उसने मेहता नाथा के दूसरे पुत्र मेहता हीरचद को नियुक्त किया।[३८] जागीर सम्बन्धी सारा मामला तय होने पर उसके प्रबन्ध के बाबत केशवदास के आदेश पाकर व्यास प्रतापसिह सितम्बर, १७०१ ई० मे दक्षिण से मालवा को लौट गया और सीतामऊ पहुँचते ही उसने वहाँ केशवदास की जागीर का पूरा-पूरा शासन-प्रबन्ध पुनः सम्हाल लिया।[३९] इस समय सीतामऊ के आस-पास के गाँवो और

---

[३७] सीतामऊ राजघराने के सग्रह में प्राप्य तीतरोद परगने की सनद।

तीतरोद परगने की सनद अक्तूबर, १७०१ ई० में लिखी गई, परन्तु इस समय केशवदास के मनसब में पुनः वृद्धि का विवरण नहीं मिलता है, एवं यही अनुमान होता है कि मई, १६९९ ई० में प्राप्त मनसब में वृद्धि की जागीर का मामला ही अक्तूबर, १७०१ ई० में तय हुआ, और ढाई साल पहिले की गई वृद्धि की जागीर में ही तब तीतरोद परगना केशवदास को मिला।

केशवदास का मनसब बढ़ते-बढ़ते मार्च, १७०८ ई० में एक हजारी ज़ात—६०० सवारों का हो गया था। जय० अख़०, बहा०, १, पृ० ३९९। मई, १६९९ ई० के बाद केशवदास का मनसब कब-कब बढा और हर बार कितनी वृद्धि हुई, इसका निश्चित उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता है।

[३८] मेहता०, आसोज सु० ५, सं० १७५७ वि० का केशवदास का पत्र।

[३९] मेहता०, आसोज वि० ६, सं० १७५८ वि० का केशवदास का पत्र।

नाहरगढ परगने की जागीर के प्रबन्ध-कार्य मे केशवदास को उसके दूर के रिश्ते मे काका, कुशालसिह राठौड से बहुत कुछ मदद मिल रही थी। व्यास प्रतापसिह और मेहता हीरचद के साथ ही कुशालसिह भी केशवदास का एक विश्वस्त अधिकारी और कुशल कार्यकर्ता था। सन् १७०१ ई० मे भी तत्कालीन जागीर के प्रबन्ध मे कुशालसिह केशवदास के अन्य कर्मचारियो का हाथ बॅटा रहा था। तीतरोद परगने की यह नई जागीर प्राप्त होने पर इस नए राज्य के सगठन मे कुशालसिह का पूरा २ हाथ रहा और तब कुछ समय तक व्यास प्रतापसिह के साथ ही वह सयुक्त प्रधान मत्री के रूप मे भी काम करता रहा।[४०] इस प्रकार सीतामऊ राज्य के सगठन और शासन-व्यवस्था के लिए केशवदास ने अपने नए-पुराने साथियों को जुटाया और इस सद्य स्थापित नए राज्य की नीव सुदृढ करने मे वह प्रयत्नशील हुआ। किन्तु ये सारी बाते सीतामऊ राज्य के इतिहास के अन्तर्गत ही लिखी जा सकती है, उनका रतलाम के प्रथम राज्य के इतिहास से कोई सम्बन्ध नही रह जाता है।

---

[४०] यह कुशालसिंह मोटा राजा उदयसिंह के पॉचवें पुत्र भोपतसिंह का वंशज था। मारवाड०, १, पृ० १७९; ख्यात०, १, पृ० १०१, १०६; गुरूजी०। भोपतसिंह के सारे वशज भोपतोत राठौड़ कहलाए। भोपतसिंह के दूसरे पुत्र मुकुन्ददास का बड़ा बेटा सबलसिंह ही कुशालसिंह का पिता था। सन् १७०१-०२ ई० में कुशालसिंह व्यास प्रतापसिंह के साथ ही प्रधान मन्त्री का भी काम करता रहा; मेहता०, आसोज वि० ६, सं० १७५८ वि० और श्रावण सु० ६, सं० १७५९ के केशवदास के पत्र।

तीतरोद परगना मिलने पर केशवदास ने कुशालसिंह को वर्तमान खेजड़िया ठिकाना जागीर में दिया, जो आज भी उसके वशजो के अधिकार में है। कुशालसिंह का वंश सीतामऊ राज्य और उसके आस-पास के प्रदेश में बहुत फैला और उसके अन्य वंशजों को भी वहाँ अनेको जागीरें मिलीं। सीतामऊ राज्य में बाजखेड़ी, धाराखेड़ी और बेलारा ठिकाने अब भी उनके अधिकार में हैं।

अपने जीवन के इन पिछले दस वर्षों में जब वह रतलाम का शासक था, या जब राज्य खोकर वह मुग़ल सम्राट् का एक साधारण मनसबदार मात्र रह गया था, तब भी केशवदास अपने निजी पत्र-व्यवहार, सनदों, आदि में स्वयं को 'महाराजधिराज महाराज' लिखता था।[४१] किन्तु शाही काग़ज़-पत्रों में उसका नाम-मात्र ही लिखा जाता था; उसके साथ कोई भी उपाधि नहीं लिखी जाती थी। अख़बारों में उसे 'रतलाम का ज़मींदार और जागीरदार' लिखा है।[४२]

अपने बड़े भाई शिवसिंह के शासन-काल से ही सन् १६८५ ई० में केशवदास दक्षिण में जाकर शाही सेना में सम्मिलित हो गया था। तब से पूरे बाईस वर्ष तक वह निरन्तर दक्षिण में ही बना रहा और सन् १७०७ ई० में औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद आज़म के नेतृत्व में उत्तरी भारत को लौटती हुई शाही सेना के साथ ही केशवदास उत्तरी भारत को लौटा। अतएव रतलाम का शासक बन कर भी केशवदास ने एक दिन वहाँ निवास नहीं किया, और जब वह उत्तरी भारत को लौटा, तब सीतामऊ राज्य की स्थापना हुए कोई छः वर्ष बीत चुके थे।

अक्तूबर, १७०१ ई० में तीतरोद परगने की शाही सनद पाकर केशवदास ने वर्तमान सीतामऊ राज्य की स्थापना की। विपत्ति के दिनों के उस निवास-स्थान को केशवदास के इस नए राज्य की राजधानी बनने का गौरव प्राप्त हुआ। राज्य-विहीन केशवदास पुनः एक राज्य का शासक बना और उसके जीवन का एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। रतलाम राज्य खोकर भी केशवदास हतोत्साह नहीं हुआ था; अन्त में वह सद्यःस्थापित सीतामऊ राज्य का प्रथम शासक बना। सीतामऊ राज्य

---

[४१] राजव्यास; मेहता०।

[४२] अख़० औरं०, ३८, पृ० ६६, ६६, ५२६, ५२८, ५३७।

की स्थापना के साथ ही रतलाम के प्रथम राज्य के इस इतिहास का यह उपसहार भी समाप्त हो जाता है।

रतनसिह द्वारा सस्थापित रतलाम के उस प्रथम राज्य का अन्त हो गया था। रतन-कुल का वह वट, . . दुर्भाग्य की आँधी ने उसके सुस्थापित विशाल तने को उखाड फेका; किन्तु उसकी दूर २ फैली हुई वे शाखाएँ और उनके वे जीवनपूर्ण अकुर. . . . . . . कठिनाइयाँ, विरोध और विपरीत वातावरण भी उन्हे न रोक सके, वे जगह २ फूट निकले और उन्होने जड पकड ली, समय पाकर वे सुदृढ हो गए और उन्होने स्थायित्व प्राप्त किया। केशवदास ने वर्तमान सीतामऊ राज्य की स्थापना की, और संभवत. उसके कुछ समय बाद छत्रसाल रतलाम के वर्तमान द्वितीय राज्य का प्रथम शासक बना। इनका आश्रय पाकर रतन-कुल पुन: सशक्त हुआ और आगामी अराजकतापूर्ण शताब्दी मे उसके लाडलो ने अनेकों छोटे-मोटे राज्यों या ठिकानों की स्थापना की। रतन-कुल की यह अमर-बेल मालवा के सारे मध्य भाग पर छा गई, और यों रतनसिह की पटरानी का ऊष कालीन स्वप्न सत्य हुआ।[४३]

---

[४३] दन्तकथा प्रचलित है कि अपने यौवनपूर्ण दिनो में एक बार रतनसिंह की पटरानी ने स्वप्न देखा कि उसकी आँतें आस-पास के सब वृक्षो पर अमर-बेल की तरह टँगी हुई थीं। इस बीभत्स दृश्य को देख कर रानी की नीद टूट गई; रात अधिक बाकी न थी, एवं वे घड़ियाँ रानी ने जागते हुए ही बिताईं। स्वप्नो का अर्थ निकालने वाले शकुनज्ञो ने इस स्वप्न का विवरण सुनकर रतनसिंह के वंशजो की असाधारण वृद्धि और उनकी आशातीत उन्नति की भविष्यवाणी की थी।

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

अ

आ

इ

ई

उ

ए

औ

क

ख

ग

च

छ

ज

झ

ट

ड

त

द

ध

न

प

फ

ब

भ

म

र

ल

व

श

स

ह